01 Hindi

आर्य-साहित्य ग्रंथ माला सं० १

* ओ३म् *

सत्यार्थ-निर्णय

(प्रथम खंड)

अर्थात्

पौराणिक, मुसलमान, ईसाई, राधास्वामी, देवसमाजी,
ब्रह्मसमाजी, इत्यादि प्रसिद्ध मतावलम्बियों की
ओर से, आर्य समाज, ऋषि दयानंद
या उनके साहित्य पर किए गए
आक्षेपों का युक्ति युक्त
मुंह तोड़ जवाब

लेखक—

पं० शिव शर्म्मा जी महोपदेशक

आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त ।

प्रकाशक:—

आर्य-साहित्य-मंदिर

नई सड़क, देहली

१९३८ ई०

स्वा:
का मु ६
ही देखेंगेगार २०००]

[मूल्य १॥)

प्रकाशक—
आर्य-साहित्य-मंदिर
नई सड़क, देहली

भावी प्रकाशन की दिव्य-सूची

१—अरब में सात साल ॥=)
(ले० पं० रुचीराम जी वैदिक-मिशनरी)

२—सत्यार्थ-निर्णय (द्वितीय खंड) १॥)
ले० पं० शिवशर्म्मा जी

३—शास्त्रार्थ-समुच्चय ३)
(प्रत्येक विवादास्पद विषयों पर शास्त्रार्थ-संग्रह)

४—सत्यार्थ-निर्णय (तृतीय खंड) १॥)
ले० पं० शिवशर्म्मा जी

१) देने वाले स्थायी ग्राहकों से पौने दाम।

मुद्रक—
आफ़सैट आर्ट प्रे
नई देहली

ओ३म्

301

निवेदन।

आर्य-साहित्य-मन्दिर के संचालकों ने, आर्य समाज के विरुद्ध जहर उगलने वाले समस्त मत मतान्तरों को मुंह तोड़ उत्तर देने का संकल्प किया हुआ है। परिणाम स्वरूप "पौराणिक पोल प्रकाश" इसका प्रथम प्रयत्न है, जो पौराणिक धर्म के ठेकेदार पं० कालूराम शास्त्री द्वारा लिखित "आर्य समाज की मौत" का क़रारा जवाब था। इस पुस्तक की खरी २ बातों ने पौराणिक महामंडल में खलबली मचादी और इसका प्रचार उनकी आंखों में खटकने लगा। यहां तक कि उन्होंने इसके विरुद्ध आन्दोलन कर पंजाब सरकार द्वारा इसको जब्त करा दिया। यह 'आर्य-साहित्य-मंदिर' की प्रथम बलि है।

अब पाठकों के हाथ में "सत्यार्थ-निर्णय" का प्रथम खण्ड है। इसके लेखक आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० के महोपदेशक पं० शिवशर्मा जी हैं। यह किस कोटि के लेखक हैं यह उनकी लेखनी से ही परखिए। "पौराणिक पोल प्रकाश" में केवल पौराणिकों को ही जवाब दिया गया था किन्तु "सत्यार्थ निर्णय" के योग्य लेखक ने इसमें पौराणिक, ईसाई, मुसलमान, देव समाजी राधास्वामी इत्यादि समस्त मत मतान्तरों की ओर से आर्य समाज, स्वामी दयानन्द या उनके साहित्य पर, किये गए समस्त आक्षेपों का मुंहतोड़ उत्तर दिया है। इसका पूर्ण परिचय पाठक पुस्तक में ही देखेंगे।

अरब में सात साल

अर्थात्

अरब में वैदिकधर्म का प्रचार—

जिसमें—

मक्का, मदीना, मिश्र, फिलस्तीन, शरकी उलअरुन,
श्याम, तुर्की, अलराक, खलीज फार्स, मसक़त,
मोकला, अदन और यमन में पं० रुची
राम जी वैदिक मिशनरी ने पैदल
घूम घूम कर जो वैदिकधर्म
प्रचार किया है उसका
पूर्ण विवरण इसमें
लिखा गया है।

मूल्य ॥≥)

आर्य-साहित्य-मंदिर

नई सड़क, देहली।

*ओ३म *

उपोद्घात—

वैदिक धर्म को जानने के लिये नियम—

जब कि साधारण से साधारण विद्या को जानने के लिये कुछ विशेष नियमों की आवश्यकता रहती है तो, वेद जैसी गूढ़ विद्या के जानने के लिये क्या किन्हीं विशेष नियमों की आवश्यकता नहीं होगी ?

इस आवश्यकता का हमारे पूर्वज महर्षियों ने अनुभव किया। इसलिये षट् शास्त्रों और अन्य वैदिक ग्रन्थों के निर्माताओं ने कुछ नियम निर्धारित किये हैं, जिनके परिज्ञान से वैदिक धर्म के तत्वों को जानने में सुगमता हो जाती है। वे नियम निम्न प्रकार के हैं:—

वेदों में कोई बात विद्या और बुद्धि के विरुद्ध नहीं है।

इसमें प्रमाण—

(अ) बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे।

वैशेषिक दर्शन अध्याय ६ आन्हिक २। सूत्र १।

(ब) अनियतत्वेपि ना यौक्तिकस्य संग्रहोन्यथा बालोन्मत्तादि समत्वम्। सांख्य १।२६।

अर्थात—वेदों में वाक्य रचना बुद्धि पूर्वक है।

अर्थात—अपनी ही शक्ति की अभिव्यक्ति होने से वेद स्वतः प्रमाण है, जैसे सूर्य अपनी शक्ति से प्रकाशित हो रहा है—उस को देखने के लिये किसी अन्य सूर्य की आवश्यकता नहीं; ठीक इस ही प्रकार वेद भगवान् भी अपनी सत्यता प्रगट करने के लिये किसी अन्य ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं रखते। दूसरा प्रमाण—

न प्रदीपप्रकाश वत्तत् सिद्धे । न्याय दर्शन।२।१।१६।

नहीं, प्रदीप के प्रकाश के समान उसकी सिद्धि होने से

अर्थात—जिस प्रकार प्रत्यक्ष के लिए अन्य प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता नहीं वैसे ही वेद के लिये किसी अन्य पुस्तक की आवश्यकता नहीं।

५—आकाश और प्राण आदि सब प्रकरणानुसार परमात्मा के ही नाम हैं। इसमें प्रमाण—

(अ) आकाशास्तल्लिंगात्। वेदान्त दर्शन १।१।२२।

(ब) अत एव प्राणः। ,, ,, १।१।२३।

अर्थात—आकाश भी परमात्मा का नाम है क्योंकि उसमें ब्रह्म का ही लिङ्ग पाया जाने से।

इसी प्रकार प्राण भी परमात्मा का नाम है, क्योंकि वहां पर भी प्राण शब्द ब्रह्म का ही लिङ्ग रखता है।

६—जहां पर ब्रह्म के खाने पीने की चर्चा आयेगी, वहाँ पर यह न समझना चाहिए, कि वह हमारे समान खाता पीता है, किन्तु वह सब चराचर जगत् को प्रलय के समय में, सूक्ष्म करके, धारण कर लेता है, इसलिये वह खाने वाला कहाता है। इसमें प्रमाण—

अत्ताचराचर ग्रहणात्। वेदान्त १।२।६।

७—वेद मन्त्रों के अर्थ प्रकरणानुकूल ही करने चाहिएँ, यदि ऐसा न हुआ तो अनर्थ हो जायगा। इसमें प्रमाण—

प्रकरणाच्च । वेदान्त १।२।१०।

अर्थात—प्रकरणवश जहाँ पर जिस शब्द के जो अर्थ करने हों वही करे। निरुक्त का प्रमाण—

श्रुतितोऽपि तर्कतो न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः। निरुक्त १३।१२॥

अर्थात—चाहे श्रुति से, चाहे तर्क से मन्त्रों के अर्थ करे परन्तु करे प्रकरण के अनुसार ही, प्रकरण विरुद्ध अर्थ न करे।

८—वेद मन्त्रार्थ करने में विशेष्य और विशेषण का भी ध्यान करना पड़ेगा। यदि विशेषण एक देशी, अल्पज्ञ, जड़ और अनित्यादि गुणों का बोधक हैं तो वह विशेषण ब्रह्म का नहीं हो सकता। किसी ब्रह्म से भिन्न पदार्थ का ज्ञापक होगा।

इसमें प्रमाण—

विशेषणाच्च । वेदान्त १।२।१२।

अर्थात्—विशेषण देखकर वेदार्थ करना चाहिये।

९—एक वस्तु में एक समय में दो विरोधी गुण नहीं रह सकते। ब्रह्म आदि प्रत्येक पदार्थ में दो विरोधी गुण—साकार व निराकार, सर्वव्यापक व एक देशी, नित्य व अनित्य, मरण-धर्मा और अमर, सूक्ष्म और महान और सत्य व असत्य आदि, एक समय में वा भिन्न २ समयों में नहीं रह सकते।

इसमें प्रमाण—

नैकस्मिन्न संभवात्। वेदान्त २।२।३३।

अर्थात्—एक वस्तु में दो विरोधी गुणों का रहना असम्भव है।

१०—वेद वचन सदैव प्रधान रहना चाहिए। वेद के विरुद्ध यदि किसी ऋषि, मुनि का वाक्य हो—वह अप्रमाण है।

इसमें प्रमाण—

श्रुत्यादि बलीयस्त्वाच्च न बाधः। वेदान्त ३।३।५०।

अर्थात्—श्रुति के बलवान् विशेष होने से उसको कोई बाध नहीं सकता। श्रुति के सामने सब ही प्रमाण तुच्छ हैं।

११—वेद के शब्द नित्य हैं। उनमें अनित्य पुरुषों का इतिहास नहीं है। आकाशादि जो नित्य पदार्थ हैं, उन्हीं का वर्णन वेदों में है।इसमें प्रमाण—

(अ) उक्तन्तु शब्द पूर्वत्वम्। मीमांसा १।१।२६।

(इ) आख्या प्रवचनात्। ,, १।१।३०।

पं० भीमसेनजी—"वेद में रूढ़ि अर्थ करना किसी विद्वान् का अभीष्ट नहीं है। किन्तु मीमांसादि सब शास्त्रकारों की अनुमति से वेद में यौगिकार्थ का मानना ही मुख्य है।" ब्राह्मण सर्वस्व पृष्ठ—४६६।

(उ) परन्तु श्रुति सामान्य मात्रम्।मीमांसा १।१।३१।

(ऋ) विरोधेत्वन पेक्ष्यं स्यात् असीत ह्यनुमानम्। ,, १।३।३

अर्थात्—शब्द का नित्यत्व पहले कह दिया।

मन्त्रों के साथ नाम, पढ़ने पढ़ाने से हैं।

वेदों में सामान्यमात्र शब्द है। (यौगिक शब्द हैं -रूढ़ि नहीं)

यदि वेद किसी स्मृत्यादि की आज्ञा का साक्षात् विरोध करता हो, तो वह सिद्धान्त माननीय नहीं, यदि साक्षात् विरोध न हो, तो अनुमान कर लेना चाहिए कि यह आज्ञा वेद की अवश्य है। महाभाष्य का प्रमाण—

नैगमाश्च रूढि भवाश्चौणादिकाः सुसाधवः कथंस्युः। नाम च धातुजमाह निरुक्ते। नाम खल्वपि धातुज मेवाहुः नैरुक्ताः। व्याकरणेशकटस्य च तोकम्। वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति। महाभाष्य ३।३।१

अर्थात—वैदिक शब्द और औणादिक रूढ़ि शब्द साधु किस प्रकार हो सकेंगे ? ऐसा प्रश्न उत्पन्न होने पर, निरुक्तकार यास्क मुनि का मत है, कि वेद के सब नाम धातुज ही हैं और वैयाकरण शाकटायन का भी यही मत है, कि वैदिक नाम सारे ही धातुओं से निकले हैं अर्थात् सारे ही वैदिक शब्द यौगिक हैं, (रूढ़ि नहीं)

१२—यदि कोई सत्य बात किसी अन्य मतवादी की पुस्तक में लिखी हो, तो वह भी वेद की ही बात है। उसकी सत्यता को ग्रहण कर लेना उचित है। इसमें प्रमाण—

परमतमप्रतिषिद्धं स्वमतमितिहि तन्त्र युक्तेः।

अर्थात—पराया मत यदि खण्डन करने योग्य नहीं है,तो वह अपना ही मत है-ऐसी शास्त्र की युक्ति है।

१३—जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध हैं, वह कदापि माननीय नहीं हैं। वेद के अनुकूल होने से ही स्मृतियां माननीय हो सकती हैं। इसमें प्रमाण—

या वेदबाह्याः समृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः समृताः॥

मनुः १२। ९५॥

अर्थात—जो स्मृतियाँ वेद के विरुद्ध हैं, वे सब ही कुदृष्टि वाली हैं। उनके अनुसार किये कर्म निष्फल जाते हैं, मरने पर नरक गामी होना पड़ता है।

१४--वेदों में अर्थ के अनुसार ही विभक्तियों को बना लिया जाता है। चाहे सातों विभक्तियों में से कोई भी विभक्ति हो। यदि अर्थ उस विभक्ति के अर्थ करने से ठीक २ न बन पड़ता हो, तो जिस विभक्ति के अर्थ करने से वेदार्थ ठीक २ हो जाते हों, तो उस ही विभक्ति का अर्थ कर ले। इसमें प्रमाण—

यथार्थं विभक्तीः संनमयेत्। निरुक्त २।१।

अर्थात—अर्थ के अनुसार विभक्तियों को बना ले (बदलले)

१५-वेदों में तीन प्रकार की क्रियायें हैं—परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिकी। इनकी पृथक् २ पहिचान है। इसमें प्रमाण-

तास्त्रिविधाऋचः—परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिकय श्चेति। तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नाम-विभक्ति भिर्युज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य। निरुक्त दैवत० ७।१

अर्थात्—वे ऋचायें ३ प्रकार की हैं—परोक्षकृता, प्रत्यक्षकृता और आध्यात्मिकी। उनमें से जो परोक्षकृता हैं वे नाम की सारी विभक्तियों से युक्त होती हैं। और आख्यात के प्रथम पुरुष से युक्त होती है। (जहां पर देवता का प्रत्यक्षवत् वर्णन है 'वहां पर 'युष्मद्' का प्रयोग दिया जाता है अर्थात् मध्यम पुरुष कहा जाता है, जैसे—"त्वमिन्द्रासिवृत्रहा" हे इन्द्र! तू शत्रुओं का मारने वाला है। आध्यात्मिक ऋचाओं में 'अस्मद्' का प्रयोग अर्थात् उत्तम पुरुष कहा जाता है)

१६—वेदों में अलङ्कारों के द्वारा धर्माधर्म की शिक्षा दी गई है। विज्ञान की शिक्षा भी अलङ्कारों से पर्याप्त मिलती है। इसमें प्रमाण—

अपांज्योतिषश्च मिश्री भावकर्मणो वर्ष कर्म जायते।
तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति। निरुक्त २।१६

अर्थात्—पानी और ज्योतिः के मिलने से वर्षा होती है। इसलिए उपमा के प्रयोजन से युद्ध वर्णन किए गए हैं।

यहां पर बतलाया गया है, कि वृत्रासुर और इन्द्र की कथा सूर्य और मेघ के युद्ध का अलङ्कार है। वास्तव में यह कोई इतिहास नहीं।

१७—ऋषियों का यह नियम रहा है, कि प्रत्येक शिक्षा को आख्यान -कहानी- की रीति पर वर्णन करे, जिससे वह शिक्षा भली भांति स्मरण रहे। इसमें प्रमाण—

ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यान संयुक्ता।
निरुक्त १०।१०।१०

अर्थात्—अर्थ दृष्टा ऋषियों की प्रीति होती है, कहानी युक्त वर्णन करने में।

१८—बहुत से कुतर्की ऐसे हैं, जो सदैव वेद विरुद्ध तर्क को काम में लाते रहते हैं। वह तर्क नहीं किन्तु तर्काभास कहाता है।

इसमें प्रमाण—

श्रुतिविरोधात् न कुतर्कापसदस्यात्म लाभः।
सांख्य ६।३।४।

अर्थात्—वेद विरुद्ध तर्क करने वालों को सत्य की -आत्मा की- प्राप्ति नहीं होती।

१९—जिस धर्म का वेद प्रतिपादन कर दे, उसका खण्डन करना पाप है। क्योंकि वेद सदैव धर्म की बात कहता है। इसमें प्रमाण—

श्रुत्यासिद्ध स्य नापलापस्तत्। सांख्य १।१४७।

अर्थात्—श्रुति से सिद्ध सिद्धान्त का अपमान नहीं हो सकता।

२०—वेद ने प्रत्येक वर्ग के बोलने की बात अपनी भाषा में वर्णन की है, जो बात ठीक २ अच्छी प्रकार अर्थ सहित कही जा सकती है, उसको वेद ने स्वयं रचकर प्रत्येक कहने वालों के मानो मुख में स्थापित कर दी है। मसव्विदा वेदों का तैयार किया हुआ है, उसको अदा करते हैं दूसरे। पति के बोलने के मंत्र विवाह में वर बोलता है, वधू के बोलने के मंत्र वधू बोलती है। राजा के बोलने के राजा और प्रजा के बोलने के प्रजा बोलती है। इसही प्रकार गुरु, शिष्य, पिता पुत्र और मन्त्री आदि के समझ लीजिए। यथा "गृभणामि ते सौभगत्वाय" आदि मंत्र वर के मुख से वेद ने कहलाये हैं।

ये उपर्युक्त २० नियम इसलिये लिख दिये हैं, कि वैदिक धर्म क्या है? इसके जान लेने में सुगमता हो। अब हम प्रत्येक नियम को उदाहरण सहित स्पष्ट करते हैं:—

१—वेदों में कोई बात विद्या और बुद्धि के विरुद्ध नहीं है। यजुर्वेद अध्याय ३१ का यह ११ वां मन्त्र है:—

ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याशूद्रो अजायत

सनातनी पण्डित इसके अर्थ करते हैं, कि ब्राह्मण परमात्माके मुखसे उत्पन्न हुए, क्षत्रिय बाहूसे, वैश्य उरूसे और शूद्र पैरोंसे।

अब इसमें बुद्धि से सोचने की बात यह है कि ब्रह्म क्या वस्तु है? क्या कोई पुरुषाकार वस्तु है? उससे ब्राह्मणादि कैसे उत्पन्न हुए? इस अर्थ में ३ विकल्प हो सकते हैं:—

(१) या तो ब्रह्म के मुख में ब्राह्मण भर रहे थे—मुख गर्भ के समान था, उसमें से ब्राह्मण निकल पड़े।

(२) ब्रह्म का मुख ब्राह्मणों का उपादान कारण बन गया—जिस प्रकार मिट्टी घट में तबदील हो जाती है, इस ही प्रकार ब्रह्म का मुख ब्राह्मणों में परिणत हो गया—ब्रह्म के मुख का सम्पूर्ण अथवा कुछ अंश परिणाम को प्राप्त हो गया। ब्रह्म का मुख कारण हुआ और ब्राह्मण कार्य हुए।

(३) ब्रह्म के पेट में ब्राह्मण भरे थे। ब्रह्म वमन की रीति पर ब्राह्मणों को उगल दिया! ये ३ ही विकल्प सनातनी मत के अनुसार हो सकते हैं। ये तीनों ही विकल्प विद्या और बुद्धि के नितान्त ही विरुद्ध हैं। ऐसे विकल्प मान लेने से ब्रह्म में अनित्यता, अशुद्धि, कार्यकारण भाव और एक देशीयता आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जो नहीं होने चाहिए अतः इसके अर्थ वही बुद्धि और विद्या के अनुकूल हैं, जो आर्यसमाज करता है।

२—जो लोक रीति में निपुण है वह वेदार्थ करने में भी व्युत्पन्न होता है। लोक में पशु पक्षियों आदि जन्तुओं की कथा कहानी और उनके व्यवहार और बोलचाल मनुष्यों के समान कहे जाते हैं। ये सारे ही व्यवहार वेद ने सिखलाये हैं। जो जीव बोल नहीं सकते उनकी कथा वेद ने स्वयं अपनी भाषा में वर्णन की है। यथा—

"जाल बद्धा मत्स्या ऊचुः"—जाल में फंसी मछलीं बोलीं।

"नद्य ऊचु"—नदी बोलीं।

मछली और नदी बोल नहीं सकतीं, परन्तु वेद ने बोलना बतलाया है। अतः लोक में भी ऐसे जीव और निर्जीवों का बोलना प्रचलित हो गया - अर्थात् उपचार से पशु पक्षी और अन्य जड़ वस्तुओं का भी बोलना कहा जाने लगा। इस विद्या को वेद ने ही बतलाया है।

३—ब्राह्मण ग्रन्थ आदि बहुत से पुस्तक ऐसे हैं जिनमें उनके रचयिता का नाम नहीं है परन्तु उनमें कृत बुद्धि पाई जाती है अतः पौरुषेय हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में अनित्य राजाओं, ऋषियों, विद्वानों, स्त्री पुरुषों और नगर नदी आदि की कथायें विद्यमान हैं, जो अनादि वेद में नहीं होनी चाहिए। शास्त्रकारों ने अपने २ शास्त्रों में अपना परिचय नहीं दिया पाणिनि महाराज ने अष्टाध्यायी में और महाभाष्यकार पतञ्जलिजी ने अपने महाभाष्य में अपना २ परिचय नहीं दिया, परन्तु दूसरों ने उसमें मनुष्य कृत बुद्धि को पाकर यह बतलाया कि ये पौरुषेय हैं। यही ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में जानना चाहये।

जैसे शतपथ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य जी का रचा हुआ है, ऐतरेय इतराके पुत्र महीदास का बनाया हुआ है इस ही प्रकार आगे भी अनुमान कर लेना चाहिए। प्रमाणवाद आगे वेद ब्राह्मण ग्रन्थ विषय में आयगा।

चौथे नियम की विशेष पुष्टि—

देखो मीमांसाकार क्या कहते हैं—

श्रुति लक्षणमानु पूर्व्यं तत् प्रधानत्वात् ।मी० ५।१।

अर्थात—श्रुति लक्षण वाला क्रम ठीक है उस श्रुति के प्रधान होने से ब्राह्मण ग्रन्थ से वेद बलवान है —

मन्त्रतस्तु विरोधेस्यात् प्रयोग रूप सामर्थ्यात्
तस्मादुत्पत्ति देशःसः । मीमाँसा ५।१।६॥

अर्थात—(मन्त्रतस्तु) मन्त्र के साथ विरोध होने से ब्राह्मण का विरोध होने पर (स्यात्) मन्त्र के अनुसार कार्य होना चाहिये क्योंकि (प्रयोग रूप सामर्थ्यात्) अनुष्ठान मात्र के

प्रकार को बोध न करने वाले (तस्मात्) ब्राह्मण से (उत्पत्ति देशः) कर्मका विधायक होने से (सः) मन्त्र प्रबल है।

पं० अखिलानन्द की सम्मति —

"हमारी सम्मति में तो जहां वेद का साक्षात् विरोध हो वहां ब्राह्मण ग्रन्थ मानने योग्य नहीं हैं; परन्तु जहां विरोध नहीं वहां पर ऋषियों के ब्राह्मणादि वाक्य भी अवश्य मानने योग्य हैं।"

अथर्वा लोचन पृष्ट ३४—३५॥

जिस प्रकार लोहे का गोला अग्नि में से निकल कर कुछ काल गरम बना रहता है, वैसे ही पण्डित अखिलानन्द जी कुछ काल तक आर्य समाज में से निकल कर वैदिक संस्कारों से संस्कृत रहे थे। परन्तु अब बिल्कुल ठंडे पड़ गये हैं। गरमी काफूर होगई है।

४—वेद स्वतः प्रमाण हैं अन्य ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं।

शोक है कि सनातनी पण्डित इसकी परवाह नहीं करते। वे संस्कृत मात्र को स्वतः प्रमाण मानते हैं। इसी सनातनी गीता को साक्षात् साकार ब्रह्म-कृष्ण जी का वाक्य मानकर स्वतः प्रमाण मानते हैं। इसही प्रकार पुराणों को, ब्रह्मावतार व्यास जी का कथन कहकर स्वतः प्रमाण मानते हैं। वल्लभाचार्य मतवादी भागवत को वेद कहकर स्वतः प्रमाण मानते हैं। यथा—

"श्री भागवताय वेदत्वात् तत्र चतुर्थस्कन्धोक्त लक्षण माहुः स्वस्मिन्निति"।

वेदान्त पर अणुभाष्य रश्मिः टीका अ० ३।४।४४ पृ० ३३६॥

५—आकाश और प्राण आदि सब नाम प्रकरणानुसार ब्रह्म के ही नाम हैं।

सनातनी इस व्यास वचन की कुछ भी परवाह नहीं करते। इन शब्दों के अर्थ उपासना विषय में भी तत्व विशेष और प्राण

वायु के ही करते हैं। परन्तु जब अपना स्वार्थ सिद्ध करना होता है तो अग्नि आदि शब्दों के ईश्वर अर्थ कर लेते हैं। जैसे—"कृष्णांत एम रुषत:" में अग्नि शब्दके अर्थ ब्रह्म कर लिए। क्यों कि वहां पर ईश्वर का अवतार सिद्ध करना था। सविस्तार प्रमाण आगे आयेंगे।

६—जहां पर ब्रह्म को खाने वाला बताया है वहां पर हमारे समान नहीं।

सनातनी ठाकुर जी को भोग यह समझ कर लगाते हैं कि यह जड़ ठाकुर खाकर प्रसन्न होगा। परन्तु उनको यह ज्ञान नहीं कि यह जड़ पदार्थ चेतनवत् कोई भी कार्य नहीं कर सकता। परमात्मा का नाम अत्ता इसलिए है कि वह चर और अचर को प्रलय अवस्था में भी धारण किए रहता है। यह उस प्रश्न का उत्तर है कि जो यह कहते हैं कि प्रलय अवस्था में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता। इसलिये बतलाया कि वह "अत्ता" और "उच्छिष्ट" है।

अत्ता होने से वह सोम आदि को भी ग्रहण किये हुए है।

७—वेद मन्त्रों के अर्थ प्रकरणानुकूल ही होने चाहिएँ।

यजुर्वेद अध्याय ३१ का १० वां मन्त्र है कि—

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते। ३१।१०

यहाँ पर प्रश्न है कि जिस पुरुष को धारण करते हो, उसको कितने प्रकार की कल्पना करते हो?

यहां पर यह प्रश्न ही नहीं है कि ब्राह्मणादि किससे उत्पन्न हुए? यहाँ पर तो यही प्रश्न है कि पुरुष की कितने प्रकार की कल्पना की? उसका अगले ११वें मन्त्रमें उत्तर भी वैसा ही है कि

ब्राह्मण मुख कल्पना किये गये, क्षत्रिय बाहू, वैश्य उरू और शूद्र पैर।

अथवा मुख आदि ब्राह्मणादि कल्पना किये गये। प्रकरणानुसार कल्पना ही अर्थ होने चाहिए क्योंकि प्रश्न में भी कल्पना है न कि यथार्थ। महीधरादि ने भी यही कल्पना परक अर्थ किये हैं। देखो—

तदा कतिधा कतिभिः प्रकारैर्व्यकल्पयन् विविधं कल्पितवन्तः अस्य पुरुषस्य मुखं किमासीत् ॥

८—मन्त्रार्थ करते हुए विशेष और विशेषण का ध्यान रखना।

यथा—"अग्निं मीले पुरोहितम्" ऋ० १।१।१ में पुरोहित इत्यादि विशेषण जड़ वस्तु के नहीं हो सकते।

"अग्नेनय सुपथा"० यजु० ४।१६ में अग्नि का विशेषण विद्वान आया है॥ यह जड़ अग्नि विद्वान् नहीं हो सकती॥

'ईले अग्निं विपश्चितम्' ऋ० ३।२७।२। यहां पर भी विपश्चित विशेषण जड़ अग्नि का नहीं हो सकता॥ ब्रह्मादि अग्नि॥ श०प० १।४।२।११ आत्मा वा अग्नि श० प० १।२।३।२ अयं वा अग्नि प्रजाश्च प्रजापतिश्च श०प० ६।१।२।४२ उदुत्तम वरुण पाशमस्मद् यजु० १२।१२ इस मन्त्र में आये हुए वरुण शब्द से तीनों बन्धन काटने की प्रार्थना की गई है। जड़ जल बन्धन नहीं काट सकता किसी चेतन(ब्रह्म)वरुण से ही प्रार्थना है।"इमांत्वमिन्द मीढ्वः" ऋ०१०।८५।४५ में इन्द्र का विशेष मीढ्वः वीर्य सेचन में समर्थ विशेषण आया है॥ यहां पर वर ही वीर्य सेचन में समर्थ हो सकता है, अन्य नहीं।

सनातन नाम धारी यहां पर पानी बरसाने वाले इन्द्र देवता से प्रार्थना करना बताते हैं सो यह अयुक्त है। क्योंकि वीर्य सेचन में समथ युवा वर ही हो सकता है न कि इन्द्र देवता।

विवाह तो मनु
अतः यहां पर
अर्थ होगा।

९—एक समय
जिस प्रका
"अणोरणी
ब्रह्म अणु
गुण ब्रह्म है

उन कहने
भी सूक्ष्म इसलि
व्यापक है अतः
लिये है कि वह
नानि विश्वा"
गया है कि उसमें
धार है—आधेय

१०—वेद वचन
माननीय नहीं
कि स्वार्थवश
ग्रन्थों को प्रक्ष
उपनिषदादि
गौण मानक
मानते हैं।
गाच्छुक मन्त्र
"दिव्योह्यमूर्त्त

११—वेदों के शब्द
नहीं हैं।

विवाह तो मनुष्य के पुत्र युवा वर से हो रहा है न कि इन्द्र से अतः यहां पर इन्द्र का विशेषण मीढ्वः होने से वर का ही अर्थ होगा।

९—एक समय किसी वस्तु में दो विरोधी गुण नहीं रह सकते, जिस प्रकार कोई कहे कि ब्रह्म साकार और निराकार दोनों हैं "अणोरणीयान् महतो महीयान्" के अर्थ करते हैं कि वह ब्रह्म अणु से अणु और महान से महान है, अतः ये विरोधी गुण ब्रह्म हैं।

उन कहने वालों को समझना चाहिए कि वह ब्रह्म अणु से भी सूक्ष्म इसलिये है कि वह जीव, प्रकृति और आकाश में भी व्यापक है अतः अत्यन्त ही सूक्ष्म है। महान् से भी महान् इस लिये है कि वह आकाश से परे है। क्योंकि "तस्मिन् हतस्थुर्भुवनानि विश्वा" और "यस्मिन् लोका अधिश्रिताः" आदि कहा गया है कि उसमें सारे लोक लोकान्तर ठहरे हुए हैं—वह सर्वाधार है—आधेय नहीं।

१०—वेद वचन को सदैव प्रधानता रहनी चाहिये। वेद विरुद्ध माननीय नहीं। इस समय कुछ मतवादी इस प्रकार के हैं कि स्वार्थवश वेद को अप्रधान मानकर अन्य कपोल कल्पित ग्रन्थों को प्रधानता देते हैं। यह उनकी हठ है। वेद और उपनिषदादि आर्षग्रन्थों में वर्णित ब्रह्म की निराकारता को गौण मानकर पुराणों में गढ़ी हुई साकारता को प्रधान मानते हैं। इनके सामने "नतस्य प्रतिमा अस्ति"। "सपर्यगाच्छुक्र मकायम्" "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः"। "दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः" आदि सब ही तुच्छ हैं।

११—वेदों के शब्द नित्य हैं, उनमें अनित्य मनुष्यादि की चर्चा नहीं है।

अवतारवादी सदैव इस बात की हठ किया करते हैं कि वेदों में रामकृष्णादि अवतारों का वर्णन है। जब कि रामकृष्णादि के शरीर ही नित्य नहीं तो नित्य वेदों में उनकी चर्चा कैसे आ सकती है? जो भी प्रमाण इस अवतारवाद की पुष्टि में वे दिया करते हैं, उनकी समालोचना तो अवतार विषय में आयेगी परन्तु इतना बतलाये देते हैं कि इस अवतारवाद से हिन्दू जाति को अत्यन्त ही हानि पहुंची है। हिन्दू अहिन्दू सब ही अवतार बनतार, बनकर हिन्दुओं को उनके धर्म से च्युत कर रहे हैं।

सर आगाखां, मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी, दक्षिणी सिद्दीकी, खेड़े के साईं, कलकत्ते के गोविन्द भवन का हीरालाल गोइनका और कितने ही ईसाइयों ने अपने को विष्णु आदि का अवतार बताकर कितना अनर्थ किया है।

१२—यदि कोई सत्य बात (वेदानुकूल) किसी वेदातिरिक्त ग्रन्थ में भी लिखी हो तो वह माननीय है।

जब कभी वैदिक लोग इन पौराणिकों से शास्त्रार्थ करते हैं और अपने पक्ष की सिद्धि में वेदों के साथ पुराणों का भी प्रमाण पेश करते हैं तो यह पौराणिक कह उठते हैं कि—"जब आप पुराणों को मानते ही नहीं तो उनका प्रमाण क्यों देते हो? पहले पुराणों को मानो फिर प्रमाण दो" परन्तु आश्चर्य तो यह है कि ये स्वयं पुराने और नये सत्यार्थ प्रकाश और पुरानी और नई संस्कार विधि आदि के मन गढ़न्त प्रमाण, भ्रम वश, अपने मत की पुष्टि में सदैव दिया करते हैं। वैदिक लोग यह कभी नहीं कहते हैं कि आप हमारे ग्रन्थों का प्रमाण क्यों देते हैं?

हम तो स्वमत मण्डन और पौराणिक मत खण्डन में अक्षोपनिषद् तक का प्रमाण दे सकते हैं—क्योंकि पौराणिक पण्डित इन सबको ही स्वतः प्रमाण मानते हैं। इनके मत में सत्यार्थ प्रकाश

आदि के अतिरिक्त सबही स्वतः प्रमाण हैं। ये जानते ही नहीं कि वेदानुकूल प्रमाण और वेद प्रमाण में क्या अन्तर है? ये कसौटी और सुवर्ण को एक ही जानते हैं!!! वैदिक सिद्धान्त तो यह है कि आर्य अथवा म्लेच्छ चाहे कोई भी हो यदि उसका कथन वेद विरुद्ध नहीं है तो वह अपना ही मत वैदिक है।

१३— वेद के विरुद्ध स्मृतियाँ माननीय नहीं है।

वैसे तो पौराणिक पण्डित सदैव यही कहते हैं कि स्मृतियों में कोई भी स्मृति वेद विरुद्ध नहीं—इनके रचयिता ऋषि महर्षि थे एवं निर्भ्रान्त थे। परन्तु जब विधवा विवाह, नियोग, शुद्धि, वर्णव्यवस्था और ईश्वर की निराकारता इनसे सिद्ध की जाती है तो कह बैठते हैं कि इन सारी स्मृतियों में मनुस्मृति प्रधान है अतः इन विषयों में मनु ही प्रमाण है। जब पूँछा जाता है कि— "या वेदबाह्याः स्मृतयः" यह संकेत मनुजी का किन स्मृतियों की ओर है तो बगलें झाँकने लगते हैं। एक बड़े आश्चर्य की बात और है—जब वेद से नियोग इत्यादि के प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं तो ये कह उठते हैं कि—

"अश्वालम्भे गवालम्भे सन्यासं पल पैत्रिकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौयञ्च विवर्जयेत्" ॥

अर्थात्—(अश्वालम्भ) अश्वमेधयज्ञ, (गवालम्भ) गोमेधयज्ञ, सन्यास, पितरों को मांस के पिण्ड और नियोग ये पाँच कलियुग में वर्जित हैं। जब इनसे पूछा जाता है कि अच्छा ये पाँचों कर्म कलियुग को छोड़ कर, सतयुग, त्रेता और द्वापर में तो होते थे? उत्तर 'हाँ' में देना पड़ता है। यदि कोई सतयुग, त्रेता और द्वापर में पूँछता कि नियोग आदि में वैदिक प्रमाण है वा नहीं? तो उस समय के पण्डितों ने उस समय अवश्य ही वैदिक प्रमाण

दिया होगा। अच्छा अब बताइये वह वैदिक प्रमाण नियोग की सिद्धि में कौनसा था? तो चुप्पी साध लेते हैं। यदि कोई नियोग सिद्धि में वैदिक प्रमाण था तो प्रस्तुत कीजिए? यदि नहीं था तो तीनों युगों में यह कर्म अवैदिक ठहरता है? यहाँ पर इन पौराणिकों की वही गति हो जाती है जो गोस्वामी तुलसीदास जी ने कही है—"भई गति साँप छछूंदर केरी" "उभयतोरज्जुसर्पः" इसही को कहते हैं इनको क्या कहा जाय? यदि नियोग सिद्धिका कोई प्रमाण पेश करते हैं तो भी विपत्ति है। क्योंकि जो प्रमाण इस समय नियोग सिद्धि में वैदिक पण्डित प्रस्तुत करते हैं, उनको ये नियोग परक नहीं बताते - उनको सायण इत्यादि के विरुद्ध अनापशनाप मन माने अर्थ करते हैं। यदि नहीं करते हैं (जैसाकि नहीं ही करते) तो यह स्मृतिवाक्य असत्य ठहरता है कि नियोग दि पाँच कर्म कलियुग में वर्जित हैं- अर्थापत्ति से यह सिद्ध होता है कि सतयुगादि में विदित थे।

एक प्रश्न इन सनातनी पण्डितों से यह भी है कि—जब सन्यास ग्रहण करना कलियुग में वर्जित है तो श्री स्वामी शङ्कराचार्य, स्वामी विशुद्धानन्द आदि लक्षों सन्यासी तो स्मृति विरुद्ध कर्म करने वाले ही ठहरे ना?

मृतक श्राद्ध में मांस पिण्ड और माँस भक्षण सम्बन्धी प्रक्षिप्त मनु के श्लोक जब वैदिक पण्डित पेश करते हैं तो पौराणिक पण्डित यह उत्तर देते हैं कि "यह विधान उन देशों के लिये है जहाँ माँस ही होता है अन्न उत्पन्न नहीं होता।" अब प्रश्न यह है कि "अश्वालम्भम्" वाला श्लोक इस समय उन देशों पर भी लागू होगा वा नहीं? यदि नहीं होगा तो यह विधान तो है ही उन देशों के लिए? यदि होगा तो वे कैसे जियेंगे जिनका जीवनाधार ही केवल माँस है?

फिर जहां बकरे, भेड़ें, खरगोश और गौ इत्यादि शाक भाजी पशु कहाते हैं वहां शाक भोजी मनुष्य भी जीवन यात्रा कर सकता है, जो शाक खाकर पशु जीवित रह सकते हैं, उसको खाकर मनुष्य मनुष्य भी जीवन रखसकते हैं। अतः ऐसे स्मृति वाक्य वामियों के लिखे हुए हैं और वेद बाह्य हैं।

१४—अर्थ के अनुसार विभक्ति बदल ले।

जैसे "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" मन्त्र के अन्त में 'पद्भ्याम्' शब्द पञ्चम्यन्त आया है। अन्य ब्राह्मणादि शब्दों में प्रथमा विभक्ति है। अतः "पद्भ्याम्" के अर्थ प्रथमा विभक्ति के कर लेने चाहिए।

"अजायत" के अर्थ "आसीत्" कर लेने उचित हैं।

"हृत्प्रतीकैः" के स्थान में "हृदयानि शीकैः" ६।३३ कहा गया है। "हृत्सु" के स्थान में 'हृदयानि" अर्थ किए गये हैं--सप्तमी के अर्थ में द्वितीया का अर्थ किया गया है।

देखो ऋक्—१०।१०३।१२

विशेष प्रमाण समय २ पर दिये जायेंगे।

१५—वेदों में ३ प्रकार की ऋचायें हैं—

वेदों में यह नियम है कि प्रत्यक्ष वस्तुओं के लिए "त्वम" जैसा सर्व नाम आयेगा। इसमें जड़ चेतन का कोई भेद नहीं है। परन्तु पौराणिक पण्डित सम्बोधनान्त जड़ शब्दों को भी चेतन मानकर वेदों में जड़ पूजा सिद्ध करने का हास्यजनक साहस करने लगते हैं।

जैसे "पूर्णादर्वि!" यजु० में दर्वि शब्द सम्बोधनान्त देखकर दर्वी को चेतन मानकर उसकी पूजा का विधान बताने लगते हैं, इस प्रकार "इमं मे गङ्गे यमुने०" ऋ०१०।७५।५ इस मन्त्र में गङ्गे यमुने ये सम्बोधनान्त शब्द देखकर गङ्गा यमुना आदि नदियों

को पूजा सिद्ध करने लगते हैं। इस प्रकार की वेदों की वर्णन शैली है न कि वेद इन सबको चेतन मानता है।

१६—वेदों में अलङ्कारों द्वारा शिक्षा दी गई है।

पौराणिक पण्डित गण वेदार्थ करते समय वैदिक अलङ्कार को बिलकुल ही भूल जाते हैं—वे इन मन्त्रों का सम्बन्ध किन्हीं विशेष देवी देवताओं से जोड़ लेते हैं। जैसे "इन्द्र विष्णुवि चक्रमे" इस मन्त्र में वामनावतार और इन्द्रवृत्र के यथार्थ समझकर इनको विशेष देहधारी चेतन देवता और असुर मान हैं। "सहस्र शीर्षा०" मन्त्र में साकारत्व टटोलते हैं।

यदचरस्तत्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रव्रवाणा जनेषु।
मायेत्सातेयानि युद्धान्याहुनीद्य शत्रुं न नुपरा बिवित्से
ऋ० ८।११

अर्थ—हे इन्द्र! जो तेरा बल बढ़ा हुआ सब स्थानों पर क जाता है और नाना युद्धों का वर्णन है वह (इन्द्र सा; माय केवल अलङ्कार है। तेरा कोई शत्रु नहीं है।

इन सबके समाधान भी आगे २ आते रहेंगे।

१७—ऋषियों ने मन्त्रार्थ आख्यान की रीति पर किए

इस प्रकार अर्थ करने की शैली स्वयं वेद भगवान ने बताई है, मन्त्रों में ही आख्यान कहानी रख दी है। जैसे "द्वा पर्णा सयुजासखाय:" में २ वस्तुओं के गुण आख्यान की पर बताये हैं—जीव, ईश्वर और प्रकृति को दो पक्षी और बताया है। कर्मों को वृक्ष का फल कहा है। अर्थात प्रकृति है, जीव और ईश्वर दो पक्षी हैं। जीव रूप पक्षी फल खाता कर्म कर्त्ता और भोक्ता है, परमेश्वर रूप दूसरा पक्षी कर्मों के भोग से रहित रहकर साक्षी और फल दाता है। इ ही प्र

वत, शुनः शेप, हरिश्चन्द्र और शान्तनु आदि की आलङ्कारिक अनेक कथायें हैं, जिनका प्रदर्शन समयानुसार आगे दर्शाया जायगा। इन कथाओं में प्रकृति के चमत्कार और मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों की व्यवस्था दिखाई गई है। विशेष समय की कोई विशेष घटना नहीं।

१८—कुतर्की वेद विरुद्ध तर्क भी किया करते हैं।

पौराणिक पण्डित कभी न्याय सिद्ध तर्क से काम नहीं लेते वे अवतार और साकार सिद्धि में "प्रजापतिश्चरति गर्भे" यजु ३१।१९ इस मन्त्र को पेश किया करते हैं। कभी "छेवाव ब्रह्मणो रूपे मूर्ताञ्चामतञ्च०" पेश करके कहते हैं कि प्रजापति परमात्मा गर्भ में आता है। ब्रह्म के मूर्त्त और अमूर्त दो रूप हैं अर्थात् साकार और निराकार दोनों हैं, जब इन से पूछा जाता है कि क्या पहले गर्भ में व्यापक नहीं था जो अवतार लेते समय आता है? "छेवाव ब्रह्मणोरूपे०" में आगे चलकर "मर्त्यञ्चामर्त्यञ्च" बृ ४।३।२ वाक्य भी पड़ा है जिसके अर्थ हैं मरने और न मरने वाला। क्या ब्रह्म मरता भी है? तो अपशब्दों के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं मिलता।

"एह्यश्मान मातिष्ठाश्मा भवतु तेतनू० अथव २।१३।४ पेश करके मूर्ति में ईश्वर का आवाहन सिद्ध करते हैं और कहते हैं कि इस मन्त्र में कहा गया है कि हे ईश्वर इस पत्थर में आ बैठ, तेरा शरीर पत्थर होवे। परन्तु यह नहीं सोचते कि ईश्वर तो पहिले से ही उसमें व्यापक है। क्या तुम्हारे कहने से वह व्यापक होगा? दूसरे यह कि इस ही मन्त्र में "करावन्तु सर्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम" आया भी हुआ है। तो क्या तुम्हारे ईश्वर को १०० वर्ष की आयु देवता करेंगे? ईश्वर को इतना आशीर्वाद दे रहे हैं! अच्छा तुम्हारा निर्बल ईश्वर है?

सत्यार्थ, प्रकरणानुसार, यथा स्थान दिखाया जायगा।

१६— वेद विरुद्ध तर्क करने वालों को आत्म लाभ नहीं होता। इन पौराणिकों को वेद विरुद्ध कुतर्क का यह फल मिला है कि ये ब्रह्म के सत्यस्वरूप से अद्यावधिकाल तक के लिये वञ्चित रह गये हैं। इन के सारे ही कर्मकाण्ड में ईश्वर को कहीं भी स्थान नहीं दिया गया। गायत्री में सूर्य की उपासना, विघ्न विनाशक मूषक वाहन गणेश, शान्तिदायक नवग्रह, यज्ञहवन दुर्गा देवी के प्रत्यर्थ, जाप के लिये सीताराम और राधाकृष्ण और पाप काटने को नदी और तालाब। यदि यह कहें कि "ये सर्व ब्रह्मरूप हैं" तो अन्यमतावलम्बियों के हजरत मुहम्मद और ह० ईसा आदि ब्रह्म नहीं है? यदि नहीं, तो क्यों? यदि हैं तो आपके भी उपास्य क्यों नहीं? आप इनके मानने वालों को म्लेच्छादि नाम से क्यों पुकारते हैं? ये लोग सत्यधर्म से इतने दूर जापड़े कि वेद और उपनिषद् प्रतिपादित निराकार ब्रह्म की भी खिल्ली उड़ाने लगे!!! यह सब इन के पापों का फल है।

२०— वेदों ने जिसके बोलने योग्य जो विषय है वह अपनी भाषा में वर्णन करके अन्यों के मुख पर रख दिया।

जिस प्रकार विवाह के समय बोले जाने वाले मन्त्र परमात्मा ने वरवधू के इस प्रकार कहलवाये—'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या०" में तुम को सौभाग्यवती बनाने के लिये तेरे हाथ को पकड़ता हूं। ये शब्द वेद के हैं परन्तु कहलवाये गये हैं वर से। इसही प्रकार "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः०" यह वाक्य वेद का है परन्तु कहलाया गया है वर और वधू के मुख से। इसी प्रकार कहीं राजा के मन्त्र हैं, कहीं प्रजा के कहने के, कहीं गुरू के कहने के कहीं शिष्य के कहने के और कहीं दासदासि के कहने के हैं।

पुरानी सन्ध्या, संस्कारविधि और सत्यार्थप्रकाश

श्री स्वामी जी ने सब से प्रथम संस्कृत में सन्ध्या ११ अक्तूबर सन् १८७४ ई० में आर्यप्रकाशप्रेस बम्बई में छपवाई थी। उस के पृष्ठ २०,२१ पर मृतक श्राद्ध का खण्डन किया है। सन् १८७५ ई० के पूना के व्याख्यानों में भी मृतक श्राद्ध का खण्डन विद्यमान है। सम्वत् १९३३ वि० की छपी संस्कारविधि में भी मृ० श्रा० का खण्डन है।

सम्वत् १९३२ वि० (सन् १८७५ ई०) का आदिम सत्यार्थप्रकाश यह सत्यार्थप्रकाश की प्रथमावृत्ति है जिसको राजा जयकृष्णदास जी सी०एस०आई० ने सन् १८७५ ई० में छपवाया था। इससे पूर्व सन्ध्या की ३० सहस्र प्रतियां सम्वत् १९२४ वि० के कुम्भ पर बांटने को छपाई जाचुकी थीं। इस समय श्री स्वामी जी महाराज को भाषा बोलते हुए थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था। मातृ भाषा गुजराती थी। सन् १८७३ ई० में कुछ २ भाषा बोलने लगे थे। सन् १८७४ ई० की जुलाई की १ तारीख को स्वामी जी प्रयाग पहुंचे। जभी राजा साहब को यह आदिम सत्यार्थप्रकाश लिखवा दिया, यह आदिम सत्यार्थप्रकाश श्री स्वामी जी का लिखवाया हुआ है न कि लिखा हुआ। सत्यार्थप्रकाश लिखवाने के उपरान्त श्री स्वामी जी महाराज बम्बई आदि नगरों में भ्रमण करते रहे। स्वामी जी इधर प्रचार कर रहे थे और उधर काशी के स्टार प्रेस में, म० हरविलास जी के प्रबन्ध से, यह आदिम सत्यार्थप्रकाश छपरहा था। इस अरसे में स्वामी जी महाराज पूना आदि नगरों में व्याख्यान देते रहे। स्वामी जी इसका प्रूफ आदि कुछ न देख सके। इस सत्यार्थप्रकाश के टाइटिल पेज के दूसरे पृष्ठ पर राजा जी ने यह निवेदन छपवाया है—'यह पुस्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती

साक्षी के समान मानता हूँ, और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २५ पंक्ति में पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ में "मर गये पित्रादिकों का तर्पण श्राद्ध करना है" इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में छपा है, सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा होना चाहिये कि जीवितों की श्राद्ध से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना, यह पुत्रादिका परम धर्म है, और जो मर गये हैं उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी को पहुँचा सकता है और न मरा हुआ जीव पुत्रादि के दिये हुए पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इस से यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में वेद मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अङ्क के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहीं देख लेना।"

सम्वत् १९३९ में सत्यार्थप्रकाश का संशोधन स्वामी जी के हाथों से हो चुका था। उस समय श्रीस्वामी जी उदयपुर में विद्यमान थे। श्रावण शुक्ला १० से लेकर फाल्गुण कृष्ण ७ सम्वत् १९३९ तक उदयपुर रहे। श्रीस्वामी जी महाराज के पत्र व्यवहार से विदित होता है कि संशोधित सत्यार्थप्रकाश के ११ समुल्लास सन् १८८२ ई० तक छप चुके थे। दसवां समुल्लास छप रहा था।

१३ जुलाई सन् १९८२ ई० के लिखे पत्र से सिद्ध है कि संशोधित स० प्र० की द्वितीया वृत्ति करीब २ छप चुकी थी। बाबू समर्थदान जी लिखते हैं कि "सत्यार्थप्रकाश का एक फर्मा तो और छपेगा पीछे से आप का पत्र आयेगा तो छापा जायगा कृपा करके पत्र शीघ्र दीजिये"।

चारण नवलदान का कथन है कि—

१— मैंने स्वामी जी से नया सत्यार्थप्रकाश जो उस वक्त ३६४ रुपे तक छप चुका था, ठाकुर गिरधारीसिंह रईस के वास्ते खरीदा था"। सम्वत् १९२४ में कुम्भ के पश्चात् श्री स्वामी जी कणेवास पहुंचे। वहां पर पण्डित पन्थ जी से श्राद्ध विषय पर वार्त्तालाप हुआ। स्वामी जी ने जीवितों का श्राद्ध बताया।

२— मयाराम जाट नम्बरदार शफी-गरने बयान किया कि हम ने स्वामी जी को सन् १८६८ ई० में चारानी, थारपुर, अनूपशहर में देखा था। स्वामी जी हमसे कह गये थे कि जिन्दों का श्राद्ध हमेशा करते रहो, और उत्तालादत्त को पद्धति बना कर दे गये थे कि इस रीति से करो। पृष्ठ ६४ जीवन चरित्र पण्डित लेखराम जी लिखित।

३— सन् १८७२ ई० के अन्त में दानापुर में व्याख्यान दिये, उन में मृतक श्राद्ध का खण्डन किया था। पृष्ठ १८४।

४— १८ मई सन १८७३ ई० को स्वामी जी पटने को गये। वहां पर मूर्त्ति पूजा, पुराण, श्राद्ध और पिण्डदान का खण्डन सुनाया। पृष्ठ २०५।

५— २२ जनवरी सं० १८७४ ई० को स्वामी जी हाथरस गये थे। वहाँ पर व्याख्यान मृतक श्राद्ध खंडन पर दिया। पृ२१५

६—रामघाट में भी मृतक श्राद्ध का खण्डन किया। पृ०८२।

७— पूना के व्याख्यानों में से १४ वाँ व्याख्यान ३ अगस्त सन १८७५ ई के दिन हुआ था। उसका विषय था आन्हिक अर्थात् नित्य कर्म तथा मुक्ति। इस व्याख्यान में जीवित वसु, रुद्र और आदित्य ब्रह्मचारियों को पितर बताया है। मृतक श्राद्ध का खण्डन किया है।

८— जीवनचरित्र के पृष्ठ ८६३ पर लिखा है कि—"फिर

१ बजे से सत्यार्थ प्रकाश और संस्कारविधि की कापियां, जो छपी हुई थी, उनको शोधते थे।" यह कापियां द्वितीया वृत्ति वाले सत्यार्थप्रकाश की थी।

इन उपर्युक्त प्रमाणों से भले प्रकार सिद्ध है कि स्वामी जी वैदिक मन्तव्यों के विरुद्ध स्वार्थियों ने कितनी कारस्तानी की है ?

उस समय स्वामी जी का न तो कोई प्रेस था, न कोई भी आर्य था जो वैदिक सिद्धान्तों की रक्षार्थ, स्वामिकृत ग्रन्थों की देख भाल करता। इस पर विशेषता यह कि श्री स्वामी जी महाराज संस्कृत और गुजराती भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा भले प्रकार जानते भी नहीं थे। इधर पौराणिक दल पूर्ण विरोध पर तुला बैठा था। ऐसी अवस्था में ग्रन्थों में दूसरों का हस्तक्षेप हो जना क्या आश्चर्य है ?

सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण पढ़कर श्री ठा० मुकुन्द-सिंह रईस छलेसर ने श्री स्वामी जी महाराज को एक पत्र में लिखा कि—मैं पार्वण श्राद्ध कराना चाहता हूँ, उस के लिए एक बकरा भी तैयार है, आप ही इस श्राद्ध को कराइये"

इस पत्र का उत्तर श्री स्वामी जी महाराज ने काशी से इस प्रकार से दिया।

"यह संस्करण राजा जयकृष्णदास द्वारा मुद्रित हुआ है। इस में बहुत अशुद्धियां रह गई हैं। शाके १७९६ वें में मैंने पञ्चमहायज्ञ विधि प्रकाशित कराई थी, जो कि राजा जी के सत्यार्थप्रकाश से एक वर्ष पूर्व छपी थी, उस में जब कि मृतक श्राद्ध आदि का खण्डन है तो फिर सत्यार्थप्रकाश में उसका मण्डन कैसे हो सकता है ? अतः श्राद्ध विषय में जो मृतक श्राद्ध और मांस विधान का वर्णन है, वह वेद विरुद्ध होने से त्याज्य है"। इस उत्तर को पाकर ठा० साहब ने अपना विचार छोड़ दिया (पण्डित सुखदेव जी वेदालङ्कार)

आदिम सत्यार्थप्रकाश और मांस

आदिम सत्यार्थप्रकाश लिखने से पहले ही स्वामी जी मांस का खण्डन करते थे। उसके देखने तक से उनको घृणा थी।

१— सम्वत् १९१२ के कुम्भ के मेले में जाकर स्वामी जी ने चण्डी पर्वत पर निवास किया। तदुपरान्त वह टिहरी पर्वत पर पहुँचे। एक पण्डित के निमन्त्रण देने पर स्वामी जी वहां उस के घर पर पहुँचे। वहां पर मांस बन रहा था। स्वामी जी ने मांस से अत्यन्त घृणा की और भोजन नहीं किया।

जी० च० पृष्ठ १३।१४ से।

२— मास मई सन १८६९ ई० स्वामी जी क़न्नौज पहुँचे। वहां पर कायस्थों की उत्पत्ति बतलाते हुए कहा कि यह पहले मांस नहीं खाते थे परन्तु जब से मांस खाने लगे तब से वैश्यों से पृथक् होगये। यदि मद्यमांस छोड़ कर प्रायश्चित्त करें तो उनका वैश्य बनना दुर्लभ नहीं। जी० च० पृष्ठ ११०

३— सन १८७० ई० के सितम्बर मास में स्वामी जी पटना और बांकीपुर पहुँचे। वहां पर मद्यमांस का खण्डन करते रहे।

जी० च० पृ० १८४।

४— ३१ दिसम्बर सन् १८७४ ई० को स्वामी जी अहमदाबाद गये। वहां पर वैनिंग कालेज में मांस निषेध पर व्याख्यान दिया था। पृ० १३३।

५— जुलाई सन १८७५ ई० में स्वामी जी ने पूना में १५ व्याख्यान दिये। उनमें से २० जुलाई को यज्ञ और संस्कार विषय पर व्याख्यान हुआ उसमें शतपथ के हवालों से यज्ञ में पशु वध का निषेध किया। और यह भी कहा कि "यज्ञ में

मांस खाना यह गपोड़ा भी नये पण्डितों ने निकाला है। .....देखो गौ जैसे परोपकारी निर्दोष पशु को खाने के लिये वा यज्ञ के लिये मारने से कितनी हानि होती है ?

अब तक तो इस बात का विचार शास्त्र और युक्ति से किया गया कि यज्ञ में पशुओं का बलिदान नहीं होना चाहिये। अब इस पर विचार किया जाता है कि क्या कभी होम में पशुओं को मारते भी थे या नहीं ?.....

परन्तु होम में मांसाहार का घुसेड़ना सदा ही अनुचित है। यह बतलाओ कि किसी प्राणधारी को दुःख देना धर्मानुसार कैसे हो सकता है ! फिर बेचारों को मुँह बन्द करके मुक्के मार २ कर उन की जान लेना ईश्वराज्ञा कभी नहीं हो सकती"। इस से सिद्ध है कि यह मांस लीला पौराणिकों की मिलाई हुई है"। सत्यार्थप्रकाश की रचना से बहुत पहिले स्वामी जी मृतक श्राद्ध और मद्य मांस का खण्डन कर चुके हैं। जब कि सत्यार्थप्रकाश की रचना से बहुत पहले श्री स्वामी जी महाराज मांस, पशु बलि और मृतक श्राद्ध का बल पूर्वक खण्डन कर चुके हैं तो कैसे कहा जा सकता है कि ये वेद विरुद्ध मत स्वामी जी का था ? यह तो अन्यों की ही कारस्तानी है यही मानना पड़ता है।

संवत १९३२ ई० की संस्कार विधि–

इस संस्कार विधि में भी विरोधियों ने कम कारिस्तानी नहीं की है। जहां तहां मांस का विधान घुसेड़ दिया है। हम पहले बता चुके हैं कि संवत १९३२ से पूर्व ही स्वामी जी मांस का भरपूर खण्डन कर चुके हैं। स्वामी जी ने संवत १९४० वि० की आषाढ़ बदी १३ रविवार को संस्कारविधि का पुनः संशोधन आरम्भ किया। स्वामी जी ने पुराने आदिम संस्कार विधि में

माँस का प्रकरण अन्यों का विधान किया हुआ बताया है। परन्तु सनातनियों ने, स्वयं माँस प्रचारक होते हुए भी, स्वामी जी को बदनाम करना आरम्भ कर दिया। अतः स्वामी जी ने मांसाहारियों का पक्ष भी निकाल डाला स्वामी जी ने माँस विषय के विचार निम्न रीत्या प्रगट किये थे—

१—"यह बात एक देशी है सर्व देशी नहीं, क्योंकि मांस से पौष्टिक गुण वाला द्रव्य, दुग्ध और औषधादिकों में अधिक ही हैं

संस्कार विधि सम्वत् १९३२ की छपी पृ० ११

२—यह बात माँसाहारी तथा एक देशीय लोगों के लिये हैं।

पृष्ठ ४२।

दही, मधु और घृत इनसे युक्त अन्न का प्राशन बालक को (अन्नपते०) इस मन्त्र से, करना यह सर्व देशी मत है।"

अन्नप्राशन संस्कार पृष्ठ ४२।

इस बात को पं० अखिलानन्द जी भी मानते हैं कि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ब्राह्मण ग्रन्थों और अन्य ऋषि प्रणीत ग्रन्थों में माँस प्रकरण को प्रक्षिप्त मानते थे। यथा--

"समाजी ब्राह्मणों (ब्राह्मण ग्रन्थों) को वेद नहीं मानते हमारे (ब्राह्मण ग्रन्थों) के अन्दर १३ वें काण्ड में जो अश्वमेधादि यज्ञों का वर्णन है (पशु हिंसा परक) दयानन्द उस को प्रक्षिप्त मानता है। "गणानांत्वा" इस मन्त्र को जो हमारा पाठ है उस का समाजी मजाक उड़ाते हैं। और जो हमारा पाठ महीधरादि का उद्धृत करते हैं उस का दयानन्दी खण्डन किया करते हैं" देखो हिन्दू पत्र मार्च १९२७ ई० पृष्ठ २३२।

देव सभा में वेदों की अपील लेखक :—

पं० अखिलानन्द काव्यरत्न पौराणिक

स्वामी जी के ग्रन्थों की भाषा पण्डितों ने बनाई

—मुझ को इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इस से भाषा अशुद्ध बन गई थी। सत्यार्थप्रकाश शताब्दि संस्करण की भूमिका पृष्ठ १५।

२—एक व्याख्यान का अनुवाद पं० महेश चन्द्र ने अशुद्ध किया उस दिन से दयानन्द ने निश्चय करलिया कि हिन्दी भाषा द्वारा ही उपदेश किया करेंगे। दयानन्द ग्रन्थ माला पृष्ठ ३४७।

३—इन अशुद्धियों में भाषा की कम और संस्कृत की अधिक हैं न जाने कितनी अशुद्धियां और निकलेंगी आगे से हम सब पुस्तक देखा करेंगे और अपना लिखाया और तुम्हारा शोधा पुस्तक भी मांग लिया करेंगे। अब से हम वेद भाष्य भी देखा करेंगे कि कितनी अशुद्धियां हैं; जो छप गया सो खैर परन्तु आगे कभी ऐसा न होगा। दयानन्द ग्रन्थ माला शताब्दि संस्करण पृष्ठ १०।

४—अब यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता जैसा कि पहले बनाता था। जैसी कि प्रतिदिन उन्नति करनी चाहिये, यह प्रति दिन गिरता आता है। दयानन्द ग्रन्थ माला पृष्ठ १८।

जो कुछ अधिक लिखा है वह विरोधियों की कारस्तानी है। पण्डित कालूराम जी ने लिखा है कि मैं ने स्वामी दयानन्द जी के लिखे पहले सत्यार्थ प्रकाश का अक्षर शः पुनः प्रकाशन किया है। यदि कोई एक भी अशुद्धि निकाल देगा तो उस को प्रति अशुद्धि १०) रुपये दण्ड दूँगा। इस पर पं० रामदुलारे लाल जी निम्नी निवासी ने नीचे लिखा नोटिस पं० कालूराम जी को दिया

नोटिस—बनाम पं०कालूराम शास्त्री पोष्ट अमरौधा जिला कानपुर

"आपने मुवक्किल देहली निवासी रामदुलारेलाल आर्य व रामभरदयालु के निवेदन अनुसार मैं आप को इत्तिला देता

हूं कि आपने जो पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश प्रथम संस्करण के नाम से लोकोपकारक धर्म संस मेरठ सन् १८७६ ई० में छपवाई है और जिस में प्रति शब्द इनाम वाला विज्ञापन दिया है। उस विज्ञापन की सारी शर्तों को मंजूर करते हुऐ हमारे उपयुक्त मुवक्किलान ने अत्यन्त परिश्रम से २००० अशुद्धियाँ तुम्हारी उक्त पुस्तक में निकाली हैं। और साबित करादिया है कि तुम्हारी छपाई पुस्तक (श्री स्वामी दयानन्द कृत सन् १८७५ ई० वाली प्रथमावृत्ति) सत्यार्थ प्रकाश की टू कापी (ठीक और शुद्ध नकल) नहीं है। इन कारणों से तुम्हारी प्रतिज्ञा अनुसार उक्त इनाम के अधिकारी हैं। इसलिए मैं आपको चेतावनी देता हूं कि इस नोटिस के मिलने की तारीख से १५ दिन के अन्दर २००००)रु० हमारे उक्त मुवक्किलान को अदा कीजिये वर्ना तुम्हारे खिलाफ़ अदालत में क़ानूनी चारा जाई की जावेगी और तुम खर्चे के जिम्मेवार होगे"।

भवदीय (हस्ताक्षर) मनोहरसिंह,
बी० ए० ऐल० ऐल० बी० वकील दिल्ली।
ता० २६।१।२६ ई०

यह नोटिस पं० कालूराम जी को जवाबी रजिष्ट्री द्वारा भेजा गया था जो उनको ३०।१।२६ ई० को मिल गया जिसकी रसीद भी आ गई जो उनके पास मौजूद है। परन्तु उत्तर कुछ नहीं आया। नोटिस की मियाद समाप्त होने पर पुनः ता० २।२।२६ ई० को जवाबी पोस्टकार्ड द्वारा याद दिलाई गई परन्तु उसका भी उत्तर कुछ नहीं आया। अब पाठक गण विचारें कि ये नाम धारी पौराणिक सनातनी कितने सत्यवादी हैं? क्या बिना असत्य और अंगेगल भाषण के ये ग्रास भी तोड़ते हैं? इन्ही पं० कालूराम जी शास्त्री न स्वर्गवासी

श्रीपं०तुलसीराम जी पर भी यह दोष लगाया है कि—स्वर्गीय पं० तुलसीराम जी ने अपने "पत्र" वेदप्रकाश अगस्त सन १९१० ई० के पृष्ठ १८२ पर यह लिख दिया है कि सत्यार्थप्रकाश की द्वितीयावृत्ति, श्री स्वा० द० जी की मृत्यु के उपरान्त इलाहाबाद की एक कमेटी ने लिखकर छपवाई है। वह लेख पं० तुलसीराम जी का नहीं है किन्तु पं० मोतीलाल जी का है जो कि उन्होंने स्वा० हरिप्रसाद जी के उत्तर में लिखा है। उसमें यह भी नहीं है कि द्वितीयावृत्ति सत्यार्थ प्रकाश इलाहाबाद की कमेटी ने रचा है।

पूरा लेख इस प्रकार है—

"आगे हरिप्रसाद जी तर्कों की आलोचनाके पश्चात प्रमाणों की आलोचना करते हैं। और उस प्रसिद्ध प्रमाण को, जो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने, सत्यार्थ प्रकाश में उद्धत किया है। आप कहते हैं कि यह लेख पण्डितों ने मिला दिया होगा। कृपानिधे अभी तो उन पुरुषों में से कई एक सज्जन जीवित है जिन्होंने स्वामी दयानन्द के मुख से मुक्ति से पुनरावृत्ति के व्याख्यान स्वयं सुने और (कस्यनूनं) वेद मन्त्र और (वेदान्त विज्ञान) उपनिषद् वचन उनके व्याख्यानों में आये थे। आप इतना शीघ्र उनके लिखे छपे और कहे प्रमाणों को और सिद्धान्तों को पण्डितों का कहा और लिखा बतला कर टालने लगे। न जाने आप जैसे सचातानी के प्रेमी अगले ५० वर्ष पश्चात् स्वामी जी के लेखों की क्या २ कुदशा करेंगे, जब कि स्वामी जी से साक्षात परिचय रखने वाले साक्षियों में से कोई नहीं रहेगा"?

"पाठक अब उस मन्त्र पर विचार करें जिसको स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने स० प्र० और वेद भाष्य में पुनरावृत्ति पर लगाया है। यह कहना नहीं बन सकेगा कि स्वामी दयानन्द के बदले अन्यों ने इस मन्त्र को भी सत्यार्थप्रकाश

और वेद भाष्य में अन्यथा व्याख्यान करके मिला दिया। क्योंकि सत्यार्थप्रकाश की द्वितीया वृत्ति आर्यसमाज प्रयाग की बनाई और स्वामी दयानन्द की स्वीकार की हुई वैदिक प्रेस कमेटी की निगरानी में छपी है और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के देहांत के पश्चात प्रेस कमेटी ने सिवाय संस्कृत से भाषा बनाने के वेद भाष्य में एक अक्षर भी पण्डितों को नहीं लिखने दिया है क्योंकि प्रेस कमेटी के सभासदों और उनके ऊपर परोपकारिणी सभा और उसके नियत किए हुए अधिष्ठाता और आर्य सामाजिक मैनेजर इन सब के सामने कोई पण्डित इतनी कार्यवाही कर सकता है कि पाठ के पाठ सत्यार्थप्रकाश में नये घुसेड़ दे और किसी को ज्ञान न हो और ३०वर्ष से सारे भारत—वर्ष के आर्यसमाजी, परोपकारिणी के सभासद, आर्यप्रतिनिधि सभायें, उनके अधिकारी और पण्डित लेखराम जैसे अन्वेषण कर्त्ता जिन्होंने सत्यार्थप्रकाश के लिखित पत्रों से सब पाठको एक वार वैदिक प्रेस में जाकर ढुंढवाया और मिलवाया और जहाँ २ सत्यार्थप्रकाश में नाम मात्र थे अध्याय, सूक्त, मन्त्र श्लोक आदि के ठ्योरे न थे उन सब को अपने घोर परिश्रम से ढूँढ कर रखवाया और छपवाया। इतने पर भी क्या सत्यार्थ-प्रकाश में मिलावट पांण्डतों की हो सकती है कि पुनरावृत्ति जैसे सिद्धान्त को नया घड़ कर मिला सके? जिस पर स्वामी जी ने व्याख्यान दिये, जिस के श्रोता फीरोजपुर, अमृतसर, शाह-जहांपुर, फर्रुखाबाद इत्यादि में अभी तक जीवित साक्षात हैं"।

वेदप्रकाश अगस्त १६१० ई० पृ० १८२

अब पाठकगण इस बात पर विचारें कि द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश की पयाग की कमेटी की बनी है या कमेटी को

आ० स० प्रयाग ने बनाया था ? फिर स्वामी जी महाराज की स्वीकृत की हुई कमैटी थी या स० प्र० की द्वितीयावृत्ति ? कृपया यह तो बताइये कि द्वितीयावृत्ति तो श्रीस्वामी जी महाराज के देहान्त के उपरान्त बनी फिर अपने जीवन काल में स्वीकार किसको किया ? पाठकगण ! संसार को भी अन्धा बनाने के लिये इतना पाठ वेदप्रकाश से उद्धृत करने से छोड़ दिया है नीचे रेखा खिची हुई है। कितना भारी धोखा है कि स्वामी जी ने स्वीकार की और प्रयाग समाज ने बनाई कमेटी उस के स्थान में सत्यार्थप्रकाश की द्वितीयावृत्ति बना दिया ? कितना घोरपाप, कितना खुला छल, कितना सफैद झूंट और कितना अक्षम्य अपराध किया है ? हम इन असत्य लिखने और बोलने वालों से पूंछते हैं कि थोड़े से जीवन के लिये यह पाप की गठरी सिर पर किस लिये रख रहे हैं ? आपके नवीन पुरषाओं ने संसार को भ्रम में डालकर तो एक वार भारतवर्ष का सर्व विनाश ही कर डाला जिसका फल इस समय की सन्तान भोग रही है,क्या आप के किये इस कुकृत्य का फल आने वाली सन्तान नहीं भोगेगी ?

सत्याथ प्रकाश के १३ वें और १४ वें समुल्लास कुछ सनातनी और ईसाई मुसलमान यह भी हल्ला मचाते हैं कि सत्यार्थप्रकाश के १३ वें और १४ वें समुल्लास श्री स्वामी जी के लिखे नहीं है—पहले सत्यार्थ प्रकाश में ये दोनों समुल्लास नहीं है—आर्यों ने ये दोनों समुल्लास, द्वितीयावृत्ति वाले सत्यार्थप्रकाश में पीछे से जोड़ दिए । पत्र व्यवहार के देखने से भले प्रकार सिद्ध हो जाता है कि ये दोनों समुल्लास स्वामी जी के ही लिखे हुए हैं। शीघ्रता के कारण नहीं छप सके थे। सत्यार्थप्रकाश को

मांग ज्यादा थी इसलिये शीघ्रता में पहले सत्यार्थप्रकाश में ये नहीं छप सके।

स्वामी जी का पत्र

"सत्यार्थ प्रकाश कितने अध्याय तक छपा है ? जल्दी छापो। यहां लोग लेने को बहुत कहते हैं। इसके बिना बहुत हरकत है। मुरादाबाद में कुरान के खण्डन का अध्याय शोधने के वास्ते गया रहा। आपके पास आया या नहीं ? जो न आया हो तो राजा जयकिशनदास जी को लिखो जल्दी भेज दें। और बाइबिल का अध्याय सब शुद्ध करके छाप दो"। जीवन चरित्र पं० लेखराम जी पृ० २३४। इससे सिद्ध है कि श्री स्वामी जी ने स्वयं ही ये दोनों समुल्लास तैयार कर लिए थे। मांग अधिक होने के कारण नहीं छप सके, आदिम सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ३०७ के वाक्य भी इस बात की पुष्टि करते हैं—

"एकादश समुल्लास शिक्षा के विषय में लिखे। इसके आगे आर्यावर्त वासी मनुष्य जैन, मुसलमान और अंग्रेजों (ईसाइयों) के आचार अनाचार सत्यासत्य मत मतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखेंगे। इनमें से प्रथम समुल्लास में आर्यावर्त वासी मनुष्यों के मतमतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायगा। दूसरे समुल्लास में जैन मत के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायगा। तीसरे में मुसलमानों के मत के विषय में खण्डन और मण्डन लिखेंगे। और चौथे में अंग्रेजों (ईसाइयों) के मत में खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायगा। सो जो देखा चाहे खण्डन और मण्डन की युक्त उन चारों समुल्लासों में देख लें। दस समु-

ल्लास तक खण्डन व मण्डन नहीं लिखा। क्योंकि जब तक बुद्धि मनुष्यों की सत्यासत्य विवेक युक्त नहीं होती तब तक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग करने में समर्थ नहीं होते।"

क्या ये पंक्तियां इस बात को सिद्ध नही करती है कि स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश दो भागों में विभक्त किया था—पहले भाग में १० समुल्लास रखने का विचार था और दूसरे भाग में चार का। इन चार भागों में क्रमशः सनातनी पौराणिक, जैन, बौद्ध, ईसाई और मुसलमानोंके मत की समालोचना की गई थी। जब लोगों ने सत्यार्थप्रकाश के लिये जल्दी मचाई तो १२ समुल्लास ही छाप कर विकवाने आरम्भ कर दिये।

धर्मपाल और आदिम सत्यार्थप्रकाश

जिस समय धर्मपाल फिर अबदुलगफर बन गया तब उसने आमदनी का जरिया निकालने और मुसलमानों की वाह वाह लूटने के लिये सब से पहले सत्यार्थप्रकाश का उर्दू तर्जुमा छपवा डाला। उस उर्दू सत्यार्थप्रकाश के २६ पृष्ठ पर वह इस प्रकार से लिखता है—

"स्वामी दयानन्द ने अपनी जिन्दगी में सत्यार्थप्रकाश का नया ऐडिशन निकाला था और जिसकी जखामत ३६४ सफेह की थी, और जिसको स्वामी दयानन्द ५ रुपये कीमत पर फरोख्त करते थे, उसमें मसीहियों और मुसलमानों के खिलाफ जबबात तो एक तरफ रहे हिन्दुओं के मुख्तलिफ फिरकों और जैनियों के बरखिलाफ लिखे गये ११ व १२ को भी स्वामी दयानन्द ने नजरअन्दाज कर दिया था।" देखो धर्मपाल के रुपये उर्दू स० प्र० पृ० २६।

कहिये पण्डित जी ! आपकी लकड़ी की टेक धर्मपाल ही कह रहा है कि सत्यार्थप्रकाश का नया-दूसरा एडिशन स्वामी जी ने अपनी जिन्दगी में निकाला था। जिन शब्दों के नीचे लाइन खिंची है उनको ध्यान से पढ़िए। फिर यह भी विचारने के योग्य बात है कि द्वितीया वृत्ति के सत्यार्थप्रकाश के १० समुल्लास तो २६० पृष्ठ तक ही समाप्त हो जाते हैं फिर ३६४ तक और क्या था ? ७४ पृष्ठों पर क्या मजमून था ? इसका उत्तर इन मतवादियों के पास इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि इन ७४ पृष्ठों पर यही शेष समुल्लास थे। यदि शेष समुल्लास स्वामी जी लिखित नहीं हैं तो फिर स्वामी जी यह क्यों कहते कि ईसाई और मुसलमानों के विषय के दोनों समुल्लास मुरादाबाद से मगालो।

सनातन धर्मी और मांस

इन पौराणिकों के कथनानुसार, यदि स्वामी जी का, 'मांस भक्षण करना उचित है' यह अपना मत था तब तो इनको प्रसन्न होना चाहिये। क्यों कि जो तुम्हारा मत है वही स्वामी जी का मत ठहरा। परन्तु ये लोग फिर भी आक्षेप किये ही जाते हैं कि स्वामी जी ने मांस खाना लिख दिया। जबकभी इन भले मनुष्यों से शास्त्रार्थ के समय यह प्रश्न किया जाता है कि तुम्हारे मान-नीय ग्रन्थ पुराण और स्मृत्यादि में मांस का विधान भरा पड़ा है, क्या यह वेदानुकूल है ? तो झट कोई उत्तर न देकर पुराना सत्यार्थ प्रकाश और पुरानी संस्कार विधि पेश कर देते हैं।

पहली बात तो यह है कि हम वैदिक लोग इन दोनों पुरानी पुस्तकों को मानते ही नहीं। क्यों कि स्वामी जी ने विज्ञापन

देकर इनको अमान्य ठहरा दिया है। अमान्य ठहराने का कारण भी स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि भाषा न जानने के कारण लिखने लिखाने में गड़बड़ी हो गई। स्मरण रहे कि स्वामी जी ने प्रेस की भूल कहीं नहीं बतलाई है।

दूसरे यह कि दूसरों के ऊपर आक्षेप करने से तुम्हारे मत्थे का कलङ्क कैसे मिट जायगा? स्वामी जी ने संस्कारविधि में मांस-विषय का वही उत्तर दिया है जो इस समय प्राय सनातनी देदिया करते हैं कि यह मांस का विधान मांसाहारियों और उन देशों के रहने वालों के लिये है कि जहां पर अन्न उत्पन्न नहीं होता। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि सत्यार्थप्रकाश तो मांस प्रचारक होगया और इनके पुराण मांस के निषेधक होगये? पुराणादि का मांस विषय, पुराणों की समालोचना के समय दिखाया जायगा।

पौराणिक लोग यह नहीं चाहते हैं कि कोई भी ग्रन्थ, वेदों से लेकर तुलसीकृत रामायण तक, निष्कलङ्क रहे। और न यह चाहते हैं कि ब्रह्म से लेकर कोई भिक्षु तक भी पवित्र सिद्ध हो सके। यही कारण है कि सारे ही ग्रन्थ कलङ्कित कर रक्खे हैं। कोई भी देवी देवता, ऋषि मुनि, अवतार, ब्राह्मण, राजा महाराजा और स्त्री इनको काली करतूत की कारिस्तानी से नहीं बच सके। मसल मशहूर है कि "जिसने अपनी उतरलो उसको दूसरों की उतारते क्या लगता है"? यही अवस्था इन अपने मानुषों की है कि जब अपने ही मान्य ग्रन्थ और इष्ट देव कलङ्कित और दूषित कर डाले तो इनके क्रूर हाथों से सत्यार्थ-प्रकाश और महर्षि दयानन्द जी कैसे सुरक्षित रह सकते थे?

इस लिये आवश्यक्ता हुई कि इनके लगाये हुए दोषों को दूर किया जाय। आर्यसमाज ने केवल सत्यार्थप्रकाश और स्वामी जी पर लगाये हुए मिथ्या दोषों को ही दूर नहीं किया किन्तु अपने अन्य पूर्वज ऋषि महर्षियों पर लगाये दोषों को भी दूर किया। निर्दोष वेदों के निर्दोष अर्थ करके उनके ऊपर से कलङ्क के भार को दूर किया। राम और कृष्ण के उज्वल चरित्र संसार के सामने रक्खे। आर्य जाति के प्राचीन गौरव को पुनः दर्शाया। स्त्री शिक्षा का पुनः प्रचार किया। दलितों की दशा सुधारी। वैदिक कर्मकाण्ड का प्रचार किया। हिंसा रहित यज्ञों का प्रतिपादन किया। अनाथ और विधवाओं की सुधली। गौ कन्याओं के कष्ट दूर किये। मादक द्रव्यों का बहिष्कार किया। संसार में विजय का डंका बजाया, वैदिक नाद सुनाया और गायत्री मन्त्र से यवनों के घर तक को गुँजाया। पञ्चयज्ञ का विधान बताया "तुम आर्य हो" यह उपदेश भारतियों को सुनाया।

परन्तु शोक कि ये सारे ही सुधार इन पौराणिकों को विष-वत् प्रतीत हुए। इन्होंने नहीं चाहा कि देश उन्नत हो। इस लिये विरोधियों से भी सहायता लेकर प्राचीन वैदिक धर्म और सभ्यता का नाश करने पर उतारु होगये, जिसके फल स्वरूप में "सनातन धर्म सभायें" और "वर्णाश्रम स्वराज्य सङ्घ" विद्यमान हैं, जोकि भारत की तबाही के निशान हैं। सारे ही नेता हैरान हैं कि यह कैसा तूफान है ?

प्रथम अध्याय

ईश्वर-प्रकरण ।

साकार व निराकार का निर्णय ।

ईश्वर निराकार है, यह वैदिक अटल सिद्धान्त है । इस ही सिद्धान्त को ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त सबही ऋषि मुनियों ने माना है । आधुनिक काल में भी स्वा० शङ्कराचार्य जी और महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने भी इस ही सिद्धान्त की पुष्टि की है । उदाहरण की रीतिपर हम कतिपय वेद मन्त्र और उपनिषद के वाक्य पाठकों के सामने शङ्कासमाधान सहित रखते हैं ।

१—सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपाप विद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः । यजुः अध्याय ४० मं ८

शब्दार्थ—जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी सब शक्तिमान् (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (अव्रणम्) छिद्र रहित और नही छेद करने योग्य (अस्नाविरम्) नाड़ीआदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित (शुद्धम) अविद्यादि दोषोंसे रहित होनेसे सदा पवित्र और (अपाप विद्धम) पाप शुन्य, पापकारी और पापों में प्रीति करने वाला

कभी नहीं होता (परि, अगात्) सब ओर से व्याप्त है जो (कविः) सर्वज्ञ, क्रान्त दर्शी (मनीषी) सब जीवों के मनों वृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप, जिसकी संयोग से उत्पत्ति, वियोग से विनाश, माता पिता, गर्भवास जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि स्वरूप अपने स्वरुप से उत्पत्ति और विनाश रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (याथातथ्यतः) यथार्थ भाव से (अर्थान्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर बनाता है ।

इस मन्त्र पर पूर्ण विचार।

प्रश्न—पं० कालूराम जी ने अपने ट्रैक्ट "निराकार भाम मर्दन" पृष्ठ ३ छापा शारदा प्रेस कानपुर ५ मई सन् १९३४ ई०, सं० १९७१ वि० प्रथमावृत्तिः में "अपाप विशुद्धम्" पाठ आया है। और आप "अपाप विद्धम्" पाठ छाप रहे हैं। इन दोनों में से कौनसा पाठ शुद्ध है ?

उत्तर—इन पौराणिकों की वेदों पर कुछ भी श्रद्धा नहीं है, अतः ये सदैव ही अश्रद्धावश वेदोंमें प्रक्षेप औरअशुद्ध पाठ सम्मिलित करते रहते हैं। वास्तव में पाठ अपाप विद्धम् ही शुद्ध है। इसके प्रमाण आगे समयानुसार ही दिये जायेंगे कि किस प्रकार स्वार्थ सिद्धि के लिये इन्होंने वेदों में अशुद्ध पाठ और प्रक्षेप कहां २ किये हैं।

प्रश्न—इसमें क्या प्रमाण है कि ब्रह्म अकाय होकर भी शरीर धारण नहीं कर सकता ? जीव भी तो अकाय है।

उत्तर—अकाय ब्रह्म शरीर धारण नहीं कर सकता; इस में निम्न लिखित हेतु हैं।

१—ब्रह्म अनन्त है, वह सान्त प्रकृति के घेरेमें नहीं आसकता।

२—शरीरका धारण करना कर्म वश होता है-ब्रह्म कर्म बन्धन से पृथक है।

३—वह सर्व शक्तिमान होने से निराकार रूपसे ही सब कुछ कर सकता है। शरीर धारण अल्प शक्तिवाले किया करते हैं।

४—ब्रह्म सर्वाधार है शरीर धारण करनेसे आधेय होजायगा सब आधार सब देशी होना चाहिये-आधेय एक देशी होता है।

५—जीव एक देशी है-वह शरीर के बन्धन में आ सकता है। जीव कर्मोंका कर्त्ता और भोक्ता है-ब्रह्म इन बन्धनों से रहित है।

प्रश्न—जिस प्रकार बिजली और अग्नि सबत्र रहते हुए भी एक स्थान पर प्रगट हो जाती है, वैसे ही ब्रह्म सर्व व्यापक होते हुए भी भक्तों के हेतु राम कृष्णादि के शरीरों में प्रगट होजाता है। सब व्यापक भी रहता है और एक देशी भी ?

उत्तर—प्रथम तो उपर्युक्त दोनों तत्वोंको सर्व व्यापक नहीं कह सकते, ये दोनों ही एक देशी हैं। दुजन्तोष न्याय से यदि मान भी लिया जाय कि ये सर्व व्यापक हैं, फिर इन के प्रगट होने से यह दोष आयेगा कि, जहां पर ये प्रगट होंगे वहां पर अन्य स्थान की अपेक्षा इनकी विद्यमानता अधिक होगी, इन में

विकार उत्पन्न होगा। जहां पर बिजली और अग्नि प्रगट होगी। यदि इनमें कोई विशेषता, प्रगट होने पर नहीं होती तो सब जगह एक ही सा प्रभाव क्योंनहीं रहता ? जहां२ पर बिजली प्रगट होती है वहां २ पर प्रकाश होता है,अन्य स्थानों पर नहीं अग्नि जहां २ पर विद्यमान है वहां पर दाहक शक्ति नही परन्तु जहां पर रगड़ आदि से प्रगट होती है वहां पर जलाने की युक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस ही को विकार कहते हैं। ब्रह्म एक रस निर्विकार कूटस्थ और अचल आदि गुणों से युक्त है। अतः उसमें विकार और न्यूनाधिकता नही होती।

प्रश्न—जब वेद ने "अकाय--शरीर रहित" कह दिया तो फिर "अव्रणम"शब्द क्यों डाला गया ? इससे तो वेद में वदती व्याघात" का दोष आता है ? क्या स्वामी दयानन्द वदतो व्याघात दोष वेद में मानते हैं ?

उत्तर—वैदिक ब्रह्म अपनी सर्वज्ञाता से जानता है कि पं० कालूराम जैसे कुतर्की उत्पन्न होंगे और वह अपनी अज्ञाता से ऐसे आक्षेप करेंगे। इसलिये केवल "आकायम्" कह देने से जो अति व्याप्ति दोष आता था उसका परिहार अगले २ शब्द "अव्रणाम्" और "अस्नाविरम्" बतौर विशेषण के डाल दिये हैं। "आकाय" के अर्थ हैं-काया रहित। 'काया' शब्द 'चिञ' चयने धातु से बनता है। 'देह' शब्द भी 'दिह' उपचये धातु से बनता है-दोनों शब्द-काया और देह पर्याय वाची हैं। अतः विदेह और अकाय ये दोनों भी एकार्थ

वाची हैं। विदेह जनकादि भी हुए हैं। यदि वेद केवल 'अकाय' ही कह देता तो यह अतिव्याप्ति-दोष जनकादि में आजाता। एक कुतर्की कह सकता था कि वैदिक ब्रह्म जनकादि के समान ही होगा; जिसका शरीर तो जनकादि के समान होगा, परन्तु देह के धर्मों का पालन नहीं करता होगा, जीवन मुक्त होगा। इसलिये वेद भगवान ने दो 'विशेषण' 'अव्रणम्' और "अस्नाविरम्" और सम्मिलित कर दिये जिससे शरीरधारी ब्रह्म का सन्देह न हो। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों का ब्रह्म में अभाव बतलाने को भी ये-अकायम्, अव्रणम् और अस्नाविरम् शब्द प्रयोग में लाये गये हैं।

प्रश्न—इसमन्त्र में "शुद्धम्" शब्द भी आया हुआ है। क्या बिना शरीर के भी पाप लगता है ?

उत्तर—तो क्या आपका ब्रह्म इसलिये साकार है कि उनको पाप अवश्य ही लगे ? निराकार में पाप नहीं लगता इसलिये साकार होना आवश्यक है कि ब्रह्म पापी बने ? पौराणिक पंडित जी के कथन का आशय यह है कि स्वामी जी ने "अपाप "विद्धम" का अथ ठीक नहीं किया। अपाप विद्ध साकार ही हो सकता है। क्योंकि पाप साकार को ही लग सकता है। निराकार को नहीं। इसलिये ऐसे ब्रह्म को मनाना चाहिये जिसमें पाप लगने की संभावना हो।

प्रश्न—"स्वयंभू" शब्द के अनादि स्वरूप अर्थ करना ठीक नहीं है। क्योंकि निराकार का रूप कैसा ?

उत्तर—'रूप' शब्द के अर्थ आकार किसी प्रकार नहीं हो सकते निरूपण करने वाले गुणों को रूप कहते हैं। जैसे ज्ञान स्वरूप, ज्योति स्वरूप, प्रकाश स्वरूप, आनन्द स्वरूप, ज्ञान, ज्योति, प्रकाश, आनन्द कोई साकार पदार्थ नहीं है। "स्वयं भवतीति स्वयंभू" जिसकी सत्ता स्वयं हो- किसी दूसरे की अपेक्षा से न हो, जिसका किसी ने उत्पन्न न किया हो। स्वयं शब्द के अर्थ करते हुये श्री स्वामी जी ने उन सारे ही कारणों का निषेध कर दिया है जिनके द्वारा कोई वस्तु उत्पन्न होती है। संयोगज उत्पत्ति, माता पिता द्वारा गर्भावास से उत्पत्ति, जन्म, वृद्धि ये सब उत्पत्ति के कारण हैं-इनसे ब्रह्म रहित हैं, जिसमें संयोग होगा उसमें वियोग भी होगा, फिर नाश भी होगा। जन्म और वृद्धि के साथ मरण भी होगा। अतः इन दोषों से ब्रह्म रहित है। पौराणिक लोग इस मर्म को नहीं जान सकते।

प्रश्न—ततः स्वयंभूर्भगवान्न व्यक्तो व्यञ्जन्निदम्।

महा भूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥ मनु० १। ६।

इस मनुस्मृत्ति के श्लोक में स्पष्ट बताया है कि "स्वयम्भू प्रगट हुआ"?

उत्तर—जब कि इस श्लोक में "स्वयंभू" का विशेषण "अव्यक्तः" पड़ा हुआ है, जिसके अर्थ पण्डित जी स्वयं "बाह्य इन्द्रियों से अग्राह्य"-बाहर की इन्द्रियों से न ग्रहण करने के योग्य करते हैं तो फिर स्वयंभू साकार कैसा? आपके पौराणिक ब्रह्मा को तो सबने देखा, उनसे बातचीत की। उनके सन्तान उत्पन्न

हुई। उन्होंने पार्वती और महादेव का विवाह कराया। फिर "अव्यक्त=बाह्य इन्द्रियों से अग्राह्य" कैसा? आपके पुराणतो विष्णु की नाभि से कमल द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति बतलाते हैं; आप यहां ब्रह्मा का अवतार कैसे कहने लगे? "प्रायुरासीत्" के साकार हो जाने के नहीं है प्रत्युत: प्रगट होने के हैं। आशय यह है कि ब्रह्माण्ड के प्रगट होने को, उसके कर्त्ता ब्रह्मा का प्रगट होना उपचार से कहा है। यह पौराणिक ब्रह्मा तो बुखारे में रहता था। वह तीन बार भारतवर्ष में आया। वह क्रमशः पुष्कर, प्रयाग और कुरुक्षेत्र में आकर ठहरा था। उसका कुटुम्ब था-मरने जीने वाला था।

प्रश्न—सनातन धर्म के मतानुसार वेद, साकार ईश्वर-ब्रह्मा द्वारा रचे गये हैं।

उत्तर—पहले ब्रह्मा को ईश्वर का अवतार तो सिद्ध कर दीजिए। जिस ब्रह्मा ने अपनी कन्या पर कुदृष्टि की हो क्या वह ईश्वर का अवतार हो सकता है? देखो भविष्य पुराण सर्गपर्व ३ खंड ४ अध्याय १८ श्लोक २६ पृष्ठ ११७

स्वकीयांचा सुतां ब्रह्मा विष्णु देवः स्वमातरम्।
भगनी भगवांश्छंभु गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात्॥ २६॥

अर्थात्—ब्रह्मा अपनी कन्या को, विष्णु अपनी माता को, भगवान् शम्भु अपनी बहन को ग्रहण करके श्रेष्टता को प्राप्त हुए। जो ब्रह्मा पार्वती को देखकर अपने मन को वश में न रख सका तो क्या वह ईश्वर का अवतार हो सकता है?

देखो—मुहुर्मुहुरणपश्यं वै तंदगं स्मर मोहितः ।
ततस्तद्दर्शनात्सद्यो वीर्यं मे प्राच्यु तद् मुनिः ॥ ७ ॥
रेतसा क्षरता तेन लज्जितोऽहं पितामहः ।
मुने कर्मदतच्छिन्नं चरणाभ्यांहि गोपयन् ॥ ८ ॥
तज्ज्ञात्वाच महादेवश्च कोपातीव नारद !
हन्तु मैच्छत्तदा शीघ्रं मां विधि काम मोहितम् ॥ ९ ॥
शिव पुराण पार्वती खंड ३ अ० ४९ ।

ब्रह्मा जी का यह अपना तहरीरी बयान है कि हे नारद जी ! मैं बार २ पार्वती के अंगों को देख कर काम से मोहित होगया । उस पार्वती को देखते ही मेरा वीर्य सस्खलित हो गया । ऐसा होने से मुझको बड़ी लज्जा आई । मैंने उसको पैरों से मसल कर छिपाने का यत्न किया । जब महादेव जी ने यह देखा तो क्रोधसे मुझे मारने की इच्छा की ।

कहिये यही आपके पौराणिक अवतार हैं ? धन्य हो !!! आपका भला तो इसही में है कि आगे कभी अवतार बाद का नाम तक न लें वर्ना ऐसी ही पोल खुलेगी ।

प्रश्न—ब्रह्म को "प्रत्यक्ष" कहा है । बिना अवतार के ब्रह्म का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता ?

उत्तर—आपके अवतार अभी साध्य कोटिमें है । साध्य का उदाहरण साध्यसम 'हेत्वाभास' कहाता है । क्योंकि इस समय आपका अवतारों का अभाव है । इसमें तो वैदिक लोगों का ही पक्ष सिद्ध है कि ब्रह्म निराकार है । यदि ब्रह्म साकार है तो

कहां है ? इस समय ब्रह्म सर्व व्यापक है किंवा एक देशी ? यदि कहो कि इस समय तो निराकार है परन्तु सृष्टिके आदि में अवतार लिया था और बीच २ में भी लेता रहा था। तो प्रश्न यह है कि इसमें क्या प्रमाण है ? यदि यह उत्तर होगा कि पुराणों में ऐसा लिखा है तो फिर यह प्रश्न होगा कि अवतार सिद्ध शब्द प्रमाण से हुई न कि प्रत्यक्ष प्रमाण से। इसलिये आपके अवतार ही साध्य कोटि में हैं।

प्रश्न—तार्किकों की एक कारिका हैं—

कर्तृत्व सिद्धौ परमेश्वरस्य, साकार सिद्धिः स्वत एव जातः।
घटस्य कर्ता खलु कुम्भकारो, कर्ता शरीरं न चानाशरीरी॥

अर्थात्—"जैसे कुम्हार साकार है तभी कर्ता भी है इसलिये ब्रह्म कर्ता हैं तो अवश्य साकार है।" इसका यही भाव है।

उत्तर—यह कारिका किसी तार्किक की नहीं किन्तु कुतर्की की कही हुई है। क्योंकि यदि कर्ता साकार ही हो तो अब भी तो बहुतसी प्रजा उत्पन्न हो रही है। नई २ लोक रचना भी हो रही है। यह सारा कार्य आपका कौनसा साकार कर रहा है ? यदि कोई साकार है तो वह प्रत्यक्ष क्यों नहीं ? दूसरे यह कि सृष्टि की आदि में अथवा उसके उपरान्त जब निराकार से साकार ब्रह्म बनजाता है तो वह निराकार साकार शरीर की रचना कैसे करता है ? आपके कथनानुसार प्रलय के समय ब्रह्म निराकार था। फिर उस निराकार ने पञ्चमहाभूत और महत्तत्व अहङ्कार को कैसे प्रगट किया ? महान्, अहङ्कार और पञ्चभूत भी

तो कार्य ही हैं। कार्य को ही रचना कहते हैं। महान से लेकर पंचभूत तक की रचना तो निराकार ने करली, आगे चलकर पौराणिक ईश्वर इतना निर्बल होगया कि बिना साकार हुये कुछ कर ही नहीं सका ? पण्डित जी महाराज ! अत्यन्त सूक्ष्म प्रकृति को प्रेरणा देने के लिये उससे भी सूक्ष्म ब्रह्म की आवश्यकता है, जो निराकार ही हो सकता है। स्थूल कुम्हार स्थूल मिट्टी को प्रेरणा देकर घड़ा बना सकता है, परन्तु जो मिट्टी के सूक्ष्म कारण हैं उनको कुम्हार प्रेरणा नहीं दे सकता। वहां पर उन कारणों से सूक्ष्म ब्रह्म की आवश्यकता है जो कि निराकार हो कोई कोई हठवादी यह कहते हैं कि "सपर्यगात्०" यह मन्त्र ब्रह्म विषयक नहीं किन्तु ज्ञानी जीव विषयक है। उनको जानना चाहिये कि इस मन्त्र में जो दो विशेषण ऐसे अये हैं जो ब्रह्म के ही हो सकते हैं। यथा—"पर्यगात्" और "परीभूः"। इनके अर्थ हैं सर्वव्यापक और सब ओर जिसकी महिमा विद्यमान हो ये विशेषण किसी भी जीव के नहीं हो सकते।

यजु० ४०-५ मन्त्र बताता है कि—"तदेजति तन्नैजति०" यहां पर भी ब्रह्म का प्रकरण है छठा मन्त्र "यस्तु सर्वाणिभूतानि०" बताता है कि जो मनुष्य सारे ही प्राणियों को आत्मा में देखता है। यह भी आत्मा को ही बताता है। सातवां मन्त्र है—"यस्मिन् सर्वाणि भूतानि०" यह भी आत्मा का ही बोधक है। आठवां "सपर्यगाच्छुक्रम०" है जो बताता है कि उपरोक्त आत्मा कैसा है—सर्वव्यापक आदि।

अतः यह मन्त्र ब्रह्म वाचक ही है न कि जीव वाचक।

प्रश्न—सपर्यगाच्छुक्रम्०" इस मन्त्र में 'स' यह सर्वनाम मुमुक्षुः आत्मा के लिये है और उस ही के लिये शुक्रम्, अकाय इत्यादि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। यहां पर ईश्वर का प्रकरण नहीं है।

उत्तर—इस ४० वें अध्याय में आरम्भ से ही ईश्वर का प्रकरण है। चौथे मन्त्र में "अनेजद्०" ब्रह्म का विशेषण है। पांचवें मन्त्र में भी "तदेजति०" यह भी ब्रह्म के लिये ही कहा है। छठे मन्त्र में "आत्मानम्" से बताया है कि—जो परमात्मा में सब प्राणियों को देखता है। सातवें मन्त्र में "यस्मिन्सर्वाणि भूतानि०" अर्थात् जिस परमात्मा में रहने वाले प्राणियों को अपनी आत्मा के तुल्य सुख दुःख वाला जानता है। अब आठवें मन्त्र में यह बतलाया है कि वह परमात्मा कैसा है? इसका विधायक यह "सपर्यगाच्छुक्रम्०" मन्त्र है। ऐसा भी स्वामी शङ्कराचार्य और महीधरादि दोनों ने ही माना है। प्रमाण में महीधर और एडलिंग की टीका प्रस्तुत की जाती है—

महीधरी टीका="एवं भूतात्मज्ञस्य फलमाह--यएवमात्मानं पश्यति सइदृशं ब्रह्म पर्यगात् परिगच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः"—

अर्थात्--इस प्रकार के आत्मज्ञानी के फल को कहते हैं, जो इस प्रकार आत्मा को देखता है वह ऐसे ब्रह्म को प्राप्त होता है, "कीदृशम्" कैसे ब्रह्म को? "शुक्रम्, शुक्लम्, शुद्धम्"।

अर्थात्—शुक्ल, और शुद्ध ब्रह्म को प्राप्त होता है। "अकायम् नकायः शरीरं यस्यतत्"—अर्थात्--अकाय उसको कहते हैं जिसके शरीर न हो। "अकायस्त्वादेवा व्रणमक्षतम्' अकाय होने से ही अव्रण और अक्षत है।.....'एतस्या ऋचोऽर्थातन्त्रम्—' इस ऋचा का दूसरा अर्थ यह है।

"यथा–योऽयमतीत मन्त्रोक्त आत्मा सपर्यगात् परितः सर्वत्रगच्छति नभोवत् सर्व व्याप्नोति व्याप्य च शाश्वतेभ्यो नित्याभ्यः समाभ्यः सवत्सराख्येभ्यः प्रजापतिभ्यो यथातथ्यतः यथाभूत कर्मफल साधनतः अर्थात् कर्त्तव्य यदार्थिन् व्यदधात् यथानुरूप व्यभजदित्यर्थः" अर्थात्--जो यह पहले कही हुई ऋचाओं में आत्मा है वह (कैसी है ?) सर्वव्यापक है, आकाशवत् व्याप्त होकर नित्य संवत्सर रूप प्रजापति द्वारा कर्मफल के अनुसार सारे पदार्थों का विभाजन किया'''।

"अकायोऽशरीरः लिङ्ग शरीर वजितइत्यर्थः"– अर्थात्—अकायः शरीर रहित—लिङ्ग शरीर वर्जित। ''' "सनित्य ईश्वर सर्वकृतवान्"—उस ईश्वर ने सबही उत्पन्न किया। "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे० बृहदा० पर शङ्कर स्वामी लिखते हैं--रूप्यते याभ्यां यदिदमरूपं ब्रह्म। = ब्रह्म रूप रहित हैं।

अब यजुर्वेद के इस मन्त्र पर निम्नलिख महोदय के विचार भी सुन लीजिये—"Sri Shankar explains—He (the Atma) encompassed or pervaded all, being bright, etc, thus puting the neuter

adjectives in opposition to the masculine Sah he The Bright etc. Brah ma, the Highest Essence, the Suprime being. अर्थात्—स्वामी शङ्कर वर्णन करते हैं कि वह आत्मा सर्व व्यापक और प्रकाश स्वरूप है इत्यादि। यहां पर पुल्लिङ्ग के स्थान में नपुंसक विशेषण दिया हुआ है। वह (ब्रह्म) प्रकाश स्वरूप, सर्वशक्तिमान् और सर्व श्रेष्ठ है। श्री वैष्णव संप्रदायके श्री माध्वाचार्य का भाष्य भी देखिये:—

शुक्रं तच्छोक राहित्यादव्रणं नित्य पूत इति।
पावनत्वात् सदा शुद्ध मकाय लिङ्ग वर्जनात्॥
स्थूल देहस्य साहित्या दस्नाविर मुदाहृतम्।
एवं भूतोऽपि सावंज्ञात्कविरित्येव शब्यते॥
संज्ञानानन्द शीर्षोऽसौ सज्ञानानन्द बाहुकः।
संज्ञानानन्द देहश्च संज्ञानानन्द यादवान्।
एवं भूतो महा विष्णुर्यथार्थ जगदीश्वरम्॥

ईशावास्य भाष्ये, सर्वमूल पृष्ठ ५४६।

इस भाष्यमें वेद अर्थ दर्शाये गये हैं जोआर्य समाज मानता है। इतनी और विशेषता है कि-उसके सारे ही अंङ्ग अलङ्कार रूप से ज्ञानमय आनन्द स्वरुप और महान् बतलाये हैं। ऊपर बताया जाचुका है कि यह ४० वां अध्याय निराकार ब्रह्म का ही प्रतिपादन करता है। देखिये महीधर भी निराकार ब्रह्म का ही प्रतिपादन कर रहे हैं।

मन्त्र—४ "अनेजदेकम्" पर—"यत ब्रह्म अनेजत् एज् कंपने, न राजतीत्यनेजत् अचलत् स्वावस्था प्रच्युति· कंपन तद्र-हितम् सदैकरूपमित्यर्थः" अर्थात्-जो ब्रह्म हिलता डुलता नहीं चलायमान नहीं अपनी अवस्था से च्युत नहीं होता-सदैव एक रूप रहता है।

मन्त्र—५ "तदेज तत्तन्नैजति" पर—"अचलमेव सन् मूढ़ दृष्ट्या चलतीवेत्यर्थः"·····"अस्य सर्वस्य बाह्यतः वहिरपि तद तदेव ब्रह्म नभोवत् व्यापकत्वात्।"

अर्थात्—वह अचल ही है,मूढ़ लोगों की दृष्टि में चलता हुआ प्रतीत होता है।····यह सबके बाहर वही ब्रह्म है अर्थात् आकाश के समान व्यापक है।

हम अब सनातनी पण्डितों से पूछते हैं कि क्या सर्वव्यापक सर्वज्ञ, सर्वानन्द, ज्ञानस्वरूप, आकाशवत व्यापक, निश्चल, निर्विकार, शुद्ध,पाप रहित और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण किसी साकार वस्तु के हो सकते हैं ? साकार वस्तु के तो क्या किसी मुक्त आत्मा के भी नहीं हो सकते। मुक्त आत्माओं की शक्ति का वर्णन मुक्ति विषय में आयगा। (इस यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के ८ वें मंत्र पर विशेष दृष्टि) इस मंत्र का क्रम परमात्मा ने ऐसा विज्ञान युक्त रक्खा है कि बड़े २ विज्ञान वेत्ता मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगते हैं, इस मंत्रका पहला शब्द सः है। 'सः' एक वचन है। इससे दर्शाया गया है कि ब्रह्म एक ही है। अगला शब्द है पर्यगात इससे यह स्पष्टकिया कि सर्व व्यापक एक ही हो

सकता है अथवा जो सर्वव्यापक होगा वह एक ही होगा। इससे अगला शब्द 'शुक्रम्' है। अर्थात् सर्वव्यापक ही सर्वशक्तिमान् हो सकता है। अथवा सर्वशक्तिमान के लिये सर्वव्यापक होना आवश्यक है। उससे आगे का शब्द है—'अकायम्'। इससे क्या सिद्ध हुआ कि—सर्व शक्तिमान् को निराकार होना जरूरी है। साकार सर्व शक्तिमान् सर्व व्यापक और सर्वज्ञ नहीं हो सकता। ऐसे गुणवाले दो हो सकते हैं। अकाय=विदेह दो प्रकारके होते हैं। एक वे जो नस नाड़ी वाला, व्रणवाला और चर्म युक्त शरीर रखते हुए भी देह के धर्मों से पृथक रहते हैं। वे भी अकाय, विदेह कहाते हैं। दूसरा वह जो नस नाड़ी और व्रणवाला शरीर भी नहीं रखता वह कौन है ? ब्रह्म। मुक्त आत्मा भी तीनों प्रकार के शरीरों से रहित रहता है—केवल शुद्ध शक्तियां इसके साथ रहती हैं। परन्तु वह सर्व व्यापक और सर्व शक्तिमान, सृष्टिकर्ता पालनकर्ता और प्रलय कर्ता नहीं होता। ब्रह्म में ये सब ही गुण हैं।

इससे आगे 'शुद्धम' शब्द आया है। इससे यह सन्देह दूर किया कि, वह भूतपदार्थों में व्यापक होकर भी शुद्ध, निर्लेप रहता है। फिर इसके उत्तर अपाप 'विद्धम्' है। इससे यह दर्शाया कि शरीरों में व्याप्त रहकर भी उनके पापों का कर्ता भोक्ता नहीं।

फिर" कविः"शब्द है। क्रान्तदर्शी वही होगा जो अपाप शुद्ध निराकार, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक होगा "मनीषी" भी उपयुक्त विशेषण वाला हो सकता है।

सकता है अथवा जो सर्वव्यापक होगा वह एक ही होगा। इससे अगला शब्द 'शुक्रम्' है। अर्थात् सर्वव्यापक ही सर्वशक्तिमान् होसकता है। अथवा सर्वशक्तिमान के लिये सर्वव्यापक होना आवश्यक है। उससे आगे का शब्द है—'अकायम्'। इससे क्या सिद्ध हुआ कि—सर्व शक्तिमान् को निराकार होना जरूरी है। साकार सर्व शक्तिमान् सर्व व्यापक और सर्वज्ञ नहीं हो सकता। न ऐसे गुणवाले दो हो सकते हैं। अकाय=विदेह दो प्रकारके होते हैं। एक वे जो नस नाड़ी वाला, व्रणवाला और चर्म युक्त शरीर रखते हुए भी देह के धर्मों से पृथक रहते हैं। वे भी अकाय, विदेह कहाते हैं। दूसरा वह जो नस नाड़ी और व्रणवाला शरीर भी नहीं रखता वह कौन है ? ब्रह्म। मुक्त आत्मा भी तीनों प्रकार के शरीरों से रहित रहता है—केवल शुद्ध शक्तियां इसके साथ रहती हैं। परन्तु वह सर्व व्यापक और सर्व शक्तिमान, सृष्टिकर्ता पालनकर्ता और प्रलय कर्ता नहीं होता। ब्रह्म में ये सब ही गुण हैं।

इससे आगे 'शुद्धम' शब्द आया है। इससे यह सन्देह दूर किया कि, वह भ्रष्टपदार्थों में व्यापक होकर भी शुद्ध, निर्लेप रहता है। फिर इसके उत्तर अपाप 'विद्धम्' है। इससे यह दर्शाया कि पापियों में व्याप्त रहकर भी उनके पापों का कर्ता भोक्ता नहीं।

फिर" कविः"शब्द है। क्रान्तदर्शी वही होगा जो अपाप विद्ध शुद्ध निराकार, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक होगा "मनीषी" भी उपयुक्त विशेषण वाला हो सकता है।

"परिभू" उपर्युक्त गुणवाला ही परिभू हो सकता है। "अग्नेय' यज्ञ मध्वरम् विश्वतः परिभूरसि" पर सायण—परिभूः पारितः प्राप्त वानसि। ऋ०१।१।४ "स्वयभूः भी नित्य पदाथ ही हो सकता है। ऐसे उपर्युक्त लक्षण वाला ब्रह्म हीं सत्य २ वेद को सदैव रहने वाली प्रजा के हित प्रगट करता है।

नित्य प्रजा की रक्षा के लिये नित्य की आवश्यकता है। नित्य ब्रह्म के लिये नित्य ज्ञान की आवश्यकता है अथवा नित्य ज्ञान के लिये नित्य ब्रह्म की आवश्यकता है। इस प्रकार की विशाल प्रजा के लिये इस सब का आधार महान ब्रह्म की अपेक्षा है। वह महान सर्वशक्तिमान, और शुद्ध पापरहित और मनीषी हो यह अत्यावश्यक है।

इस प्रकार यह वेद मन्त्र महान् विज्ञानयुक्त है। अन्य विशेष गहराई तक पाठक स्वयं ही पहुंचने की कृपा करें।

यह बात भी स्मरण करने योग्य है कि साकार नतो नित्य हो सकता है न सर्वव्यापक। न सर्व शक्तिमान्। परन्तु ब्रह्म को सर्वाधार सर्वव्यापक और सर्व शक्तिमान् आदि बताया है। यथा-

यो भूतानामधिपति र्यस्मिन्लोकाअधिश्रिता। य ईशे महतो महांस्तेन गृह्णामि त्वामहंमपि गृह्णामित्वामहम॥ यजु अ०२० मन्त्र ३२।

इस मन्त्र में परमात्मा को सारे भूतों का अधिपति, सारे ही लोकों का आधार, बड़े २ (आकाश) पर शासन करने वाला

और अपने हृदय में ही ग्रहण करने योग्य बतलाया गया है। क्या एक देशी साकार सब का आधार और सब पर शासन करने वाला हो सकता है, कदापि नहीं। महीधर ने भी ईश्वर को सर्वाधार ही माना है यथा—"यः परमात्मा भूतानां जरायवादि भूतानां चतुर्विधानामधिपतिः अधिकं पालकः यस्मिन आत्मनि लोका भूरादयोऽधिश्रिताः लोका पदाधारा इत्यर्थः"।

अर्थात्—जो परमात्मा जरायुज आदि चारों प्रकार के प्राणियों का अधिपति—पालक है। जिस आत्मा में भूः इत्यादि लोक ठहरे हुए हैं—लोकों का आधार। आधार का क्षेत्र सदैव आधेय से बड़ा होता है। जब कि शासित महान् आकाश ब्रह्म के शासन में है तो महतो महान् निराकार ब्रह्म क्यों नहीं हुआ?

प्रश्न—जब कि आप वैदिक लोग महीधर आदि को नहीं मानते तब उनकी टीकाओं का प्रमाण क्यों देते हैं?

उत्तर—१२ वें नियम के अनुसार, "पराया मत यदि अपने अनुकूल (वेदानुकूल) है तो अपना ही मत है।" हम प्रत्येक अपने अनुकूल वाक्य को मान सकते हैं। इसलिये किस ही पुस्तक का प्रमाण, जो वेदानुकूल होगा हमारे लिये, अपने सिद्धान्त की पुष्टि में, प्रमाण हो सकता है, चाहे वह कुरान और इंजील ही क्यों न हो।

३ ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति यइत्तद्विदुस्तइमे समासते। ऋ०—१—१६४३९।

इस मन्त्र में बताया है कि उस अविनाशी परमात्मा में सारा ब्रह्माण्ड ठहरा हुआ है, जो उस परमात्मा को नहीं जानता वह वेद पढ़कर भी क्या करेगा ? आदि ।

प्रश्न—"व्योमन्" के अर्थ परमेश्वर कैसे हो गया ।

उत्तर—"आकाशस्तल्लिगात्" वेदान्त १-१-२२

"विशेषणाच्च ।" वेदान्त १-२-१२

के अनुसार आकाश परमात्मा का, प्रकरणानुसार, नाम है । सायणाचार्य भी ऐसा ही अर्थ करते हैं—

"उत्कृष्ट परब्रह्मस्वरूपे आकाशस्तल्लिगादित्यनेन व्यास सूत्रेण आकाश व्योमादि शब्दानां ब्रह्मपरत्वं निर्णीतम् ।"

ऐतरेय ब्राह्मण खंड १-१३ पृष्ठ ८३७ ।

अर्थात्—"आकाशस्तल्लिगात्" इस व्यास सूत्र से आकाश और व्योम आदि शब्द ब्रह्मपरक निर्णय किये हैं । अब विचारिये कि साकार ईश्वर में सारा संसार कैसे समा सकता है ? अतः ब्रह्म निराकार है । इस मन्त्र पर निरुक्त—

ऋचो अक्षरे परमे व्यवने यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः सर्वो यस्तन्न वेद कि सऋचा करिष्यति । निरु० १३-१० । इससे भी यही सिद्ध है कि—ऋचाये परमरक्षक अक्षर में है । ओ३म् में सारे देवता स्थित हैं । उसको जानना चाहिये ।

४-ईशा वास्यमिदं सर्वं जगत् । यजु० ४०-१ ।

इससे भी सिद्ध है कि—यह सब जगत् ईश्वर से व्याप्त

है—इस जगत का और ईश्वर का व्याप्य व्यापक संबन्ध है। सारे जगत में व्यापक साकार नहीं हो सकता।

५—वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद् यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्। यस्मिन्निदꣳसञ्च विचैति सर्वꣳस ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु। ८। यजु० ३२। ८

अर्थ—(यत्र) जिसमें (विश्वम्) सब जगत (एकनीडम्) एक आश्रय वाला (भवति) होता है (तत्) उस (गुहा) बुद्धि वा गुप्त कारण में (निहितम्) स्थित है। उस (सत) नित्य चेतन ब्रह्मको (वेनः) पण्डित विद्वान्जन (पश्यत्) ज्ञान दृष्टि से देखता है (तस्मिन्) उसमें (इदम्) यह (सर्वम) सब जगत (सम्, एति) प्रलय समय में संगत होता है (च) और उत्पत्ति समय में (वि) पृथक् स्थूल रूप (च) भी होता है। (स) वह (विभूः) विविध प्रकार व्याप्त हुआ (प्रजासु) प्रजाओं में (ओतः) आड़े सूतो में जैसे वस्त्र (च) तथा (प्रोतः) आड़े सूतों में जैसे वस्त्र, वैसे ओतः प्रोत हो रहा है।

प्रश्न—"ओतः प्रोत" के अर्थ तो यह हैं कि यह जगत् और जीव सब ही ब्रह्म है। जगत में ब्रह्म ताने बाने की तरह है?

उत्तर—ओतः प्रोत ये दोनों शब्द मिलकर सब व्यापक हो जाता है। यह आशय कदापि नहीं है कि यह सारा प्रसार ब्रह्म रूप ही है। देखो आप्टे की डिक्शनरी में इस के क्या अर्थ किये हैं?

"ओतः प्रोतः—Sewed cross wise and length wise, extending in all directions।

अर्थात्—आरपार गया हुआ लंबाई में और चौड़ाई में सारी दिशाओं में व्याप्त।

प्रश्न—महीधर तो 'विभूः' के अर्थ "कार्य कारण रूपेण विविध भवतीति विभूः" अर्थात् कार्य कारण रूप से बहुत प्रकार का हो जाता है इस लिये वह विभू है।" ऐसा करते हैं ?

उत्तर—महीधर और उव्वट आदि अद्वैत वादी थे, इस लिये वह ऐसा अर्थ कर गये। यदि वह ब्रह्म कार्य कारण रूप हो जाता है तो श्वेताश्वतर उपनिषद में यह क्यों कहा जाता कि—"नतस्य कार्यं करणञ्च विद्यते" 'विभूः'के अर्थ महीधर २२-१६ में समर्थ के करता हैं। यथा—विभूरसि समर्थोऽसि" विभवति विभूः श्री स्वामीजी व्यापक अर्थ करते हैं। तर्कसंग्रह की टीका में "सर्व मूर्त्तद्रव्य सम्बन्धत्वं विभूत्वम्" किया है।

अर्थात्—न उसका कोई कार्य है न कारण है। आप्टे अपनी डिक्शनरी में विभू के अर्थ—To pervode, व्यापन शील धातु से बनाकर, सर्वव्यापक करते हैं। महीधर "निहितं गुहायाम्" का अर्थ—दुर्ज्ञेय कठिनता से जानने योग्य करते हैं। देखना तो दूर रहा वह जाना भी कठिनता से जाता है।

६—ऐषोह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वोह जातः सउगर्भे अन्तः सएव जातः सजनिष्यमाणः प्रत्यङ जनास्तिष्ठति सर्वतो मुखः। यजु० ३२-४।

हे (जनाः) विद्वानो। (एषः) यह (ह) प्रसिद्ध परमात्मा (देवः) उत्तम स्वरूप (सर्वाः) सब दिशा और (प्रदिशः)

विदिशाओं को (अनु) अनुकूलता से व्याप्त होकर (सः) वह (उ) ही (गर्भे) अन्तः करण के (अन्तः) बीच (पूर्वः) प्रथम, कल्पके आदि में (इ) प्रसिद्ध (जातः) प्रकटता को प्राप्त हुआ। (सः एव) वही (जातः) प्रसिद्ध हुआ (सः) वह (जनिष्यमाणः) आगामी कल्पों में प्रथम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा (सर्वतोमुखः) सब ओर से मुखादि अवयवों वाला अर्थात् मुखादि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त हुआ (तिष्ठति) अचल सर्वत्रस्थिर है।

प्रश्न—"जातः" का अर्थ उत्पन्न हुआ ऐसा होता है।

उत्तर—'जातः' शब्द 'जनी' प्रादुर्भावे धात से बना है। प्रादुर्भाव के अर्थ अभाव से भाव में अथवा उत्पन्न होने के नहीं है किन्तु छिपी हुई वस्तु के प्रगट होने के हैं, प्रलय के समय परमात्मा अप्रगट सा रहता है मानो गर्भ में छुपा है। उत्पत्ति के समय प्रगट हो जाया करता है, महीधर कहते हैं प्रसिद्धम् एषो हदेवः सर्वाः प्रदिशः अनुतिष्ठति व्याप्य स्थितः। सर्वतो मुखाद्यवयवायस्य अचिन्त्य शक्ति रित्यर्थः।"

अर्थात्— यह प्रसिद्ध देव सब दिशाओं में व्याप्त होकर स्थित है। सर्वतो मुखका अर्थ है अचिन्त्य शक्ति रित्यर्थः।"

अर्थात्—यह प्रसिद्ध देव सब दिशाओं में व्याप्त होकर स्थित है। सर्व तो मुखका अर्थ है अचिन्त्य शक्ति वाला। अब विचारिये कि साकार सारी दिशा विदिशाओं में कैसे व्याप्त हो सकता है? अतः ब्रह्म निराकार ही है।

७—सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषा दधि।

नैन मूर्द्ध नतिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् । यजु० ३२ । २

अर्थ—जिस (विद्युतः) विशेषकर प्रकाशमान् (पुरुषात्) पूर्ण परमात्मा से (सर्व)सब (निमेषाः) निमेष कला काष्ठा आदिकालके अवयव (अधिजज्ञिरे) अधिक कर उत्पन्न होते हैं । उस (एनम) इस परमात्माको कोई भी (न) नहीं (ऊर्ध्वम्) ऊपर न (तिर्यञ्चम्) तिर्च्छी सब दिशाओं में वा नीचे की ओर (न) न (मध्ये) बीचमें (परि, जग्रभत) सब ओरसे ग्रहण कर सकता है। साकार ही सब ओर से पकड़ा जा सकता है, निराकार को कोई नहीं पकड़ सकता। अतः ब्रह्म निराकार है।

८—न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः यजु० ३२ । ३ ।

अर्थः—(तस्य) उस परमात्माकी (प्रतिमा) मूर्ति, परिमाण और प्रतिकृति आदि (न) नहीं हैं यस्य जिसका (नाम) नाम (महद्यशः) बड़े यश वाला है।

प्रश्न—'प्रतिमा के अर्थ समान के हैं, अर्थात उसके समान कोई नहीं है, यहां निराकार का विषय नहीं।

उत्तर—प्रतिमा शब्द के अर्थ आप्टे इस प्रकार करते हैं। **An image,a liken ces, statue, figure, an idol, a meas- ure, extent** और **sym- b e figure shope and form** के हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर अनुपम एवं मूर्ति रहित है। अतः वह परमात्मा निराकार सिद्ध हुआ।

९—त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णु रु रु

गायो नभस्यः । त्वं ब्रह्मा रपिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्त्तः सव से परन्ध्या ।

अर्थात्—हे सूर्य के समान प्रकाशमान ! तू ऐश्वर्यवान् सब सुखों को देने हारा, समस्त सत पुरुषों के बीच पूज्यनीय है। तू ही विष्णु है, तू ही बहुतों से स्तुति किये जाने योग्य है, तू ही ब्रह्मा है, तू ही सब पदार्थों का ज्ञाता है। हे वेदों के स्वामी ! हे सब के धारक ! तू पूर्ण विद्या को धारण करने हारा हमारे साथ रह।

१०—एकः सुपर्ण स समुद्र माविवेशः स इदं भुवनं विचष्टे। तंपाकेन मनसाऽप्यतूर्यमन्ति तस्तं माता रेलहि स उ रेल्हि मातरम् । ऋ० १० । ११४ । ४ ।

अर्थात्—वह परमात्मा एक है, पालन पोषण करने वालों में सर्व श्रेष्ठ है, वह आकाश में, सारे भुवनों में प्रविष्ट है। उसको पवित्र मन से स्मरण करना चाहिये, वह माता के समान सम्मान करता है।

११—पीरत्य भूतानि परीत्य लोकान् पीरत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमाजामृतस्यात्मना त्मान मभि संविवेश ॥ यजु० ३२ । ११ ।

अर्थ—जो (भूतानि) प्राणियों को (परीत्य) सब ओर से व्याप्त होकर (लोकान्) पृथिवी सूर्यादि लोकों को (परित्य) सब ओर से व्याप्त होकर (च) और ऊपर नीचे (सर्वाः) सब (प्रदिशः) आग्नेयादि उपदिशा तथा (दिशः) पूर्वादि दिशाओं को (परीत्य) सब ओर से व्याप्त होकर (ऋतस्य) सत्य के

(आत्मानम्) स्वरूप वा अधिष्ठान को (अभिसंविवेश) सन्मुखतासे सम्यक् प्रवेश करता है (प्रथमजाम्) प्रथम कल्पादिमें उत्पन्न चार वेद रूप वाणी को (उपस्थाय) पढ़ वा (सम्यक) सेवन करके (आत्मनः) अपने शुद्धस्वरूप वा अन्तःकरण से उसे प्राप्त हूजिये।

१२—अम्भो अभो महः सह इति त्वोपास्महे वयम्।
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम्।
अथर्व का १३। सू ४ ५९। ५१॥

१३—उरुःपृथुःसुभूर्भुवः इतित्वोपास्महे वयम् ५२।

१४—प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ५३।

१५—विश्व मन्या भोरं तद्-यस्या मधिश्रितं दिवेच विश्व वेदसे पृथिव्यै चकार नमः॥ अथर्वका० १ ३३ ४

१६—वेनास्तत् पश्यत् परम गुहायद् यत्र विश्वं रूपम् इदं पृथिवी रदुहम जयमानाः सवर्विदो भवत्येकरूपम् अभ्य्नृपतन्राः॥ २। १। १।

इनके क्रमशः अर्थ ये हैं—

५०—हे परमात्मा! (वयम्) हम (त्वा) आपकी (अम्भः) सर्वव्यापक जल के समान (अमः) ज्ञानस्वरूप के समान (महः) महान् तेजस्वरूप, परम पूजनीय (सहः) सर्व वशयिता (इति) इन गुणोंसे (उपास्महे) उपासना करते हैं।

५१—हे परमात्मन्! (वयम) हम (अम्भः) जल के समान सब प्राणोंके उत्पादक अरुणाम् प्रकाश स्वरूप (रजतम्) चितके अनुरञ्जक, आनन्दस्वरूप (रजः) समस्त लोकों और ऐश्वर्य

विभूतियों सम्पन्न (सह) सबके वश करने वाले परम बल स्वरूप (इति इन गुणों और रूपों से (त्वा उपास्महे) तेरी उपासना करते हैं।

इस उपर्युक्त मन्त्र में परमात्मा को सब ओर से नमस्कार किया है। इस मन्त्र में परमात्मा का विशेषण "अन्तरिक्ष" दिया है। अन्तरिक्ष साकार नहीं है प्रत्यक्ष निराकार और विस्तृत है। अतः यह मन्त्र निराकार का प्रतिपादन करता है। गीता भी इसमें साक्षी है—

५२—हे परमात्मन्! (वयम्) हम लोग (उरुः) सर्वशक्तिमान, महान् (पृथुः) अतिविस्तृत, सर्वव्यापक (सुभूः) उत्तम शक्तिरूप में समस्त पदार्थों में वर्त्तमान (भुवः) अन्तरिक्ष के समान व्यापक वा सर्वत्र का उत्पादक इत्यादि गुणों और रूपों से (त्वाउपास्महे) तेरी उपासना करते हैं।

५३—हे परमात्मा! (वयम्) हम (त्वा) तुमको (प्रथः) सब से अधिक विस्तृत (वरः) सब से वरणीय सर्वश्रेष्ठ (व्यचः) सब से महान, सब में व्यापक (लोकः) सब का द्रष्टा, इन गुणों और रूपों से (त्व उपास्महे) तेरी उपासना करते हैं।

प्रश्न—शतपथ में ईश्वर को साकार लिखा है—

यःपृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवानवेद यस्य पृथिवी शरीरम्०योऽप्सुतिष्ठन्० योअग्नौतिष्ठन् य आकाशे तिष्टन्० यो वायौतिष्ठन्०। शगपथ० ११ कांड वह पृथिवी आदि में ठहरा है उसका पृथिवी शरीर है इत्यादि से वह साकार है।

उत्तर—कितना अन्धेर आप लोग मचाते हैं? भला पृथिवी से लेकर आकाश पर्यन्त तत्वों में व्यापक साकार कैसे हो सकता है? वहां तो "य आत्मनितिष्ठन्" आत्मा में भी व्यापक बताया गया है। तो आकाश जैसे सूक्ष्म और महान,

और जीवात्मा जैसे उससे भी सूक्ष्म वस्तु में साकार व्यापक हो सकता है। बुद्धि गई या रही। संसार की आंखों में धूल झोकने का आप ही ने ठेका ले रक्खा है।

प्रश्न—तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः ०इत्यादि से सिद्ध है कि संसार ईश्वर रूप से बना है।

उत्तर—इस वाक्य का यह आशय कहां से निकल आया कि—परमेश्वर ही संसार रूप हो गया। इस में तो क्रमवाद है—

अर्थात—परमात्मा ने प्रकृति से आकाशादि उत्पन्न किये। इस में आरम्भ में ही दो वाक्य ऐसे पड़े हैं जिन से सिद्ध है कि यह संसार ब्रह्मरूप नहीं। सुनिये—"तस्माद्वा, एतस्मादात्मनः।" इसके अर्थ हुए कि—तस्मात्=उस व्यक्त प्रकृति और आत्मनः आत्मा के संयोग=ईश्वरीय नियम द्वारा पहले आकाश प्रगट हुआ, फिर वायु, फिर अग्नि, फिर जल, फिर पृथिवी, फिर औषधि, फिर अन्न फिर रेतस और फिर प्रजा उत्पन्न हुई। इसको क्रमवाद कहते हैं। सत् रज तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान इत्यादि वचनों में विकार वाद बताया गया है। इन बातों को तो वैदिक लोग ही जान सकते हैं। पौराणिए बेचारे क्या जानें।

प्रश्न—इस अथर्व वेद से साकार ब्रह्म सिद्ध है—

ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्ने ज्येष्ठं दिवमा ततान। भूतानी ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनहिति ब्रह्मणा स्पर्द्धितुं कः। अथर्व १९-२३-३०।

आशय—ब्रह्म में ही सारे बल विद्यमान हैं, ब्रह्म ने सारे तेजोमय द्युआदि लोकों को रचा है, (सृष्टि के आदि) में वेदा

उत्पन्न हुए, उस महान् ब्रह्म की बराबरी कौन कर सकता है। यहां पर यह बताया गया है कि आदि में चार ऋषि ब्रह्मज्ञानी हुए। यह सृष्टि के आदि का नियम वेद ने बताया है कि आदि में ज्ञानी ही होते हैं।

भवशर्व सूक्त—

प्रश्न—इस अथर्व वेद के ११-२-१ से लेकर ११-२-५ तक परमात्मा के अङ्गों का वर्णन किया है। क्या इससे परमात्मा साकार सिद्ध नहीं होता ?

उत्तर—इस सूक्त का आशय समझ लीजिये। फिर उसको साकार बताना सुनिये—इस सूक्त में परमात्मा की दो शक्तियों का वर्णन है, पहली—"भव" उत्पन्न करने की शक्ति और दूसरी—"शर्व" संहार करने की शक्ति। इन दोनों शक्तियों का आलङ्कारिक भाषा में वर्णन किया है। जिस प्रकार से कोई किसी वस्तु को बनाते समय अपने बहुत से शरीरावयव काम में लाता है और नाश करते समय भी ऐसा ही करता है, इस ही प्रकार इन दोनों शक्तियों का आकारवत् वर्णन किया है।

यथा—भवःशर्वोमृडतं माभियातंभूतपती पशुपती नमोवाम्। प्रतिहमायतां मविस्राष्टं मानो हिसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ११। २। १।

इस मन्त्र में द्विवचन वाली संज्ञा और क्रियायें आई हैं—जैसे भवाशर्वौ, मृडतम् मा अभियातम्, भूपति, पशुपति, नम्, मा विस्राष्टम् और माहिंसिष्टम। अब प्रश्न यह है कि भूपती और पशुपती ये दो कौन कौन से हैं ? क्या पौराणिक दो ईश्वर मानते हैं। वे तो अद्वैतवादी हैं। यदि कोई दो,

भूपती और पशुपती नहीं है तो एक परमात्मा की ये दो शक्तियाँ ही तो हैं जिनका अलङ्कारिक वर्णन किया गया है। दूसरे मन्त्र में परमात्मा की संहार शक्ति को 'पशुपतिः' कह कर वर्णन किया है यथा—शुने क्रोष्टे माशरीराणि मार्कतमलि क्लवेभ्यो गृध्रेरयो येच कृष्णा अविष्यवः। मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त। ११-२-२। इस में संहारक जन्तुओं से हम को हानि न पहुंचे यह प्रार्थना की गई है। आगे पालक, रक्षक शक्ति के विषय का मन्त्र है—क्रन्दापते प्राणाय पाश्चते भव रोपयः। नमस्ते रुद्र कृ रामः सहस्राक्षायास्त्यः। ११-२-३। इस मन्त्र में "सहस्राक्षाय"—असंख्य आंखों की शक्ति वाले परमात्मा को नमस्कार किया गया है। सहस्राक्ष परमात्मा का नाम "सहस्राक्षः सहस्रपात्" इस मन्त्र में भी बताया गया है। इससे सिद्ध है कि यहां पर किसी साकार व्यक्ति की चर्चा नहीं किन्तु ऐसे व्यक्ति की चर्चा है जिस में असंख्य आंखों की शक्ति है इस ही लिये वेद में अन्यत्र भी आया है :-

सविश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखोविश्वतोबाहु रुत विश्वत स्यात
सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै द्यावा भूमि जनयन्देव एकः।

इस मन्त्र में भी परमात्मा में सारी इन्द्रियों की शक्ति सब ठौर वर्णन की गई है। बस इस ही सर्वेन्द्रिय शक्ति का वर्णन इस भवशर्वसूक्त में है।

पुरस्तात् ते नमः कृरामः उत्तरादधरादुत।
अभिवर्गाद दिवस्पर्यन्तरिक्षाय तेनमः॥ ११। २।

इस उपर्युक्त मन्त्र में परमात्मा को सब ओर से नमस्कार किया है। इस मन्त्र में परमात्मा का विशेषण "अन्तरिक्ष" दिया है। अन्तरिक्ष साकार नहीं है प्रत्युत निराकार और विस्तृत है अतः यह मन्त्र निराकार का प्रतिपादन करता है।

गीता भी इसमें साक्षी है—

नमः पुरस्तदथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तुते सर्वतएव सर्वा।
अनन्त वीर्यामिति विक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसिसर्वः॥

गीता ११।४०

अर्थात्—आगे, पीछे और सब ओर से तुमको नमस्कार है। सर्वव्यापक होने से तेरा नाम सर्व है। तेरा अनन्त वीर्य और पराक्रम है। अगले मन्त्रों में मुखादि की शक्तियों को नमस्कार कहा है—

मुखायते पशुपते यानि चक्षूंषिते भव!
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतिचीनाय तेनमः॥ ११।२।५
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया अस्याय ते ददभ्यो
गन्धाय ते नमः॥ ११।१।६॥

जिस प्रकार अथर्व काण्ड ६ सूक्त ७ में विराट गौ का वर्णन है उस ही प्रकार यहांपर विराट् शक्तियों का वर्णन है। विराड गौ का वर्णन इस प्रकार है:—

१—प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे, इन्द्र शिरा अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम्। ६।७।१।

अर्थः—(प्रजापतिः च परमेष्ठीच शृङ्गे) इस विराड गौ के प्रजापति और परमेष्ठी दोनों सींग हैं। (इन्द्रः शिरः) इन्द्र शिर है। (अग्निः ललाटम्) अग्नि ललाट है (यमः ककाटम) यम कृकाट=गले की हड्डी है। सोमोराजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः। ६।७।२।

अर्थः—(सोमः राजा) सोमराजा उसका (मस्तिष्कः)

मस्तिष्क है। (द्यौः उत्तर हनुः) द्यौलोक उसका ऊपर का जबाड़ा है। (पृथिवी अधर हनुः) पृथिवी उसका नीचे का जबाड़ा है। इस ही प्रकार सब अंङ्ग प्रत्यङ्गों को प्रकृति की शक्तियों से उपमा देते हुए, अन्त में परिणाम निकाला है कि—

एतदवै विश्वरूपं सर्व रूपं गोरूपम् ॥ ६ । ७ । २५

अर्थः—(एतदवै विश्वरूपं) यह ही विश्व रूप परमात्मा का विराट् रूप है वही (सर्वरूपम) सर्वरूप (गोरूपम) गौ या वृषभ का रूप है। इस पर गिलकिथ सा० कहते हैं—**The hymn is a gloripicatoin of the typicol bull and cane.**

अब आगे विराट रूप ओदन=चावलके भाव अङ्गों की यज्ञमय कल्पना सुनिये— तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्ममुखम ॥११।३।१ द्यावा पृथिवी श्रोत्रे सूर्या चन्द्रमसावक्षिणी सप्त ऋषयः प्राणापानाः । २ । चक्षुर्मसलं काम उलूखलम् । ३। दितिसूर्यमदितिः सूर्या ग्रावी वातोषाविनक ॥४॥ आदि

अर्थः—उस ओदन का बृहस्पति शिर है, ब्रह्म ज्ञान वा वेद मुख है। १। द्यावापृथिवी कान है, सूर्य चन्द्रमा आंखें हैं, प्राण पान सात ऋषि है। २। मुसल आंखें हैं, ओखली काल=संकल्प है। ३। खंडन करने वाला विभाग सूर्य=छाज है, छाज को लेने वाली पृथिवी है, वायु धानोंकी भूसी को पृथक करने वाला है।४ अब आगे ऋषभ के दृष्टान्त से परमात्मा का वर्णन सुनो इस ऋषभ अनड्वान के सहारे पृथिवी आदि सारे लोक लोकान्तर ठहरे हुए हैं—

१—साहसस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासुविभात्। भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तु मातान्॥ अथर्व—९। ४। १।

अर्थ—(साहस्रः) सहस्रों शिरों, बाहुओं, पादों, चक्षुओं एवं अनन्त सामर्थों से युक्त (त्वेषः) कान्तिमान् (ऋषभः) सर्व व्यापक, सर्व प्रकाशक (पयस्वान्) आनन्द रस से परिपूर्ण, वीर्यवान् परमात्मा (विश्वरूपाणि) समस्त कान्तिमान लोकों को अपने (वक्षणा सु) कोखों में या वहन करनेमें समर्थशक्तियों में विभात धारण करता हुआ (बार्हस्पत्यः) स्वयं वहत,महान् लोकों के स्वामी होकर (उस्रियः) सब के भीतर स्वयं बसने वाला एवं सबको अपने में बास देने वाला होकर (दात्रे) दानशील आत्म समर्पण करने वाले (यजमानाय) यजमान, आत्मा पुरुष को (भद्रम्) सुखकारी कल्याणमय लोक वा देह को (शिक्षन्)प्रदान करता हुआ (तन्तुम,इस विस्तृत जगतमय तन्तु को(आतान्फलाता)

२—अपां योऽग्ने प्रतिमा बभूव प्रभूःसर्वस्मै पृथिवी देवी। पिता वत्सानां पतिरघ्यानां साहस्ते पोषे अपिनः कृणोतु ९। ४। २।

(यः) जो (अग्ने) पूर्वकाल में (अपां) जगत के कारण रूप आपः=सूक्ष्म प्रकृतिके परमाणुओं पर भी (प्रतिमा) 'प्रतिमान' नापने और उनमें भी व्यापने वाला (बभूव) रहा और (सर्वस्मैप्रभुः) सब संस्कार का उत्पादक और अधिष्ठाता (देवी

पृथवी इव) देवी पृथवी के समान सबका आश्रय था और है। और जो (वत्सानाम) प्रकृति के आगे उत्पन्न होने वाला पञ्च-भूत आदि विकृत रूपों के या प्राणियों के आवास हेतु लोकों या मुक्तजीवों का (पिता) जनक और पालक (अव्यानांपति) कभी नाश न होने वाले पञ्चभूतों के सूक्ष्म तन्मात्राओं का भी पालक है।

अथवा—न मारने योग्य गोओं के पति महा वृषभके समान वह परमात्मा (नः) हमको (सहस्रयोषे) सहस्रों प्रकार के पोषण कार्यों में (असी कृणोतु) समर्थ करो इस ही प्रकार से वेदों में अलङ्कार भरे पड़े हैं। क्या इससे यह परिमाण निकला जा सकता है कि ब्रह्म साकार है ? कदापि नहीं। जितने भी भाष्यकार हैं, सब ही ने वेदों में आये हुये परमात्माके मुख बाहु आदि सब ही कल्पित=फर्ज़ी बताते हैं। वेद भी स्वयं "कतिधा व्यकल्पयन्" कितने प्रकार का कल्पना किया गया, कहता है; फिर टीका कार कल्पित क्यों न बताते ? देखो महीधर और उव्वट भी क्या कहते हैं ?

– "कतिधा कतिभिः प्रकारैर्व्यकल्पयन् विविधं कल्पि वन्तः"

उव्वट लिखते हैं—"येवैश्यास्ते अस्य उरू कताः येशूद्राः तेपद्भ्याम् अजायत इति कल्पेन्ते"। यजु० ३१। १० १

व्रात्य=परमेश्वर–

व्रात्य आसीदीपमान एव सप्र जायतिं समैरयत्। अथर्व कां० १५।१।१॥

अर्थ—(व्रात्यः) 'व्रात्य' वैकारिक अहंकार आदि प्राकृतिक गणका स्वामी, या सब देहसे आवृत जीवों का स्वामी, या स्वामी रूपसे वरण करने हारे जीवों या आधीन प्रजाओं का हितकारी राजाके समानप्रभु या सब व्रतों का एक मात्र उपास्य, व्रात्य परमेश्वर (ईयमानः) गति करता (आसीत्) रहता है। (सः) वही अपने को (प्रजापतिम्) प्रजाके पालक प्रजापति मेघपर्जन्य और आत्मा के रूपमें (सम् ऐरयत्) प्रेरित करता है। प्रकट करता है।

प्रश्न—व्रात्य शब्द के ईश्वर अर्थ कैसे हुए ?

उत्तर—व्रियन्तेदेहेन इतिव्रताः, तेषांसमूहाः व्राताः जीवसमूहाः। तेषां पति व्रात्यः परमेश्वरः। वृण्वते इतिव्रताः तेभ्योहितः व्रात्यः। व्रतेषु भवो व्रात्यः। इति जयदेवः। "व्रात्यो वा इदमग्र आसीत्"=आदिमें व्रात्यया। पैप्पलि संहिता।

प्रश्नः—इस मन्त्र में "ईयमानः" पड़ा है, जिसके अर्थ हैं—गति करता है। क्या परमेश्वर में गति है ?

उत्तर—'ईर्' धातु गतौ कंपने च=गति और कंपन अर्थ में है और गति के ३ अर्थ हैं—ज्ञान, गमन, और प्राप्ति। बस यहां पर ज्ञान और प्राप्ति के अर्थ हैं। "ईयमानः" के अर्थ सर्वव्यापक के भी हैं। यथा—

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम्। मोपाराम जिह्वयेयमानम्। अथर्व ११।२।१७॥

अर्थ—मैं साक्षाद् द्रष्टा (पुरस्तात्) अपने समक्ष (सहस्रा-

त्तम् रुद्रम्) सहस्र आंखों वाले अति भयङ्कर दुष्टों को रुलाने वाले कालरूप (विपश्चितम) समस्त कार्यों और ज्ञानों को जानने हारे (बहुधाअस्यन्तम) प्रभुको नाना प्रकार के अपने बाण प्रहार करते हुए (अतिपश्यम) अति क्रान्तिकारी दृष्टि से देख रहा हूं। (जिह्वया ईयमानं) अपनी काल जिह्वा से सर्वत्र व्यापक उसको हम (माउपाराम) प्राप्त न हों, हम उस काल के ग्रास न बनें।

प्रश्न—क्या निराकार की जिह्वा होती है ?

उत्तर—जिह्वा के अर्थ यहां पर वह मांस की जिह्वा नहीं अपितु—जीवनदातृ शक्ति के हैं—जैसे ग्रिफिथ साहब ने भी इस को माना है Tindwig theinus that the sense ofthe stanzu mylu l goods tongue the tihe giv-engassence. ।

Ludeving thinks that the sense of the stonza may be (God's tongue) the life giving assence.

प्रश्न—इस में व्रात्य के बैठने की चौकी का वर्णन है, अतः साकार है जैसे—"सोऽब्रवीत् आसन्दी मे संभरन्तु इति" = वह बोला मेरे लिये चौकी लाओ ?

उत्तर—उसकी आसन्दी—बैठने की चौकी आदि क्या है ?

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ शरश्च वर्षाश्च द्वौ ।

अर्थ—उस चौकीके दोपाये ग्रीष्म और वसन्त थे दो पाये शरद् और वर्षा थे। क्या ऐसी चौकी पर कोई साकार बैठ सकता है !

व्रात्य का रूप—

तस्य व्रातस्य । एकं तदेषाममृतत्वामित्याहुतिरेव ।
अथर्व १५ । १ । १७ । १०

अर्थ—(तस्य व्रातस्य) उस व्रात्यका (तत्) वह अचिन्त्य परम स्वरूप (एकम्) एक है । वही (एषां) इन देवों का (अमृतम्) अमृत मोक्ष स्वरूप है । (इति) इस प्रकार उन जीवों और देवों का उसमें लय हो जाना भी (आहुतिः एव) आहुति ही है ।

अब विचारिये । अमृत=मोक्ष स्वरूप साकार का होता है वा निराकार का ?

प्रश्न—वैदिक ईश्वर यह नहीं जानता कि यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई है ? यथा—

इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदिवादधे यदिवा नः ।
यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सोअङ्ग वेद यदि वा न वेद । ऋ०१० सू० १२९ मन्त्र ७ ।

इसका अर्थ तिलक महाराज के गीता रहस्य पृष्ठ २५४ पर इस प्रकार दिया है—

"सत् का पर निसर्ग अर्थात् फैलाव जहां से हुआ अथवा निर्मित किया गया या नहीं किया गया उसे परम आकाश में रहने वाला उस सृष्टि का जो अध्यक्ष (हिरण्यगर्भ) है वही जानता होगा या न जानता होगा या न भी जानता होगा कौन कह सके ।" इससे सिद्ध है कि जहाँ ईश्वर आकाश पर बैठा है वहाँ वह भी नहीं जानता कि यह सृष्टि किसने उत्पन्न की है ?

उत्तर—ऋ० १०।१२६।७ का आशय यह है कि—जिस समय यह सृष्टि उत्पन्न हो रही थी उस समय हम संसारी पुरुष सोये हुए के समान थे। * इस लिये हम नहीं जानते कि संसार किसने और कैसे उत्पन्न किया ? इसलिये जिस विषय में मनुष्य की अज्ञानता होती है उसके विषय में यही कह देने का मुहावरा वेद ने बतलाया कि—"इस बात को अमुक व्यक्ति जाने अथवा न जाने ?" "उसने ऐसा किया वा न किया" ? देखो नियम संख्या—२

इस विषय को वेद भगवान कितना स्पष्ट करते हैं—

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्वन्त यदन्यन्था बिभर्ति । भूम्या असुर सृगात्मा क्वस्वित् को विद्वान् सम्पगात् प्रष्टुमेतत् । ऋ० १ । १६४ । ४ ।

अर्थः—प्रथम जायमान इस जगत् को किसने देखा ? क्योंकि अस्थी वाले को अस्थि रहित धारण करता है। पृथिवी से ये प्राण उत्पन्न होता है, आत्मा कहाँ से आया ? कौन मनुष्य यह पूंछने को किसी विद्वान् के पास जाय ? इस पर निकिथ साहब का भाष्य—The boneless unsubstantial is wrakriti Nature, the original source of the substantive, that is the matereal and misible world. According to Hillebrandt, vedische mythologie I P. 338 the boneless one is the sea and the body the moon. See. M. Muller, India that can it teach us. H. P. 245-246.

---

* प्रसुप्त मिव सर्वतः मनु—१ । ५ । प्रलय में सब सोये हुए के समान थे ।

इस विषय पर ऋ१। १८५ १ भी द्रष्टव्य है—

कतरा पूर्वा कतरा परायोः कथा जाते कवयः को विवेद। विवात्मना विभृतो यद्यनाम विवर्त्तते अहनी चक्रियेव। १। इस मन्त्र पर निरुक्ति साहब—

Whether of these is elder whether is later? How were they born? Who knoweth it, ye says? Teere of themselves support all things existing: as on a car the Day ahd Night roll onward. P. 248.

अर्थात्—इनमें कौन बड़ा है और कौन छोटा है? वे कैसे उत्पन्न हुए? इसको कौन जानता है! तू कहता है? यह स्वयं ही इस सारे संसार को धारण कर रहा है। मानों एक गाड़ी पर बैठकर दिन रात चक्कर लगाते हैं।

"परमेव्योमन्" के अर्थ हैं—परमरक्षक में। अर्थात् वेद परमरक्षक परमात्मा में हैं। उस परमात्मा में ही सारे ही देवता स्थित हैं। साकार में सारे स्थित नहीं हो सकते। देवता के अर्थ पृथिवी से लेकर आकाश तक के हैं। "व्योमन्" शब्द में वि और ओम् ये दो शब्द सम्मिलित हैं। 'वि' विशेषता सूचक है। 'ओम्' अव रक्षणे धातु से बना है अतः यह अर्थ हुए कि परम =सबसे ऊंचे रक्षक में। यहाँ पर प्रथमा के स्थान में सप्तमी विभक्ति के अर्थ होंगे। क्योंकि अक्षरे, परमे और यस्मिन् ये सब सप्तमी विभक्ति के ही शब्द पड़े हुए हैं। निरुक्तकार श्री

"परमे व्यवने"=परम रक्षक में, ऐसे ही अर्थ करते हैं*। कहिये अब यह कहाँ रहा कि—वैदिक ईश्वर आकाश में है। "निहितं गुहायां परमे व्योमन्।" तैत्तिरीय० आनन्दवल्ली अनुवाक् १ में आनन्द स्वरूप परमात्मा के अर्थ हैं।

प्रश्न—'परः' शब्द के अर्थ दूर देश के हैं? अतः परमात्मा एकदेशी ठहरता है क्योंकि वह परमेश्वर आकाश से परे—परली ओर है? उत्तर—"पर" शब्द के अर्थ सदैव देश पूरी के लिये ही नहीं आते हैं—उत्तम और सूक्ष्म के भी आते हैं। यथा—

"इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमं व्यक्तं व्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः।कठ ३।११

इन्द्रियाणि पराण्याहु, इन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेर्यः परतस्तु सः॥४२॥
एवंबुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥ ८३॥

गीतायाम्।

---

* देखिये नियम संख्या १४ यथार्थं विभक्तीः सन्नमयेत्। निरुक्त २।१।

कहिये यहां पर के अथ परे या ऊपर के हैं या सूक्ष्म और उत्तम के क्योंकि सारी इन्द्रियां और मन बुद्धितो सब शरीर में ही है—कहीं दूर नहीं ? वेद मन्त्र भी इस विषय में देखिये—

परोदिवा परएना पृथिव्या परोदेवेभिरसुरै र्यदस्ति ! कꣳ स्विद् गर्भं प्रथमन्दध्र आपो यत्र देवाः समपयन्त पूर्वे । यजुः १७ । १९

अर्थ—जो (एना) इस (दिवा) सूर्यादिलोकों से (परः) परे अर्थात्—अत्युत्तम (पृथिव्या) पृथिवी आदि लोकों से (परः) परे (देवेभिः) विद्वान् वा दिव्य प्रकाशित प्रजाओं से (परः) परे (अस्ति) है (यत्र) जिसमें (आपः) प्राण (कंस्वित्) किसी (प्रथमम्) विस्तृत (गर्भम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (दध्र) धारण करते हुए वा (यत्) जिस को (पूर्वे) पूर्ण विद्या को अध्यन करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग (समपश्यन्त) अच्छे प्रकार ज्ञान चक्षु से देखते हैं। महीधर इस मन्त्र में ब्रह्म-विषयक प्रश्न बताता हुआ कहता है कि—"यत् अस्ति हृदीतिशेषः" जो ब्रह्म हृदय में है यह शेष है—इसको अपनी ओर से जोड़कर सङ्गति लगा लेनी चाहिये। हृदय में एक देशी वा साकार नहीं रह सकता। आगे चलकर महीधर दूर के अर्थ करते हुए कहते हैं—"परो दूरत्वम् विलक्षणत्वात्। परस के अर्थदूर के हैं अर्थात् विलक्षण होने से। यह विलक्षण ब्रह्म—"गुरुशास्त्र विमुखैन ज्ञायते गुरु शास्त्र विमुखों से नहीं जाना जाता। इससे सिद्ध है कि वह इन चर्म चक्षुओं से न दीखकर गुरु शास्त्र के उपदेश से ज्ञान

चक्षु से देखा जाता है, अतः निराकार है न कि साकार! ब्रह्म के अर्थ आप्टे भी यही करते है देखिये—

The supreme being regarded as impersaon at

अर्थात् ब्रह्म सर्वश्रेष्ट अपुरुष विधि निश्चित किया गया है। ब्रह्म के विषय में उव्वट और महीधर प्रायः यही लिखते हैं कि—"नहि असौ प्रत्यक्षादीनां विषयः"। यजु० ३२। २। इस पर निरुक्त-No one hath comprehand him "Compre hand के अर्थ वैब्सर डिक्शनरी में—to seize with minud. अर्थात् मन से ग्रहण करना है। "परस्" शब्द इस मन्त्र में भी आया है-यजु० ८। ३६।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापति प्रजया स ꣳ रराण स्त्रीणि ज्योतींषि सचते च षोडशी। यजुः ८। ३६।

अर्थः—(यस्मात्) जिस परमेश्वर से (परः) उत्तम (अन्यः) और दूसरा (न) नहीं (जातः) हुआ और (यः) जो परमात्मा (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों को (आविवेश) व्याप्त हो रहा है (सः) वह (प्रजया) सब संसार से (संरराणः) उत्तम दाता होता हुआ (षोडशी) सोलह कलाओं के स्वामी (प्रजापतिः) संसार मात्रके स्वामी परमेश्वर (त्रीणी) तीन (ज्योतींषि) ज्योतिः अर्थात् सूर्य, बिजली और अग्नि को (सचते) सब पदार्थों में स्थापित करता है। महीधर भी यहां ("परस") का अर्थ उत्कृष्ट ही करते हैं—"यथा—यस्मात पुरुषादन्यः व्यतिरिक्तः परः-

उत्कृष्टोदेवादिर्जातःसम्भूतो नास्ति। ऐसा उच्चट करते हैं जबकि

"यश्च विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि आविवेश अन्तर्यामि रूपेण प्रविष्टवान्"

अर्थात्—"सब भुवनों में अन्तर्यामी होकर व्याप रहा है; ऐसा कहा गया है तो फिर साकार अन्तर्यामी कैसे हो सकता है। "अन्तर्यामी"के अर्थ हैं जो भीतर व्यापक होकर नियम में रक्खे। अतः वह निराकार है न कि साकार।

प्रश्न—"अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्०"यजु ३१।१। में परमात्मा को दस अङ्गुल स्थान में ठहरा हुआ बतलाया है, अतः महदूद और साकार है ?

उत्तर—दशाङ्गुलं दशाङ्गुल परिमितं देशमत्यतिष्ठत् अतिक्रम्यव्यवस्थितः। दशाङ्गुलमित्युपलक्षणंब्रह्माण्डाद् बहिरपि सर्वतो व्याप्यावस्थित इत्यर्थः। अर्थात्—दशांगुल देशसे अतिक्रमण करके ठहरा है—दशांगुल तो उपलक्षण मात्र है, वह ब्रह्माण्ड से बाहर भी सब प्रकार से व्यापक होकर विराजमान है। अतः वह निराकार है।

प्रश्न—"पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि"। ३ यजु० ३१। ३ इस मंत्र में ब्रह्म के चार हिस्से किये हैं। उनमें से परमात्मा के एक हिस्से में यह सारा जगत् बसा हुआ है। इसलिये ब्रह्म सान्त है।

उत्तर—"तस्य परब्रह्मणः इयत्ताया अभावात् पादचतुष्टयमनिरूपितमशक्यं तथापि जगदिदं ब्रह्मरूपापेक्षयाल्पमिति विविक्षितत्वात् पादत्वोपन्यासः"महीधरभाष्य।

अर्थात्—उस पर परमात्म की इयत्ता=हद का अभाव है। इसलिये उसके चार भाग कहना ठीक नहीं। परन्तु यह जगत् ब्रह्म की अपेक्षा तुच्छ—छोटा है ऐसा कहने के लिये इस पाद् हिस्से की कल्पना की।

प्रश्न—"सहस्र शीर्षः पुरुषः" यजु० ३१। १ पर दृष्टि डालिये उस पुरुषके एक सहस्र शिर बताये हैं। क्या वह साकार नहीं है?

उत्तर—"अत्रसर्वत्र प्राणीनां शिरासि यद्देहान्तः पातित्वा च दीयान्येवेति सहस्र शीर्षत्वम्। महीधरः।"

प्रश्न—चन्द्रमा मनसो जातः०" में साकार चन्द्रमा ब्रह्म के मन से उत्पन्न हुआ क्या अब भी ब्रह्म साकार नहीं?

उत्तर—चन्द्रमा मनसः चेतसा जातः अजायतेति कल्पना। उव्वट।

अर्थात—चन्द्रमा मन से उत्पन्न हुआ—यह कल्पना है। (वास्तविकता नहीं) आगे और भी लिखता है—"तथैव सर्वान् लोकान् पुरुषस्या वयव भूतान् अकल्पयदिति।"

अर्थात्—इस ही प्रकार पुरुष के सब लोकोंका जो अवयव कहा है सो कल्पना नहीं है।

प्रश्नः—त्रयम्बकं यजामहे० यजु० ३। ६० में ब्रह्म के ३ नेत्र बताये हैं। क्या निराकार के भी नेत्र होते हैं?

उत्तर—त्रयाणां ब्रह्म विष्णु रुद्राणां अम्बकं पितरं यजा महे। सायण।

अर्थात्—ब्रह्मा विष्णु और रुद्र तीनों का जो पिता है वह

त्र्यम्बक है। उसका यजन करते हैं। त्रिलोचनः—सोम सूर्याग्न्यात्मकानि लोचनानि यस्य स त्रिलोचनः। कै० उ०

तयोरुभयो मूर्तयोस्त्र्यम्बकान् विशेषान् प्रक्षिप्य स्वकीयेनांशेन त्रोदुंशक्यायां वंश यष्ट्या अग्नद्वये तन्भूत द्वयमवा सज्ज्योन्नते स्थाणौ वल्लवंश वल्मीके वा भूतद्वययुक्ता वंशयष्टिं संसृजति। इत्यष्टमे साक मेध गत त्र्यम्बक हविर्विषया मन्त्रा उक्ताः। कराव शाखा भाष्य सायण कृत पृष्ट २५।

साक मेघ यज्ञ में बाँसकी टोकरी में रख कर धानों की आहुति छोड़ी जाती है वह त्र्यम्बक कहाते हैं। त्र्यम्बकं यजामहे कहकर आहुति दो जाती है।

प्रश्न—"नील ग्रीव० यजु० १६।७। में ब्रह्म का विशेषण है?

उत्तर—"नीलग्रीव इवास्तं गच्छन् लक्ष्यते"। उव्वट:

अर्थात्—सूर्य अस्त होते समय नीली गर्दन वाला सा प्रतीत होता है।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्०" पर मीमांसा शास्त्र रुपात् या प्रायात्। मी० १। २। ११।

यहां पर रूपकालंकार है। प्रायः वेद में ऐसे अलङ्कार आते हैं।

"चक्षोः सूयो अजायत०" पर मीमांसा –दूरभूयस्त्वात् १। ४। १२।

अर्थात्—स्थूलार्थ करने से चक्षु और सूर्यादि की परस्पर दूरता अर्थात् कार्य कारण भाव की असंभवता प्रतीत होती है।

अपराधात् कर्तुश्च पुत्र दर्शनम् । मी० १ । २ । १३

अर्थः—स्थूलदर्शता के अपराध से (कर्तृः) 'अज्ञान क्रिया के कर्ता सूर्यका (पुत्र दर्शनम्) पुत्र अर्थात् कार्य रूप (च) और चक्षु का कारण रूप से (दर्शनम्) अर्थात् ज्ञान होता है ।

आशय यह है कि यह स्थूल दृष्टि से अथ करने पर चक्षु और सूर्य में कार्य कारण रूप प्रतीत होता है । वास्तव में ब्रह्म निराकार है—उसका हमारे समान अङ्ग नहींहोता । परमात्मा की सारी शक्तियां सर्वत्र विद्यमान हैं--

प्रश्न—किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणंक तमस्वित्कथ सीत् । यतोभूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोद्दिव विश्वचक्षाः । यजुः १७ । १८ । ऋ० १० । ८१ । २

अर्थात्—जब ब्रह्म सृष्टि की रचना कर रहा था उस समय उसका अधिष्ठान (निवासस्थान) कौनसा था ? उस समयकी क्या वृत्तान्त क्या था ? जिस समय विश्वकर्मा पृथिवी और द्यु लोक को अपनी महिमा से रच रहा था, वह कैसा था ? सर्वद्रष्टा था सर्व व्यापक था ?

उत्तर—विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखोविश्व तोबाहुरुतविश्व स्यात् । संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः । यजु० १७ । १९

अर्थात्—उसकी आंख, मुख, बाहु, पैर आदि की शक्तियां सर्वत्र विद्यमान हैं। उस एक ही देव ने अनन्त बल पराक्रम से परमाणुओं से सूर्य आदि प्रकाशक लोक और पृथिवी आदि प्रकाश्य लोकोंको रचा है।

प्रश्न—किꣳ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आसयतो द्यावापृथिवी निष्ठतक्षुः। मनिषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्। यजुः १७। २०।

अर्थात्—ऐ विद्वानो! मनसे विचार कर प्रश्न करो कि वह कारणरूप वन कौनसा था, वह कार्यरूप संसार कौनसा है जिससे यह सूर्य आदि प्रकाशक और पृथिवी आदि प्रकाशरूप लोक बनाये हैं?

उत्तर—जो भुवनोंको धारण कररहा है उसही प्रसिद्ध ब्रह्मने यह सब कुछ रचा है। इन ३ मन्त्रों से सिद्ध है कि वह परमात्मा परमाणुओं द्वारा=परमाणुओं को उपादान कारण बनाकर इस कार्य रूप जगत को रचता है। परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म हैं—उनसे भी सूक्ष्मतम होकर उनमें व्यापक होकर ही उनको वशमें करके, इस कार्यरूप जगत् को रच सकता है अतः निराकार है। यद्यपि चारों वेद आदि से अन्त तक निराकार ब्रह्म का ही प्रतिपादन करते हैं, परन्तु फिर भी हमने थोड़े से मन्त्र निराकार को बताने वाले ऊपर उद्धृत करदिये हैं; जिनसे यह भली भांति पता चल जायगा कि यह वैदिक ब्रह्म निराकार ही है। साकारके प्रतिपादन करने वाले हठी और दुराग्रही है। अब आगे उपनिषदों केप्रमाण उद्धृत करते हैं। इस प्रश्नोत्तर विद्या को 'वाकोवाक्' कहते हैं।

उपनिषद् और ब्रह्म--

१ -नतत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नमनोनवाग्विद्मो न विजानीमो यथैतदनु शिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शुश्रुमपूर्वेषां येनस्तद् व्याचचिरे ॥३

केनोपनिषद् । ३ ।

निराकार को ही आंख नहीं देख सकती; किसी प्रकार का भी सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र निराकार को नहीं दिखा सकता ।

२--यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते । केनोप० । ४ ।

जो वाणी का विषय नहीं जिस शक्ति से वाणी कही जाती है वही ब्रह्म है । जिसे वाणी कह सके वह ब्रह्म नहीं ।

३--यन्मसानमनुते येनाहुर्मनो मतम्० । ५ ।

जो ब्रह्म मनसे नहीं विचारा जाता जिसकी शक्ति से मन कार्य कर रहा है वह ब्रह्म है !

४--यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति० ।६

जो आंख से नहीं देखता न देखा जाता है···वह ब्रह्म है । जिसको आंख देखले वह ब्रह्म ही नहीं ।

५--यच्छोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्० । ७

जो कानों से नहीं सुना जाता जिसकी शक्तिसे कान सुनते हैं वह ब्रह्म है ।

६--यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते० ।८

जो प्राणों से सांस नहीं लेता जिसकी शक्ति से प्राण काम करते हैं वह ब्रह्म है।

७—अणोरणीयान्महतोमहीयान् आत्मास्यजन्तोर्निहतो गुहायाम्। कठ० २। २०।

परमाणु में भी व्यापक होने से अणु से भी सूक्ष्म और आकाश में भी व्याप्त होने से महान् से महान है।

८—अशरीरं शरीरेष्व नवस्थेस्वावस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वाधीरो नशोचति। कठ २।२२

शरीर वालों में शरीर रहित-निराकार है, स्थितिरहितों में स्थित हुआ है। उस महान् और विभुः परमात्मा को मान कर धीर पुरुष शोक नहीं करता।

९—अशब्दमस्पर्शं मरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्ध वच्चयत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्यतं मृत्यु मुखात् प्रमुच्यते। कठ० ३। १५।

जब कि वह ब्रह्म शब्द, स्पर्श, रूप, व्यय, रस, अनित्यता और गन्धादि से रहित है तो साकार कैसा? वह अनादि अनन्त महान्, परं और ध्रुव है तभी तो निराकार है।

१०—नसन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्। कठ० ६। ९।

उसके सामने कोई रूप नहीं ठहरता। उसको आंख से कोई नहीं देख सकता।

११—परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते सयोहवै तदच्छाय मशरीर-मलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयतेयस्तु सोम्य । स सर्वज्ञः सर्वो भवति तदेष श्लोकः । प्रश्नो० ४ । १० ।

१२—दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ।
मुण्डक० २ । २ ।

वह दिव्य है, मूर्त्ति रहित है, वह पुरुष=ब्रह्म सबके बाहर और भीतर है, निश्चय जन्म न लेने वाला है, प्राण रहित, मन रहित, शुभ्र और नाश रहित प्रकति और जीव से भी परे अति सूक्ष्म है ।

१३—यः सर्वज्ञः सर्व विद्यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्म-पुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥ मुंडक० २ । २ । ७

जो सर्वज्ञ= सर्वज्ञता से सब का ज्ञाता जिसकी महिमा पृथ्वी ब्रह्म पुर और शुद्ध आकाश में फैली हुई है ।

१४—ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्मपश्चाद् ब्रह्मदक्षिण-श्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ मुण्डक २ । २ । ११

वह ब्रह्म अमृत है, आगे पीछे, दक्षिण उत्तर, नीचे ऊपर सब जगह फैला हुआ है । वह सब से उत्तम ब्रह्म है ।

१५—नचक्षुषा गृह्यतेनापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणावा । मुण्डोपनिषद् ३ । १ । ७ ।

वह ब्रह्म आंख, वाणी और दूसरी इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होता।

१६—एक सर्वेश्वर एव सर्वज्ञ एवोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौहि भूतानाम् ॥ माण्डुक्योपनिषद् ।६।

वह परमात्मा सबका ईश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, सबका उत्पन्न करने वाला और सारे प्राणियोंका निवास स्थान और सब को सुख देने वाला है। ऐसा ब्रह्म निराकार के अतिरिक्त साकार नहीं हो सकता।

१७—ततो यदुत्तरतरं तदरूप मनामयम्। य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्त्येतरे दुःखमेवापि यान्ति। श्वेताश्व०।१०

१८—अक्षरमम्बरान्तधृतेः। वे० द० १।३।६

अर्थात् ब्रह्म अक्षर है आकाश को धारण करने का वर्णन होने से।

१९—नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्च न मध्ये परिजग्रभत्।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥

श्वेताश्वतर ४।१९

अर्थात्—न इसको (ब्रह्म को) ऊपर से, न तिरछा, न बीच में कोई पकड़ सकता है। क्योंकि उसकी प्रतिमा नहीं है उसका बड़ा यश प्रसिद्ध है।

"प्रजापतिश्चरति गर्भे०" पर शतपथ भाष्यकार पं० मोतीलाल "प्रजापति ब्रह्म आत्माश्रयतया स्वयं अनुत्पन्न है, स्वयं स्वयम्भू

है परन्तु सब कुछ इन्हींसे उत्पन्न होता है। अतएव वेद भगवान कहते हैं—प्रजापतिश्चरति गर्भे०।" पुष्कर तीर्थ में ब्रह्मा ने यज्ञ किया था। ब्रह्मा की जन्मभूमि पुष्कर (बुखारा) थी। शतपथ भाष्य पृष्ठ। ११। "बस केन्द्रस्थित यही अग्नि (पार्थिव) प्रजापति कहलाता है। यह शक्ति केन्द्र में रहती है। केन्द्र में रह कर यही उन पदार्थों की रक्षा करती है। स्वयं प्राण रूप होने से नित्य अतएव अजन्मा होकर भी इतर सारे पदार्थों को उत्पन्न करती है! अतएव वेद पुरुष कहते हैं—"प्रजापतिश्चरति गर्भे" पृष्ठ २८५।

नोट—केन्द्र के लिये विशेषकर गर्भ शब्द एवं कहीं सान्तरं शब्द आया है। वही सान्तर आज पाश्चात्य भाषा में बिगड़ते २ "सेन्टर" हो गया है। (यहां पर वेद मन्त्रमें केन्द्रिय अग्नि की चर्चा है! परमात्मा के अवतार से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह मत शतपथ भाष्यकार पं० मोतीलाल का है)

स्वामी शङ्कराचार्य और ब्रह्म

१—नच परमेश्वरस्य रूपवत्वं युक्तं अशब्दमस्पर्श मरूपमव्यमृति श्रुतेःआधार श्रवणाच्च। कौ०।१।३।१ वे० द० १।१।२

२—एषोन्तरा दित्योहिरण्मयः पुरुषो दृश्यते। छान्दो० ३।५।६।

हिरण्यइव हिरण्यमयो नहि सुवर्ण विकारस्त्वं देवा संभवति। अतोलुप्तोयमः एव हिरण्य शब्दो ज्योतिमय इत्यर्थ

३—कारणवच्चेन्न भोगादिभ्यः । वेदान्त सूत्र । २ । २ । ४०

शङ्करभाष्य—अथलोक दर्शननानुसारेणेश्वरस्यापि करण वत्वं शरीरं कामनं कल्प्येत, एवमपि नोपपद्यते । शरीरत्वेहसति संसारिवत् भोगादि प्रसङ्गादीश्वरस्याप्यनीश्वरत्वं प्रसज्येत । ४० ।

४—नस्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि वेदान्त ३ । २ । ११ ।

शं० भा०—तत्रोभय लिङ्ग श्रुत्यनुग्रहादुभय लिङ्ग मेव ब्रह्मो पेवं प्राप्ते ब्रूमः—नतावत्स्वतएव परस्य ब्रह्मण उभय लिङ्गत्व मुपपद्यते न ह्येकं वस्तु स्वत एव रूपादि विशेषोपेतं तद् विपरीतं चैवमवधारयितुं शक्यं विरोधात् ।

५—अरूपवदेव हितत्प्रधानत्वात् ॥ वे० सू० ३ । २ । १४

शं० भा०—रूपाद्याकार रतिमेव ब्रह्मावधारयितव्यं न रूपा दिमत् । कस्मात् ? प्रधानत्वात् ।

६—सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे । समासेनैव कौन्तेय ! निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥ गीता । १८ । ५०

शं० भा०—केचित्पण्डितंमन्या निराकारत्वादात्मवस्तु नेति बुद्धिरतो दुःसाध्य सम्यग्ज्ञान निष्ठेत्याहुः । सत्यमेवम सम्प्रदाय रहितानां, सम्यक् प्रमाणेष्वकृत प्रमाणाम् ।

—तर्कपाद के ४० वें सूत्र पर भाष्य—

"करण ग्राम साम्ये चाभ्युपगम्यमाने संसारिणामिवेश्वरस्या पि भोगादयः प्रसज्येरन् । ईश्वरस्यापि किञ्चिच्छरीरं करणाय-

तनं वर्णयितव्यं स्यात नचतद् वर्णयितुं शक्यते सृष्ट्युत्तरका
भवित्वाच्छरीरस्य प्राक्सृष्टेस्तदनुपपत्तेः" ॥ इसका यह
आशय है कि ईश्वर शरीरी नहीं हो सकता। शरीर सृष्टि उत्पत्ति
के बाद बने हैं। फिर पहले सृष्टि से शरीर कहां से आये ? अतः
ब्रह्म निराकार है।

उपर्युक्त प्रमाणों के भावार्थ

१—परमेश्वर निराकार है क्योंकि श्रुति में अशब्द अस्पर्श
मरूपम" आदि कहा है।

२—हिरण्यमय कहने से सोने का बना हुआ ब्रह्म नहीं है
हिरण्यमय कहने से ज्योतिर्मय समझना चाहिये।

३—लोकदृष्टि के अनुसार अपनी इच्छा से ईश्वर भी शरीर
दि इन्द्रियों वाला अपना शरीर बना सकता है यदि ऐसा कहें
तो यह भी सिद्ध नहीं होता। यदि ईश्वर शरीर वाला हो जाय तो
जैसे संसारी मनुष्य सुख दुःखादिभोगों से युक्त होजाते हैं वैसे
ही वह भी होजाय। ऐसा होनेपर ईश्वर ईश्वर ही नहीं रहेगा
यदि साकार और निराकार दोनों प्रकार का माना जाय तो यह
दोष होगा—

४—ईश्वर के साकारत्व और निराकारत्व दोनों प्रकार
की श्रुतियां देखने से ब्रह्म दोनों प्रकार का हो सकता है। ऐसा
प्राप्त होने पर हम कह सकते हैं--कभी भी ब्रह्म दो प्रकार का नहीं
हो सकता कारण कि एक ही वस्तु साकार है और निराकार है
यह परस्पर विरुद्ध होने से मानने योग्य नहीं।

इसके आगे पृथिव्यादि में व्यापक होने से साकारत्वका
भी खण्डन किया है।

५—रूपादि आकार रहित ही ब्रह्म हो सकता है रूपवाला नहीं यह निश्चय है। क्योंकि संसारी धर्म से पृथक है।

६—कई पण्डितं मन्य (पण्डिताभिमानी) लोग कहते हैं कि परमात्मा निराकार होने से मनुष्य की बुद्धि उसको प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिये परमात्मा का ज्ञान होना दुस्साध्य है। ठीक है। जो लोग गुरु परंपरा से रहित हैं जिन्हों ने कभी वेदान्त नहीं सुना बाह्य विषयों में जिनकी बुद्धि लगी हुई है, जिन्होंने न्याय आदि प्रमाणों में कुछ भी श्रम नहीं किया है, वे ऐसा ही कहा करते हैं।

वैदिक ईश्वर निराकार है इस पर विदेशियों की सम्मति :—

The Almighty, Infinite, Eternal Incompre hensible, Self-existent Being; He who sees everything though never seen, He who is not to be compassed by description and who is beyond the limits of human conception is Brahma, the one unknown true Being, the Creator, the preserver and destroyer of the universe. Under such and innumerable other definitions is the deity acknowledged in the Vedas, or the sacred writings of the Hindus.

Mythology of the Hindus by,
Mr. Charles Coleman.

आशय यह है कि—

हिन्दुओं की पवित्र पुस्तक वेदों में ईश्वर को सर्वशक्तिमान

अनन्त, देशविशेष से संबन्ध न रखने वाला और स्वयं सिद्ध माना है। वह सबका द्रष्टा है, परन्तु उसको कोई नहीं देख सकता जिसके विषय में मनुष्य की बुद्धि काम नहीं कर सकती, ऐसा मन की गति से बाहर वैदिक ब्रह्म है। वह इन्द्रियातीत ब्रह्म संसार का उत्पादक, पालक और प्रलयकर्ता है। ऐसे ही अनन्त गुणों वाला ब्रह्म वेदों ने बताया है। देखो:—मडियालोजी आफदि हिन्दूज़ चार्लस कोल लिखित।

2. These truely sublimeias cannot fail to convince. The Vedas recognise only one God, who is Almighty, Infinte, Eternal, self existent, the light and the Lord of the Universe.

आशय—ये सत्य और पवित्र विचार हमको यह विश्वास दिलाने में असफल नहीं होसकते कि वेद एक ही परमेश्वर का प्रतिपादन करते हैं;वह परमात्मा सर्वशक्तिमान, अनन्त अपरिमित स्वयंभू और सारे जगत का प्रकाशक और स्वमी है, देखो, थियोगोनी आफदि हिन्दूज़ पृष्ट ५३। का उराट जारजरनां लिखित।

द्वितीय अध्याय

अवतारवाद निर्णय

प्रश्न—'अवतार' शब्द के क्या अर्थ हैं ?

उत्तर— अवे स्तृस्त्रोर्घञ। अष्टा०। ३। ३। १२०।

अव उपपदे संज्ञायां गम्यमानाय तरतेस्तृणातेर्वा धातोः करणाधिकरणयोर्घञ स्यात्। अवतार शब्द 'तृ' प्लवन संतरणयोः धातु से 'अव' उपसर्ग लगाने से करण और अधिकरण में 'घञ' प्रत्यय करने से, सिद्ध होता है। अवतरन्ति येन यस्मिन वा स अवतारः। अर्थात् जिससे वा जिसमें तरे वह अवतार है। इसके उदाहरण घाट और नौका आदि हैं। देखो--काशिका भी-"अव उपपदे तरते स्तृणातेश्च धातोः करणाधिकरणयोःसंज्ञायां घञ् प्रत्ययो भवति। घस्यापवादः अकारोवृद्ध्यर्थः। स्वरार्थश्च। स्वरार्थश्च घकार उत्तसा कुत्वर्थः। अवस्तारः कथमवतारो नद्याः। नदीयं संज्ञा प्रायानुवृत्तेः संज्ञायामपि भवति।

प्रश्न—साकार किसको कहते हैं ?

उत्तर—अवयव समूहत्वं-आकारत्वम्। तेन सह साकारः अवयवों के समूह को आकार कहते हैं। उस आकार सहित जो वस्तु हो उसको साकार कहते हैं।

प्रश्न—क्या ईश्वर अवतार होकर साकार होजाता है ?

उत्तर—नहीं कदापि नहीं यदि अवतार लेकर साकार होजाय तो विकारी, अनित्य और एक देशी होजाय।

प्रश्न—फिर वेदादि सत् शास्त्रों में जो ईश्वर का अवतार लेना लिखा है, तो क्या वह सत्य नहीं है ?

उत्तर—वेदों में 'अवतार' शब्द तक नहीं। न अवतार की चर्चा ही वेदादि शास्त्रों में है।" वेदे अवतार शब्दस्यादर्शनात्" सामश्रमी जी की यही सम्मति है।

प्रश्न- वेदों में तो वामनावतार बताया है ?

उत्तर—नहीं जिस मन्त्र को वामनावतार की सिद्धि में प्रस्तुत किया है उसमें अवतार की कोई चर्चा ही नहीं। न उसमें वामन शब्द ही हैं। वह मन्त्र यह है—

इदं विष्णुर्विचक्रमेत्रेधानिदधे पदम्। समूढमस्य पा ँ सुरे स्वाहा। यजु० ५। १५।

अर्थः—(विष्णुः) सर्वव्यापक ब्रह्म इस जगतको (विचक्रमे) रचता हुआ (इदम्) इस प्रत्यक्ष जगत को (त्रेधा) तीन प्रकार का धारण करता है (अस्य) इस प्रकार मान् प्रकाश रहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (स्वाहा) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत का ग्रहण करता हुआ (इदम) इस (समूढम्) अच्छे प्रकार विचार करने कथन करने योग्य अदृश्य जगत को (पांसुरे) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है।

इस मन्त्र पर निरुक्तकार की सम्मति—

"यदिदं किञ्च तद् विक्रमते विष्णु स्त्रिधा निधत्ते पदं त्रेधा भावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि इति शाकपूणिः। समारोहणे

विष्णु पदे गय शिरसि इत्यौर्णवाभः । समूढस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यते । अपिवोपमार्थे स्यात् समूढस्य पांसुल इव पदं न दृश्यतेइति । पांसवः पादैः सूयन्त इति वा, पन्नाः शेरत इति वा पंसनीया भवन्तीति वा ।" निरुक्त १२ । १६ ।

गयशिरसीत्यत्र गय इत्य पत्य नाम । निघंटु २ । १०
प्राणा वै गयाः । शतपथे १४ । ७ । १ । ७

निरुक्तार्थ—"व्यापक विष्णु ने इस सब जगत को तीन प्रकार के होने को विक्रान्त किया है । १ पृथिवी, २ अन्तरिक्ष ३ द्यु लोक, यह शाकपूणी आचार्य का मत है । १ समारोहण, २ विष्णुपद, ३ गायशिरा यह और्णवाभ का मत है । उसका पद अदृश्य होना उपमा है कि जैसे रेतमें पांव नहीं दीखता । पांसु रेणु का नाम है क्योंकि वे पांवों से उत्पन्न होती वा पड़ी सोती हैं ।"

"गय" सन्तान का नाम है । निघंटु । २ । १० । प्राण का नाम भी 'गय' है । शतपथ १४ । ७ । १ । ७ के अनुसार ।

यह मन्त्र ऋग्वेद में । १ । २२ । १७ पर है । सामवेद में "पांसुले" पाठ है और स्वाहा शब्द नहीं है ।

महीधरार्थः—अग्निवायु सूर्य रूपेणेत्यर्थः" अर्थात्-त्रिविक्रम अवतार ने ३ पद रक्खे—अग्नि वायु सूर्य रूप से ।

दूसरा अर्थ महीधर और भी करता है—

"अस्य विष्णोः पदं पद्यते ज्ञायत इति पदम द्वैताख्यं स्वरूपं समूढ मन्तर्हितमज्ञातमकृतात्मनि । कस्मिन्निव । पांसुरे इव लुप्तोपमानं पांसुले रजस्वले प्रदेशे निहितं यथा न ज्ञायते

तदवत्। तदुक्तं (६। ५) तद्विष्णोः परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः इति। स्वाहातस्मै विष्णवे हविर्दत्तम्।

अर्थात्—इस विष्णु का पद, जो जाना जाय उसको पद कहते हैं, अर्थात् अद्वैत स्वरूप छुपा हुआ है उनसे जो आत्मा *नहीं है, किसमें के समान ? —जैसे* धूलिवाले प्रदेश में छिपी हुई वस्तु नहीं दीखती। इसके समान। स्वाहा—तिस विष्णु के लिये हविः दिया। (यहां पर कहीं वामनावतार की गंध नहीं।

"इदं विष्णु०" पर निरुक्त के भाष्यकार दुर्गाचार्य—"अथ यत् यदा विक्षितः व्याप्तोऽयमेव सूर्यो रश्मिभिर्भवति तद् तदा विष्णुर्भवति। विशतेर्वा। यदा विष्टः प्रविष्टः सर्वतो रश्मिभि भवति। व्यश्नोतेर्वा विश्वस्य वाश्नोतेः यदा रश्मिभि रतिशयेन यं व्याप्तो भवति व्याप्नोतिवा रश्मिभिर्यं सर्वतदा विष्णुरादित्यो भवति।

आशय यह है कि जिस समय सूर्य अपनी किरणों को भले प्रकार फैला देता है उस समय के सूर्य को विष्णु कहते हैं।

निरुक्त पर दुर्गाचार्य का भाष्य—

यदिदं किंचित् विभागेनावस्थितं तत्र विक्रमते विष्णु रादित्यः कथमिति यत आह—त्रधा निदधेपदम्। निधत्ते पदम् तत्र तावत् पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। पार्थिवोऽग्नि र्भूत्वापृथिव्यां यत तत किंञ्चिदास्ति तद् विक्रमते तदधितिष्ठति। अन्तरिक्षे विद्युदात्मना दिवि सूर्यात्मना यदुक्तम्—अकृण्वन् त्रेधाभुवेकम ऋ० ८। ४।११। ५। समारोहणे उदयगिरौ उद्यन् पद-

मेकं निधत्ते । विष्णुपदे मध्यन्दिने अन्तरिक्षे गय शिरासि अस्तं गिरौ इति और्णवाभ आचार्यो मन्यते एवम् ।

समूढमस्य पांसुरे अस्मिन् व्यापने एतस्मिन्नन्तरिक्षे सर्वभूत वृद्धिहेतोः यन्मध्यन्दिनम् पदं विद्युदाख्यं तत् समूढं अन्तर्हितं न नित्य दृश्यते । तदुक्तं स्वप्न मे तन्मध्यमं ज्योतिरनित्य दर्शन । अपिवा उपमार्थस्यात् समूढमिव पांसुलेपदं न दृश्यते इति । यथा पांसुले प्रदेशे न्यस्त मुत्क्षेपण समन्तरमेव पांसुभि राकीर्णत्वात् न दृश्यते एवं अस्य मध्यमं विद्युदात्मकं पदमाविष्कृतं समकालमेव व्यवधीमते नाव तिष्ठत इत्यर्थः ।"

आशय यह है कि—यह जो कुछ विभाग के साथ अवस्थित है वह विष्णु—सूर्य ही क्रमण कर रहा है। किस प्रकार ? तीन प्रकार से पद रक्खे। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में—यह शाकपूणि आचार्य मानता है। पार्थिव अग्नि होकर पथिवी में जो कुछ ठहर रहा है (वह पहला पद है) अन्तरिक्ष में विद्युत होकर ठहर रहा है, द्युलोक में सूर्य होकर ठहर रहा है। जैसा कि ऋ० वे० ८।४।११।५—अकृण्वन त्रेधा भुवे-कम है। उदयकाल में उदयाचल पर्वत पर पैर रखता है—वह पहला चरण है। मध्यान्दन में विष्णु पद पर, और अस्ताचल गिरिशरपर अन्तरिक्ष में पैर रखता है। ऐसा और्ण वाभआचाय मानता है। इस अन्तरिक्ष में सब प्राणियों के वृद्धि के हेतु बीच वाला पद विद्युत छिपा हुआ है-नित्य नहीं दिखाई पड़ता है। अर्थात् बीच की ज्योतिः का नित्य दर्शन नहीं होता। अथवा

उपमाथ है—धूलि में छुपा हुआ पद नहीं दिखाई पड़ता। इस ही प्रकार यह बीच की ज्योतिः बिजली नहीं दिखाई देती।

ऋ ६। ११।२ पर निरुक्त The speeder's footstep thethreefold step of Vishnu as the sun, traversing the tru worlds of earth air and Msky P.566.

स्कन्द स्वामी और वररुचि भी स्वामनावतार नहीं मानते। ये दोनों भाष्यकार हैं।

इस मन्त्र पर ऐतरेय ब्राह्मण !

इन्द्रश्चहवे विष्णुश्चासुरैर्युयुधाते तान् हस्म जित्वोचतुः कल्पामहा इति। तेह तथेत्यसुराऊचुः सोऽब्रवीदिन्द्रो यावदेवायं विष्णुस्त्रिर्विक्रमते तावदस्माकमय युष्माकमितरदि स इमां लोकान विचक्रमेऽथो वेदान थो वाचंतदाहुःकितत्सहसा मितिलोका इमेवेदा अथो वागिति बूयात। ऐ, ब्रा, ६। २८ खं०

इस पर सायण भाष्य

योऽयमिन्द्रो यश्च विष्णुस्तावुभावसुरैः सहयुधाते युद्ध कृतवन्तौ। ततस्तावसुरं जित्वा तै सहेदमूचतुः हि सुरावयं सर्वं कल्यामहैं विभागं करमहा इति। असुरास्तथेत्यङ्गी चमुः। तदनी मसुरैः सहेन्द्र एवमब्रवोत्। अयं विष्णुर्यावद् वस्तूद्दिश्य तिक्रमते वस्तुजाते पादत्रयं प्रक्षिपति तावद्वस्तु सर्वास्माकं भवतु अथेतर दवशिष्टं युष्माकमस्तु इति। एवमसुरैः सह समयं कृत्वा सविष्णु रिमाल्लोकास्त्रीनप्येकेनपादेन विचक्रमे विक्रान्तावन् लोकभयस्योपर्येकपादं प्रक्षिप्तवान्। अथोतदनन्तरं वेदान विचक्रमे सर्वेषां वेदाना मुपर्यं कंपदं प्रक्षिप्तवान्। अथोतदनन्तरं वाचं-

विचक्रमे सर्वस्या वाचोपरि तृतीयं पदं प्रक्षिप्तवान। एवं पादत्राय मऽऽक्रान्तं सर्वमिदं विष्णोर्भाग आसीत्।

एवं भागे व्यवस्थिते सति तन्मात्रार्थं ब्रह्मवादिनः प्रश्न माहुः। मेधा सहस्रमिति मन्त्रे यदुक्तं तत्र सहस्र शब्देन किमुच्यत इति इम इत्यादिकं तदुत्तरं यइमे त्रयोलोका ये मे वेदा या चेयं वाक नदेतत्परिमितत्व स्वोप लक्षकेण सहस्र शब्देन विवक्षितमित्युत्तरं ब्रूयात्। यद्यप्ययं मन्त्रस्तैत्तिरीयाणां सप्तमे काण्डेऽतिरात्रस्य यागे दक्षिणारूप गोसहस्रहस्तविषयत्वेनो दाहृतस्तथाप्यत्र सहस्र शब्दः सर्व जगद् विषयत्वेन श्रुत्यैव व्याख्यायत इत्युभयार्थत्वमस्तु। पृष्ठ १०५

आशय यह है कि—ऐतरेय ब्राह्मण के कर्त्ता महीदास 'इदंविष्णु०' इस मन्त्र पर एक आख्यायिका लिखते हैं। 'ऋविद्दृष्टार्थस्यप्रीतिर्भवत्याख्यान संयुक्ता' नियम संख्या १७ के अनुसार "देवता और असुर अर्थात् प्रकाश और अन्धकार का आलङ्कारिक वर्णन करते हैं। यथा—इद्र और विष्णु दोनों असुरों से लड़ने लगे कि हम इन असरों को जीतकर पृथिवी का विभाग करें। असुरोंने कहा अच्छा ऐसा हो हो। फिर इन्द्रने कहा—जितने में यह विष्णु तीन पग रक्खे उतना भाग हमको देदो। शेष पर तुम्हारा अधिकार रहे। फिर विष्णु ने क्रमण किया। एक ही पद में सारे लोकों को नापा। इसके बाद वेदों को पैर से नापा, वेदों पर पैर रक्खा। फिर वाणी पर पैर रक्खा। इस प्रकार सारे लोक, तीन चरणों से, इन्द्र और विष्णु के भाग

बन गये। इस प्रकार भाग हो जाने पर उस मन्त्र के अर्थ में ब्रह्मवादी लोग प्रश्न करते हैं। 'त्रेधासहस्रम्' इस मन्त्र में जो 'सहस्र' शब्द है इसका क्या अर्थ है? इत्यादि। इस कथानक से वेद और वाणी पर पैर रखना आदि बताता है कि यह विष्णु अवतार वाद का नहीं किन्तु और ही है।

वैष्णवो भवति विष्णुर्वैयज्ञः स्वयैवैनंतर्देवतया स्वेन च्छन्सा समर्धयति। ऐतरेय १। ३। ४।

इस पर सायण भाष्य—"तेच याज्ञानुवाक्ये नाश्वस्वादने न दर्शिते—"इदं विष्णुर्विचक्रमे" १—२२—१७ तदस्य प्रिय मिवपायो अश्याम्। १।१५४। ५।

सा० भाष्य—याज्ञानुवाक्ये कुर्यादिति शेषः।

वैष्णवस्त्रिरहीदं विष्णुव्यक्रमत सैनयोस्तत्र क्लृप्तिः सा विभक्तिः। ऐ ब्रा० १। १।

इस पर सायण भाष्य—त्रिकपालेषु संस्कृतः पुरोडाश भागो विष्णोः सम्बन्धी हि यस्मात् कारणात् विष्णु रिदं सर्वं जगत् त्रिविक्रमत त्रिवृत्तेन स्वकीय पाद विक्षेपेण व्याप्तम्। पृ० ६।

इदं विष्णुर्विचक्रम इत्येयर्चा यज्ञोवै विष्णुस्तद्ययेनैव यज्ञमनुसन्तन्मः। शतपथ १२। ३। ५। ४ पृ० ६०२

यदाते विष्णु रोजसा त्रीणीपदा विचक्रमे। आदित्ते हर्यता हरी ववच्चतुः॥ ऋ० ८। २। १२। २७।

विष्णु के पद का क्या अर्थ है?

"पदस्त्रं या विद्यातिरोधानायनयनाय सर्वपदनीयत्वेन स्वरूपस्य द्रष्टव्यम । तद् विष्णोः परंपदमितिश्रुतेः ।"

अर्थात्—पद कहते हैं विष्णु के स्वरूप को क्योंकि अविद्यारूपी जो तिमिर उसको दूर करने वाला व्यापक परमात्मा का स्वरूप ही हो सकता है यह बात "तदविष्णोः परमं पदम" से सिद्ध है। मधुसूदन स्वामीकृत संक्षेप शारीरिक टीका।

विष्णु के ३ पग और पग भीमसैन जी सनातनी—(त्रेधा निदधेपदम्) भूमि अन्तरिक्ष और स्वर्ग में अग्नि, वायु और सूर्य रूप से अपना प्रताप फैलाया ब्राह्मण सर्वस्व पृष्ठ ४५८।

सूर्य के तीन पग—

यदाते विष्णु रोजसा त्रीणि पादा विचक्रमे आदत्ते इर्यता हरी ववक्षतुः ॥ ऋ० ८ । २ । १२ । २७ ॥

यहाँ पर भी विष्णु अर्थात् सूर्य की किरणों को पद कहा गया है। यहां पर इस सुक्त में ३ मन्त्रों में सूर्य का ही वर्णन है। २७वें मन्त्र में विष्णु शब्द से सूर्य को पुकारा गया है। २८ वें में हरिः कहा है। २९ वें में इन्द्र कहा है। चौथे मन्त्र में तो सूर्य शब्द ही पड़ा हुआ है।

इदं विष्णु र्विचक्रमे" पर विशेषदृष्टि—

अवतार वादी पौराणिक लोग इस मन्त्र से वामनावतार सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न इसलिये करते हैं कि इस मन्त्र में 'त्रेधानिदधेपदम्'— तीन प्रकार से पद रक्खा ऐसा पाया जाता है। यदि 'पद' शब्द पर भले प्रकार विचार कर लिया जाय

तो सारे सन्देह दूर हो जाते हैं। 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि' इस मन्त्र में आये हुये पद शब्द के अर्थ पैर नहीं है। यदि शङ्कर स्वामी, महीधर और रामानुज आदि की सम्मति है, यह पूर्व ही इस मन्त्र के अर्थ करते समय, दिखाया जा चुका है। दूसरे स्थान पर-"तत्विष्णो परमंपदम्" में पद शब्द आया है। यहां पर सब एक मत होकर निराकार ब्रह्म का ही प्रतिपादन करते हैं। महीधर यजु० । ६ ।५ पर लिखते हैं—"विष्णोः परमं पदम् स्वरूपं सदा पश्यन्ति"—विष्णु के परम पद—जिस स्वरूप को देखते हैं। दूसरा प्रमाण शङ्कर दिग्विजय का देखिये—"अतः पालन कर्त्तृ विष्णो पदं स्वरूपं सदा पश्यन्ति"-सूरय इत्युक्तेका वा अस्माकं हानिः पालन कर्त्ता वा विष्णुर्भवति न चास्माकं तत् क्लेशः सर्वं सर्वेषां देवानांमात्मैकाय नमितिवृहदारण्यक श्रुतेः पञ्चरक्षणा सर्वदेश मयत्वात्। शं० दि० वि० पृष्ठ ६०। सत्यव्रत सामश्रमी की राय—"विष्णोस्त्रिविक्रमावतार धारी इदं प्रतीयमानं सर्वं जगदुद्दिश्य विचक्रमे विशेषेण क्रमणं कृतवान् तदात्रे धात्रिभिः प्रकारैः पदं क्षिप्तवान् अस्य विष्णोः पांसुरे धूलियुक्ते पादस्थाने "समूढं" इदं सर्वं जगत् सम्यगन्तर्भूतमिति। पुराणसम्मतं सायणीय व्याख्यानञ्च बौद्धानां नादरणीयं यास्कानुक्तेः अवतार शब्दस्यापि वेदेऽदर्शनाच्च।" दैवत काण्ड पृ० २८३।

इस मन्त्र पर उव्वट-पद्यते ज्ञायते अनेनेति पदम् भूम्यन्तरिक्ष द्युलोकेषु अग्निवायु सूर्य रूपेण त्रिधा निहितवान् पदम्। अर्थात्—जिससे जाना जाय वह पद है, अग्नि वायु और सूर्य रूप से अथवा तीन प्रकार से (विभूतिरूप) पैर रक्खा।

२—प्रजापतिश्चरति गर्भे अनन्तरजायमानो बहुधा विजायते । तस्ययोनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् हतस्थु र्भुवनानि विश्वा । यजु० ३१ । १९ ।

सत्यार्थ—जो (अजायमानः) जो अपने स्वरूप से न उत्पन्न होने वाला (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सबके हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (वि, जायते) विशेष कर प्रगट होता है (तस्य) उस प्रजापति के जिस (योनिम्) स्वरूप को (धीराः) ध्यान शाली विद्वान् जन (परि, पश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन्) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तर (तस्थुः) स्थित हैं। प्रजापतिश्चरति गर्भे० केन्द्र शक्ति को गर्भ कहते हैं। * परमात्मा जगत् की केन्द्र शक्ति है। शा० प० भा० पृ० २८। ५।

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र का अर्थ—

(प्रजापतिः) परमेश्वर (गर्भेअन्तः) गर्भ के मध्य में (चरति) प्राप्त होता है (जायमानः) जन्म धारण करता हुआ (बहुधा) देवता मनुष्य रामकृष्णादि रूपों मे (विजायते) उत्पन्न होता है (धीराः) ज्ञानी महात्मा सतगुण प्रधान पुरुष (तस्य) उस परमात्मा के (योनिम्) जन्म कारण को (परि पश्यन्ति) ज्ञान से सब ओर

---

* हृग्रहोर्यश्छन्दसि" अष्टाध्यायी के सूत्र से गर्ह के स्थान गर्भ होगया। प्रजापति इस जगत की केन्द्र शक्ति है। जगत को धारण कर रहा है।

देखते हैं। (अज्ञानियों को उसका जन्म नहीं विदित होता) (यस्मिन्) जिस परमेश्वर में ही (इ विश्वा भुवनानि) सब ब्रह्माण्ड (तस्थुः) स्थित हैं।

- दयानन्द तिमिरभास्कर प्रथमावृत्ति पृष्ठ १९६।

पं उमाशंकर मिश्र पौराणिकने इस वेद मंत्र में आयेहुये "अजयमानः" का पाठ बदल कर "जायमानः" पाठ बनाकर अक्षम्य पाप किया है। इनको अपने पौराणिक अवतार को सिद्ध करने के लिये यह घोर पाप करना पड़ा है। चाहे वेद भगवा की हत्या करनी पड़े परन्तु अवैदिक पौराणिक अवतार अवश्य सिद्ध हो जाय। "अजायमानः" के अर्थ हैं—न जन्म धारण करता हुआ। परन्तु पाठ बदल कर वेद की हत्या करने से "जायमानः" के अर्थ होगये 'जन्म धारण करता हुआ। इन सनातनियों को सब सामर्थ्य है।

इस मंत्र पर महीधर की सम्मति—

यः सर्वात्मा प्रजापतिः अन्तर्हृदि स्थितः सन् गर्भ चरति गर्भमध्ये प्रविशति यश्चाजायमानोऽनुत्पद्यमाने नित्यंसन् बहुधा कार्यकारण रूपेण विजायते। ३१। १९।

भावार्थ—जो परमात्मा प्रजापति रूप है, हृदय के अन्तर स्थिर होकर गर्भ के मध्यमें प्रवेश करता है अर्थात् जो गर्भ के

श्रीभाष्य—पृष्ठ १०। ४४ में भी—"अजायमानो बहुधा विजायते" ऐसा ही पाठ माना है।

भीतर उत्पन्न न होकर मायावश बहुत प्रकार से कार्य कारण रूप में प्रपञ्च रूप उत्पन्न होता है आदि।

मधीधर कहते हैं ब्रह्म अजायमान है, अनुत्पद्यमान है, नित्य है और स्थिर है। फिर इस प्रकार का ब्रह्म जो गर्भ में पहले से ही विद्यमान है, गर्भ में दुबारा कैसे आवे ?

देखो श्री स्वामी शङ्कर जी क्या कहते हैं—"नहिकूटस्थ ब्रह्मणः स्थितिगति वदनेक धर्माश्रयत्वं सम्भवति। कूटस्थं नित्यञ्च ब्रह्मसर्व विक्रिया प्रतिषेधा दित्यवोचाम। नच यथा ब्रह्मण आत्मेकत्व दर्शनं मोक्षसाधनम्, एवं जगदाकार परिणामित्व दर्शनमपि स्वतन्त्रमेव कस्मैचित् फलायाभिप्रेत प्रमाणाभावात् कूटस्थ ब्रह्मात्मविज्ञानादेवादि फलं दर्शयति शास्त्रम्। स एष नेति नेत्यात्मा इत्युपक्रम्य, अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि, इत्येवं जातीयकम।" स्मृतिपाद सूत्र १४।

इसका अर्थ—कूटस्थ एक रस ब्रह्म में स्थिति और गति की तरह जो रहा विरुद्ध धर्म है वे नहीं रह सकते, कूटस्थ नित्य सर्व क्रियाओं से रहित ब्रह्म इस वर्णन करचुके हैं। और जिस प्रकार ब्रह्म का ज्ञान मोक्ष का साधन है, इस प्रकार जगत रूप परिणाम का दर्शन मोक्ष का साधन नहीं। स्वतन्त्र किसी फल के लिये जगत रूप परिणाम का दर्शन अभिप्रेत नहीं किया जाता क्योंकि इसमें कोई परिमाणनहीं कि इस जगत् रूप परिमाण ब्रह्म सनाया जाय क्योंकि कूटस्थएक रस ब्रह्म के ज्ञान से ही शास्त्र फल निरूपण करता है....हे जनक ! तू अब अभय को प्राप्त होगया है।"

शङ्कर स्वामी जगत के विकार प्रकृति से उत्पन्न हुए मानते

हैं—"विकारानुगुणांश्च विद्धि जानीहि, प्रकृति असम्भवान प्रकृति परिणामान्।" गीता भाष्य।

श्रीस्वा० रामानुजजी 'परिणामात्'। वे० सू० १। ४। २७ में मानते हैं कि ब्रह्म सम्पूर्ण निन्दित गुणों से वर्जित है। निन्दत गुण प्रकृतिके हैं। पं० अखिलानन्द सनातनी कहते हैं—"जब रज वीर्य के अन्दर तक वह व्यापक है तब जन्म कैसा? गर्भाशय में भी वह व्यापक।" वेदत्रयी समालोचना पृष्ठ १७६।

३—नयो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधि मते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकाविभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णातां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः। यजु० १६।२१

सत्यार्थः—राजपुरुष (वञ्चते) छल से दूसरों के पदार्थों को हरने वाले (परिवञ्चते) सब प्रकार कपट के साथ वर्तमान पुरुष को (नमः) वज्र का प्रहार और (स्तायूनां) चोरी से जीने वालों के (पतये) स्वामी को (नमः) वज्र से मारें (निषङ्गिणे) राज्यरक्षा के लिये निरन्तर उद्यत (इषुधिमते) प्रशंसित बाणों को धारण करने हारे को (नमः) अस्त्रदेव (तस्कराणाम्) चोरी करने हारों को वज्र से, सज्जनों को पण्डित करने को प्राप्त होने और (जिघांसद्भ्यः) मारने की इच्छा वालों को (नमः) वज्र से मारें (मुष्णाताम्) चोरी करते हुओं को (पतये) दण्ड प्रहार से पृथिवी में गिराने हारे को (नमः) साकार करें (असिमद्भ्यः) प्रशंसित खड्गों के सहित (नक्तम्) रात्रि में (चरद्भ्यः) घूमने

वाले लुटेरों को (नमः) शस्त्रों से मारे और (विक्रन्तानाम्) विविध उपायों से ...ठ काट के पदार्थों को लेने हारे ठगों को (पतये) मारकर गिराने हारे का (नमः) सत्कार करे पौराणिक पण्डित इस मन्त्र से कई एक अवतार सिद्ध करने का दुःसाहस करते हैं—जरा इनकी वञ्चना और परिञ्चना का पाठकगण नमूना देखें। ऐसा अनर्थ, जिस हिन्दू जाति के विद्वान् कहाने वाले पौराणिक पण्डित, पेट के लिये करते हों तो यह हिन्दू जाति का कितना दुर्भाग्य है ?

पं० बालकराम (पौराणिक) कृत अर्थ (?) अनर्थ—"वञ्चन करने वाले जो आपही तिस के प्रति हमारा नमस्कार होय, और परिवञ्चन करने हारे जो आपही जिसके प्रति हमारा नमस्कार होय,अर्थात् बुद्धरूप को धारण कर असुरों को वञ्चन कर तिन्हों से वेद के परित्याग करावने हारे और मोहिनी रूप धारण कर दैत्यों को परीवञ्चन कर तिन्हों से अमृतपान परित्याग करावने वाले जो आपही जिसके प्रति हमारा नमस्कार होय, आप ऐसे हो कि (स्तायूनां पतये) अर्थात् तस्करों के ईश्वर जो पञ्चयज्ञका अनुष्ठान न कर भोजन करते हैं सो तस्कर कहेजाते हैं जैसे गीता में कहा है—(तैर्दत्तान प्रदायेभ्यो यो मुक्तेस्तेन एवसः) अर्थात् देवता गण को न देकर जो भोजन करता है सो चोर है इसमें असुरों और बौद्धों का नाम चोर भया उनके आप पति हो, ईश्वर हो। बुद्धरूप से व मोहिनीरूप से माननीय हो एवं विपङ्खधारी जो आपही तथा इसु धारी जो आप हो जिसके प्रति हमारा नमस्कार होय विपंगनाम धनुष का है और इषुधि नाम

वाणके रहने वाले तस्कर का है इससे रामावतार सिद्ध भया फिर कैसे राम हैं कि (तस्कराणां पतये) अर्थात् सीता को चुराने वाला जो रावण जिसके पति हैं, जैसे विघ्नों के नाश करने हारे गणेशजी को विघ्नपति कहाजाता है। तैसे तस्कर रावण का नाश करने से रामचन्द्र जी को तस्करपति कहा है। साम वेदमें तो स्पष्ट ही रामचन्द्र जी का वृत्तान्त है।

यह है बालकराम की बालक लीला !! पौराणिक गपोड़े वेदों से सिद्ध करते समय प्रत्येक बड़े से बड़ा पौराणिक पण्डित बालकराम वत बालक ही सिद्धहुआ है। यदि इसवञ्चना परिवंचना से अवतारवाद सिद्ध हो जाय तो इतना काला काला करने से क्या लाभ ? केवल इतना ही कहदेना पर्याप्त है कि—"चूंकि पहाड़ पर आलू बड़े २ होते हैं इसलिये रामकृष्णादि का अवतार सिद्ध है।" जब जाल ही फैलाना है तो अधिक चक्कर काटने से क्या प्रयोजन ? धन्य हो पौराणिक मण्डल धन्य हो !!

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममेरजाꣳसि। यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायोः विष्णवेत्वा। यजु० ५।१८। ऋ० २।२।२४।१

सत्यार्थ—हे मनुष्यों ! तुम (यः) जो (विचक्रमाणः) जगत् रचने के लिये कारणके अंशोंको मुक्त करता हुआ उसमाद बहुत अर्थों को वेद द्वारा उपदेश करनेवाला जगदीश्वर (पार्थिवानि) पृथिवी के विकार अर्थात् पृथिवी से गुणों से उत्पन्न होने

वाले वा अन्तरिक्ष में विदित् (त्रेधा) तीन प्रकार के (रजाँसि) लोकों को (विममे) अनेक प्रकार से रचता है जो (उत्तरम्) पिछले अवयवों के (सधस्थम्) साथ रहने वाले कारण को (अस्कभायत्) रोक रखता है (यः) जो (विष्णवे) व्यापक परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रम युक्त कर्मों को (प्रवोचम्) कथन करूं और हे परमेश्वर ! (नु) शीघ्र ही (कम्) सुखस्वरूप (त्वा) आपका आश्रय करता हूं। सायणाचार्य—'विममे' का अर्थ करते हैं—'विशेषण विममे'। अर्थात्—तीनोंलोक विशेष करके रचे। और महीधर अर्थ करते हैं कि—"यः पार्थिवानि रजांसि पार्थिव परमाणून् विममे परिगणितवान्—जो पृथिवी के परमाणुओं को गिनता हुआ। दोनोंही ३ प्रकार के लोकों की रचना कर्त्ता विष्णु को बताते हैं।

त्वंस्त्री उतवा पुमानसि त्वं कुमार उतवा कुमारीः।
त्वंजीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्व जातो भवसि विश्वतो मुखः॥
अथर्व १०।४।२७

सत्यार्थः—(त्वंस्त्री) हे आत्मन्। तू स्त्री है (उतवा) और (पुमानसि) तू पुरुष है (त्वंकुमारः) तू कुमार है (उतवा) और (कुमारी) तू कुमारी है। (त्वंजीर्णः) तू ही बूढ़ा' होकर (विद्वनवंच) दण्ड हाथ में लेकर चलता है। (त्वंहि) तूही जातः शरीरधारी रूप में उत्पन्न होकर (विश्वतोमुखः) नाना प्रकार का (भवसि) हो जाता है।

यहां पर जीवात्मा का विषय है। यह जीवात्मा शास्त्र के अनुसार—

नैवस्त्री नपुमानेव नचैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमाधत्ते तेन तेन प्रयुज्यते ॥

के अनुसार यह जब स्त्री पुरुष और नपुंसक कुछ नहीं, जिस २ शरीर को धारण करता है वही २ हो जाता है।

प्रश्न—छान्दयोग्य उपनिषद् ३। १६ में—"कृष्णाय देवकी पुत्राय आया है। अतः कृष्णावतार सिद्ध है ?

उत्तर— पाठ इस प्रकार है,तच्छैतदघोर आङ्गिरसःकृष्णाय देवकी पुत्रायोक्तोवाचाऽपिपास एव स बभूव। सोऽन्तवेलाया-मेतत्त्रयं प्रति पद्येताक्षितमसि अच्युतमसि प्राणासंशितमसीति। तत्रैतेद्वे ऋचौ भवतः। ६।

अर्थ—अङ्गिरा गोत्रवाले घोर नाता ऋषिने देवकी के पुत्र कृष्ण को पूर्वोक्त यज्ञका उपदेश किया, और वह कृष्ण उपदेश से सन्तुष्ट हुआ, फिर घोर ऋषिने अन्त समय कहा, 'तू अक्षतहै तू अच्युत है और प्राण संशित है। शङ्कर स्वामी भी कृष्ण को अवतार न मानकर घोर ऋषिका शिष्य ही बतलाते हैं, यथा= "घोरोनामत आङ्गिरसो गोत्रतः कृष्णाय देवकी पुत्राय शिष्याय" अर्थात जो घोर नामवाला और अङ्गिरस गोत्रका था उसने अपने शिष्य कृष्णको उपदेश दिया। इसमें अवतार की गंध कहा है ?

प्रश्न—ब्राह्मण ग्रन्थों में मत्स्यावतार की चर्चा है,वहप्रमाण क्यों नहीं ?

उत्तर—आर्यसमाज स्वत प्रमाण वेदों को ही मानता है। शङ्कर स्वामी भी ऐसा ही प्रतिपादन करते हैं। यथा="वेदस्य

स्वार्थे निरपेक्षं प्रामाण्यं पुरुष वचसान्तु मूलान्त रापेक्षम्। स्मृति-पाद सूत्र १। शङ्कर भाष्य।

अर्थात्—केवल वेद ही स्वतः प्रमाण हैं और जो मनुष्य के वचन हैं वे तो वेदों के अनुकूल ही माने जा सकते हैं। (अन्यथा-नहीं)।

प्रश्न—परमात्मा के २ शरीर, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं?

उत्तर—नहीं उपनिषद्कार इस मतका खण्डन करते हैं—यथा "अशरीरं शरीरेषु०" कठ० २। २२। अर्थात् शरीरधारियों में शरीर रहित, निराकार है। व्यास जी भी तृतीय पादमें द्युभ्वा द्यायतनं स्वशब्दात् में भी यही प्रतिपादन करते हैं कि, निराकार परमात्मा ही द्यु० भू० आदि सब का आधार है।

प्रश्न—एकोहं बहुस्यां प्रजायेय० से सिद्ध है कि एक कृष्ण, रासलीला में गोपियों के साथ, बहुत से बनजाते थे?

उत्तर—भले मनुष्यों! क्यों अनर्थ पर कमर बांधी है? अद्वैत वादीतो इस छान्दोग्य वाक्य से यही सिद्ध करते हैं कि, वह ब्रह्म सृष्टि के आदि में एक था; उसने इच्छा की कि मैं बहुत होऊं। विशिष्टाद्वैतवादी इससे यह सिद्ध करते हैं कि—सूक्ष्मरूप से ब्रह्म में जगत् का उपादान कारण प्रकृति और जीव विद्यमान् थे। उसने इन को पृथक किया आदि। द्वैतवादी कहते हैं कि उसने ईक्षण किया और विद्यमान् उपादान कारण से जगत् रचा जितने भी भाष्यकार हैं सबही ने इस वाक्य के ऐसे ही अर्थ किये हैं। परन्तु थे अनर्थकारी इस व्यभिचार प्रचारणी रासलीला के ही स्वप्न इस वाक्य में देख रहे हैं!!!

प्रश्न—ब्रह्म में परस्पर विरोधाथा गुण हैं—यथा="तदेजति तन्नैजति अर्थात्—वह हिलता भी है और नहीं भी हिलता है ? और "अणोरणीयान् महतोमहीयान्" वह छोटे से छोटा और बड़े २ से बड़ा है।

उत्तर—देखिये आपका महीधर स्वयं ही आपका खंडन कर रहा है "अचलमेव मूढ़ दृष्ट्या चलयंतीत्यर्थः"— अर्थात् वह ब्रह्म तो अचल है परन्तु मूढ लोगों की दृष्टि में चलता हुआ सा प्रतीत होता है। एवं मूर्खों की दृष्टि में कहीं दूर है परन्तु विद्वान लोग अपनी आत्मा के भीतर उसको व्यापक समझते हैं।

"अणोरणीयान् महतोमहीयान्" का अर्थ शंकर स्वामी भी यही करते हैं कि वह ब्रह्म सर्वान्तर होने से अणु से भी सूक्ष्म है, और तृण से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त में व्यापक होने से महान से भी महान है।

प्रश्न—"दशानामेकं कपिलं समानं०" ऋ० ७।७।२८ से कपिल देव का अवतार सिद्ध है ?

उत्तर—सायणाचार्य अवतार न बताकर केवल कपिल को ऋषि ही बताते हैं—"दशानां दस संख्याकानां पूर्वोक्तानामेवाङ्गिरसां मध्ये एकं मुख्यं कपिलं एतन्नामानं तं प्रसिद्धम्"—अर्थात= दशसंख्या वाले जो पूर्वोक्त अङ्गिरा हैं उनमें से कपिल नाम वाले प्रसिद्ध ऋषि को। श्रीमानुजाचार्य जी—श्वेताश्वर की प्रतीक—"ऋषि प्रसूतं कपिलम्' देखकर केवल ऋषि ही सिद्ध करते हैं। श्वेताश्वतर अ० ५ श्लोक २ में कपिल देव का नाम आया है। वहां पर "ऋषिप्रसूतं कपिलंयस्तमग्ने ज्ञानैर्बिभर्त्ति जायमानञ्च

पश्येत्" । ऐसा पाठ है। इसका आशय यही है कि जिसने कपिल को ज्ञानी बनाया शङ्कर स्वामी ने अपने शारीरक भाष्य में—"नसिद्धेरपि सापेक्षत्वात्" "धर्मानुष्ठानापेक्षाहि सिद्धिः"। इत्यादि भाष्योंसे सिद्ध कर दिया है कि धर्मानुष्ठान करने से ही कपिल सिद्ध था। यहां अवतार का खंडन है।

अवतार विषय

कपिल अवतार

प्रश्न—कपिल अवतार का वर्णन वेद में है!

उत्तर—कपिल तो क्या किसी भी अवतार का वर्णन वेदों में नहीं है। यहांतक कि अवतार शब्द तक वेदों में नहीं है "दशानामेकं कपिलम्०" ऋ० १०। २७। १६ में आया है। इस मन्त्र में बताया है। कि दस किरणों में एक प्रकार की किरण "कपिल" है इसमें वेदप्रमाण—

१—"रश्मिभिर्दशाभिः।" ऋ० ६। ६१। २३

२—"दशस्वधाभिरधिसानो अव्ये मृजन्तित्वाद्यः सप्त पद्वी"। ऋ० ६। ६२। ४।

अर्थात्—दश किरणों से सात नदियां बहती हैं।

प्रश्न—"प्रकाव्य मुशनेव०" ऋ० ७। ४। २२। में "पदा-वराहो अभ्येतिरेमन्" वाक्य से वराह अवतार सिद्ध है?

उत्तर—इस मन्त्रका भाष्य कहते हुए सायणाचार्य कहते हैं। "यद्वा यथा कश्चन वराहः पदा पादेन भूमि विक्रमाणः शब्द करोति तद्वत्"।

अर्थात्—(यज्ञ पत्रा में शब्द करता हुआ सोम किस प्रकार आता है ?) जैसे कोई वराह=शूकर पैर से भूमि का आकलन करता हुआ शब्द करता है। (वैसे ही सोम शब्द करता है) इस ही मन्त्र के भाष्य में सायणाचार्य जी वराह के अर्थ इस प्रकार करते हैं—"वरञ्चतद्दहः वराहः=अच्छे दिन को वराह कहते हैं, कहिये पण्डित जी। इसमें वराह अवतार कहांसे निकल आया ?

प्रश्न—"यदभूत योनि परि पश्यन्ति धीराः" मुण्डक ।१ ६

अर्थात्—अज्ञानियों को उसका जन्म नहीं विदित होगा ?

उत्तर—स्वा० शङ्कराचार्य जी इसका भाष्य करते हुए लिखते हैं कि—"भूतयोनिः=भूतानां कारणम्। कहिये शंकर जी तो अर्थ करें—'भूतयोनिः के "भूतों के कारण" और आप अवतार की रट लगायें ! ऐसा अन्धेर !!! देखिये आपके महीधर क्या कहते हैं—?

"धीराः ब्रह्म विदस्तस्यप्रजायतेः योनिं स्थानं स्वरूपं परि पश्यन्ति"—धीर ब्रह्मविद् उस प्रजापति की योनि—स्वरूप को जानते हैं—(मैं ब्रह्म हूं ऐसा जानते हैं)

ठीक है —जो अपनों की नहीं मानता वह अन्यों की कैसे मानेगा ? देखिये। आप तो श्री रामानुजाचार्य की भी नहीं मानते ? पृष्ठ १३३७ पर श्री भाष्य में वे क्या लिखते हैं ?—

इस लिये जगत्का निमित्त कारण और उपादान कारण ब्रह्म है जिसलिये उसको योनी कहा गया है।

प्रश्न—"स्त्वंस्त्री त्वं पुमान्" इसमें तो पुराणोक्त सारे ही अवतार हैं।

उत्तर—यह मन्त्र श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी आया है। देखिये—शंकर स्वामी अंशाधिकरण के प्रथम सूत्र के भाष्य में क्या कहते हैं—"दाशाय एते कैवर्त्ता प्रसिद्धाः येचाभिदासाः स्वामिन्यात्मा समर्पयन्ति ये चान्ये कितवा धूत कृतास्ते सर्वे ब्रह्मैवेति।"

अर्थात्—दाश वे हैं 'जो कैवर्त्त'—(मछली पकड़ने वाले हैं) प्रसिद्ध हैं, और दास वे हैं जो अपने स्वामी को अपना शरीर देदेते हैं और जो कितव जुआरी हैं ये सब ब्रह्मही है। वह ब्रह्म प्रक्रिया यह मानी गई है कि—'स्त्वंस्त्री त्वं पुमान्' आशय यह है कि—सारे जीव मात्र जो इन्द्रियों के संघात—देह में प्रविष्ट है, ब्रह्म ही है।

कहिये जब सबही जीव ब्रह्म हैं तो अवतारवाद कैसा?

प्रश्न—अग्निमूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ०—उस विराट का अग्नि मूर्द्धा है और चन्द्रसूर्य नेत्र हैं, तो वह निराकार कैसे?

उत्तर—अदृश्याधिकरण में शङ्करस्वामी स्वयं इसका यह उत्तर देते हैं—

"सर्वात्मत्व विवक्षयेदमुच्यते, नतुविग्रहवत्य विवक्षयेत्यदोषः"-ऐसा सर्वात्मा होने से कहा गया है साकार के अभिप्राय से नहीं, इसलिये (ऐसा कहने में) कोई दोष नहीं।

प्रश्न– भवानी का अवतार तो शंकर भी मानते हैं ?

उत्तर—कदापि नहीं। देखिये भवानी के अर्थ स्वा० शंकरजी क्या मानते हैं ?—"अतः परस्मिन्नद्वितीये ब्रह्मणि भवान्यास्तदबोध कारणं घटते । अतो विद्याशब्दवाच्या भवन्ति तदुपासनेन चित्तशुद्धौ जातायां लिङ्ग शरीर भङ्गर्दिवारा मोक्षः"

अर्थः—अद्वितीय ब्रह्म में भवानी उसके बोध का कारण हो सकती है, इससे सिद्ध हुआ कि विद्या को भवानी कहते हैं और उस विद्या की उपासना से चित्त शुद्ध होने पर लिङ्ग शरीर के भङ्ग होने में मुक्ति होती है। (कहिये ! मोहनी भवानी कहां है ?)

प्रश्न—नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसेच । यजु० १६।३० ।

इस मंत्र में नाना प्रकार के अवतारों का वर्णन है ?

उत्तर—यह नमस्ते अध्याय कहाता है। इसमें "नमः श्वभ्यः श्वपति भ्यश्च"—इसमें कुत्ते और कुत्तों के स्वामियों को भी नमस्कार वर्णन किया है। तो क्या कोई कुत्ते का और कुत्तों के स्वामी का भी अवतार विष्णु जी ने लिया है ?

इस अध्याय में तो कुलाल, निषाद, रथकार और अन्यान्य निषिद्ध जीवों को भी नमस्कार किया है क्या ये सब ही अवतार हैं ?

प्रश्न—आप वैदिक लोग कृष्ण के पूर्ण अवतार को क्यों नहीं मानते ?

उत्तर—"पूर्णावतार' के दो अथ हो सकते हैं—

१—पूर्णस्यावतारः—पूर्णावतारः । —पूर्ण का अवतार, अथवा—२-पूर्ण एव अवतारः—पूर्णावतारः ।—पूर्ण ही अवतार परन्तु शास्त्र दृष्टि से ये दोनों ही प्रकार के अवतार नहीं हो सकते। क्या—कृत्स्न प्रसक्ति निरवयवत्व शब्द को वा । वेदान्त २ ।१। २ आशय इस सूत्र का यह है कि—यदि सारा ब्रह्म एक में आगया तो शेष ब्रह्म न रहा । यदि आधा वा कुछ अंश आया तो निरवयव विधायक शास्त्र व्यर्थ होगा इसलिये दोनों प्रकारका अवतार होना असंभव है । फिर "ममैवांशो जीवलोक जीवभूतः सनातनः" । और "अंशोनानाव्यपदेशात्" इत्यादि गीता वचनों से तो सारे जीव मात्र ही अवतार ठहरते हैं फिर रामकृष्णादि में विशेषता क्या रही ?

प्रश्न—गीता को तो आप भी मानते हैं । फिर आपके मत में 'अंश' शब्द के अर्थ क्या होगें ?

उत्तर—हमारे सिद्धान्त में तो अंशके अर्थ जीव के ही हैं । ये सारे जीव ब्रह्ममें रहते हैं, ज्ञान स्वरूप हैं, चेतन हैं, निराकार हैं और नित्य हैं । अतः बहुत अंशों में ब्रह्म और जीवमें साम्य होने से यह जीव भी ब्रह्मांश कहा गया है ।

प्रश्न—ईश्वर के अनन्त गुण हैं—वह साकार और निराकार दोनों हैं ।

उत्तर—यह सिद्धान्त शास्त्र-विरुद्ध है । क्योंकि—"न स्थान तोऽपस्योभयलिङ्ग सर्वत्रहि" । वेदान्त ३ ।२।११ । अर्थात्—किसी

ध्यान में प्राप्त होने से परमात्मा साकार निराकार दो विरुद्ध धर्म वाला नहीं हो सकता।

ईश्वर का लक्षण---

क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरा मृष्टः पुरुष विशय ईश्वर: अर्थात्—क्लेश, कर्म, कर्मों के फल, जन्म मरण के संस्कार से पृथक् पुरुष विशेष ईश्वर है।

इस ऋषि वाक्य के अनुसार ईश्वर में कर्म और उसके फलभोग का अत्यन्त भाव है। परन्तु रामकृष्णादि, पुराण कथित अवतारों में, ये सारे ही गुण देखे जाते हैं--यथा-महाराज रामचन्द्रजी स्वयं ही वर्णन करते हैं।

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि।
तत्रायमद्या पतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि॥
राज्यः प्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननि वियोगः।
सर्वाणि मे लक्ष्मण! शोकवेग मापूरयन्ति प्रविचिन्तनानि॥

आरण्य कांड। ४। ५।

किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि।
येन मे धार्मिको भ्राता निहितश्चाग्रतः स्थितः॥

युद्धकांड। १०१।

श्रीरामचन्द्र जी कह रहे हैं कि हे लक्ष्मण! मैंने पूर्वजन्म में अवश्य ही कोई ऐसे खोटे कर्म किये में जिनका फल यह भोग रहा हूं कि दुःख पर दुःख आकर पड़ रहे हैं—राज्य नष्ट हुआ, स्वजनों से वियोग, पिता का मरण, और माता का भी वियोग

हुआ इन सारी बातों से शोक और चिन्ता से मैं युक्त हूं। फिर लक्ष्मण जी के मूछित होने पर कहते हैं कि—

मैंने कौन से ऐसे दुष्कर्म किये हैं जिससे मेरा धर्मात्मा भाई मेरे सामने मरा पड़ा है। इससे सिद्ध है कि परमेश्वर अवतार नहीं लेता। श्री कृष्णजी के पूर्व जन्म—

१—बहुनि मे व्यतीतानि जन्मानि तवचार्जुन। गीता

२—सक्रुद्धं केशवं दृष्ट्वा पूर्वदेहेषु फालगुन! कीर्तयामास कर्माणि स्वयकीर्ते महात्मनः॥ दशवर्षसहस्राण्यं यत्र साधंगृहेमुनिः व्यचरस्त्वं पुरा कृष्ण! पवते गन्धमादने॥ महाभारत वनप०१२

प्रश्न—कृष्ण अयोनिज थे, वह गर्भसे उत्पन्न ही नहीं हुए?

उत्तर—झूठ और कोरा झूट। देखो भागवत् स्कन्ध १—

१—वासुदेवस्य देवक्यां जातो यस्य चिकीर्षया।

२—वासुदेवस्य देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत्। ६।

३—दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमान्।

श्री रामचन्द्र जी अपने को मनुष्य कहते हैं।

१—देवसंवादितो दोषो मानुष्येण मयाजितः। वाल्मीकीय रामायण युद्धकाण्ड ११७।५।

२—यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां प्रतिमार्जता। यत्कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकांक्षिणा॥ वा०रा० युद्ध काण्ड सर्ग ११७श्लोक१७

३—आत्मानं मानुषंमन्ये रामं दरशथात्मजम्। सोहं यश्चयतश्चाहं भगवांस्तद्ब्रिवीत मे। वारा० युद्ध काण्ड स० ११६।१७

वेदों में राम कृष्णादि शब्द जहां आये हैं उनके क्या अर्थ हैं

कृष्ण शब्द-

१—कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नयेत्वा यजु० २ । १ ।

कृष्णोसि । हे इध्म ! त्वं कृष्णोसि कृष्णमृगरूपोयज्ञोऽसि । हे इध्म-इन्धन तू काली है । तू कृष्ण मृग रूप यज्ञ है । महीधर । भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्मरूप और हवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त—स्वामी दयानन्द ।

२—प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायाररायो मेषो यमाय कृष्णो । यजु० २४ । ३० ।

महीधरार्थः—

"एकः कृष्णो मेषः यमाय"-एक काला मेढा यमके लिये । काला हिरण मनुष्यों के राजा के लिये । दयानन्दः ।

३—एएयह्वो मण्डूको मूषिका तित्तिरस्ते सर्पाणां लोपाश अश्विनः कृष्णी रात्र्या० । यजु० २४ । ३६ ।

कृष्णोमृगः रात्र्यै । कालामृग रात्रि के लिये । महीधरः । काले रङ्ग के हरिण आदि हैं वह रात्रि के लिये । दयानन्दः ।

४—प्राथदश्वो न यवसे···व्रजनं कृष्णमस्ति । यजु० १५ । ६२ ।

अग्नेः व्रजनं व्रजत्यनेति व्रजनं गमनस्थानं कृष्णमस्ति । जहां पर जाये उसको व्रज कहते हैं । अग्नि का मार्ग कृष्ण है । जहां को अग्नि निकल कर जाती है वह स्थान काला पड़ जाता है । "कृष्णं त्वेमरुषतः" ऋ० ४ । ७ । ६ । १ में भी है । चलने वाला तथा आकर्षण वाला । दयानन्दः ।

५—अग्नेय पीवानं पृथिव्यै···कृष्णं पिङ्गलाक्षम्। यजु० ३० । २१ ।

रात्र्यै कृष्ण वर्णं पिङ्गलाक्षम्-रात्रिके लिये काला वर्णवाला पीले नेत्र वाला । महीधरः ।

कालेरंगवाले पीलेनेत्रों से युक्त पुरुष को दूर कीजिये । दयानन्दः

६—तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे···कृष्णमत्यद्धरितः सम्भरन्ति । यजु० ३३ । ३८ ।

अन्यत् कृष्णं द्वैत लक्षणं रूपं हरितः दिशः । सूर्यका दूसरा गुण काला है महीधरः । अविद्यादि मलीन गुण वाले भिन्न जगत् को । दयानन्दः ।

७-शार्ददृभिरक्वाभिः···कृष्णाय स्वाहा । यजु० २५ ।१

शुक्लेन कृष्णेनचा श्वङ्गेन प्रजापति प्रीणानि । महीधरः । श्वेत और कृष्ण घोड़े से प्रजापति को प्रसन्न करता हूं । कृष्णाय-विद्या खींचने के लिये । दयानन्दः ।

८-आकृष्णेनरजसा०···यजु० । ३३ । ४३ ।

रात्रिलक्षणेन सह—रात्रि के लक्षण के साथ । महीधरः । आकर्षण से परस्पर सम्बन्ध । दयानन्दः ।

९—हिरण्यपाणिः सविता···कृष्णेनरजसा । यजु० ३४ । २५

कृष्णेनरजसा अन्धकार लक्षणेन-अन्धकार के लक्षण-सहित । महीधरः । काले अन्धकार रूप से । दयानन्दः

१०—अश्वरातूपरो···कृष्णग्रीवः···श्वेतश्च कृष्णश्च । यजुः २४ । १

"कृष्णग्रीव' काली गर्दन वाला । "—"श्वेतश्च कृष्णश्च" श्वेत और काला है ।

११—खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः । २५ । ४०

एकः कृष्णः श्वा सारमेयः=एक काला कुत्ता महीधरः काले रंग का कुत्ता । यह दयानन्द जी अर्थ करते हैं ।

१२—आग्नेयः कृष्णग्रीवः । यजुः २६ । ५८

कृष्णग्रीवा यस्य स कृष्णग्रीवः पशुराग्नेयः । महीधरः । काली गर्दन वाला कृष्ण ग्रीव अग्नी सम्बन्धी प्रशु काले गर्दन वाला पशु । दयानन्दः कृत अर्थ ।

१३—आग्नेयः कृष्णोऽजः । यजुः २६ । ५६

कृष्णः श्यामोऽजो मेषः—काला बकरा । महीधरः । काला बकरा । दयानन्द जी के किये अर्थ ।

ऋग्वेद और कृष्ण

१४—अयं वा कृष्णो अश्विना इव ते वाजिनीवसू । मध्वः सोमस्य पीतये कृण्वस्य । ऋ० ८ । ८५ । ३

यहां पर "कृष्णः" के अर्थ—शत्रु को पीड़ा देने वाले के हैं । सायण भी अवतार अर्थ नहीं करता । देखो सायण भाष्य

१५—आते सुपर्णा अभिनन्त एवैः कृष्णो नोनाव वृषयभोदीदन् । ऋ० १ । १६१ । २

इस मन्त्र में 'कृष्णः' वृषभः का विशेषण है अर्थात् काला

बादल। यहांपर वृषभ के अर्थ बादल के हैं। सायण भी अवतार नहीं मानता।

१६—अयं चक्रमिवणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम्। आकृष्णाई जुहुराणो जिघर्तित्वचोबुध्ने रजसो अस्य योनौ। ऋ० ४। १७। १४

यहां पर भी "कृष्णः" काले बादलके वा सूर्य के अर्थ हैं। कोई भष्यकार कृष्णवतार नहीं मानते। नविदेशी न स्वदेशी।

१७—अव द्रप्सो अंशुमती मतिष्ठमति ष्ठ दियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः। ऋ०। ८। ९६। १३।

इस मन्त्र में 'कृष्णः' के अर्थ हैं प्रजा को पीड़ा देने वाला राजा। सायणादि सब ही स्वदेशी और विदेशी अवतार अर्थ नहीं करते।

१८—यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिप्पीलः सर्प उत वा श्वापदः। ऋ० १०। १६। ६।

यहांपर 'कृष्णः' 'शकुनः' पक्षी का विशेषण हैं अर्थात काला शकुन पक्षी। यहांपर भी अवतार वाद कोई नहीं मानता। देखो सायण।

१९—कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न क्रज उत शोणो यशस्वान्। हिरण्यरूपं जनिता जनान।

ऋ० १०। २।

इस स्थल पर परमात्मा के नियमों के दो विशेषण हैं—

कृष्णः=दुष्टों को पीड़ित करने वाला और 'श्वेतः'=दयायुक्त निर्दोष, निर्मल।

२०—कृष्णंत एमरुषदूर्मे अजर। ऋ० १। ५८।

यहाँपर 'एमन्'का विशेषण "कृष्ण" है अर्थात् काला मार्ग

२१—कृष्णं च वर्णमरुणं च संधुः। ऋ० १। ७३। ७

यहांपर क्रमशः रात्रि और उषाके विशेषण "कृष्ण" और अरुण शब्द है।

२२—प्रत्यर्ची रुषदस्यामदर्शि वितिष्ठते बाधते कृष्ण मभ्वम्। ऋ० १। ९२। ५।

यहां पर उषा की प्रशंसा है कि अपने प्रकाश से "कृष्ण" अन्धकार को नष्ट करती है।

२३—मनन्तमन्यु द्रुशदस्य याजः कृष्णमन्यु दुरितः सम्भरन्ति। ऋ० १। ११५। ५।

यहां पर "याजः" परमात्मा बल का विशेषण 'कृष्ण' अर्थात् आकर्षण करने वाला है।

२४—आदस्यतेध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वयः करिक्रतः ऋ० १। १४०। ५।

यहां पर भी कृष्ण 'अभ्वम्' का विशेषण है अवतार नहीं

२५—कृष्णं निपानं हरयः सुपर्णा अपोवसाना दिवमुत्पतन्ति। ऋ० १। १६४। ४७

यहां पर भी निपानं का विशेषण कृष्ण है।

२६—नाना चक्राते यम्या३वर्ं षि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ऋ० ४ । ५५ । ११ ।

यहाँपर रात्री के अन्धकार को कृष्ण कहा है।

२७—कृष्णं तएमरुशतः । ऋ० ४ । ७ । ६ ।

यहां पर अग्नि के मार्ग को 'कृष्ण' काला बताया है।

२८—अहश्च कृष्ण महरर्जुनंच विवर्त्तेते रजसी वेद्याभि ऋ० ६ । ६ । १ ।

इस मन्त्र में काला दिन अर्थात् रात्रि के अर्थ में कृष्ण शब्द है।

२९—आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध्रस्मते नृजनं कृष्ण मस्ति ऋ० ७ । ३ । २ ।

यहां पर राजा के 'नृजनम्'—गमन का विशेषण कृष्ण-आकर्षणशील बताया है।

३०—नमोन कृष्ण भवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ । ऋ० ८ । ६६ । १४ ।

यहां पर प्रजा के पीड़ा देनेवाले को 'कृष्णम्' कहा है।

३१—उपमा पेषिशत्तमः कृष्णं व्यक्त मस्थितः उषःखेव यातय । ऋ० १० । १२७ । ७ ।

यहां भी कृष्ण के अर्थ काले अन्धकार हैं।

३२—शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्वः सोमस्य पातते । ऋ० ८ । ८५ । ४ ।

अर्थात्—संशय को उच्छेदन करने वाले उपदेश को सुनो।

राम शब्द—

१—सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवे राम विन्दन्। ऋ० १०। १११। ७।

यहांपर बताया है कि उषा अन्धकार को दूर करती है।

२—भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येतियश्चात् प्रकेतैर्बुभिरग्नि र्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्। ऋ० १०। ३। ३।

यहां पर भी राम के अर्थ अन्धकार के हैं। देखो सायणादिभाष्य।

यथार्थः—जिस प्रकार (जारः) रात्रि काल का जारण अर्थात विनाश करता हुआ सूर्य (स्वसारं श्वात् अभि एति) अपनी भगनी के तुल्य अथवा अन्धकार को हरने वाली उषा के पीछे २ आता है। और स्वयं (भद्रः) सुखकारी होकर (भद्रया सचमान आगत्) सुखदायनी उषा वा कान्ति के साथ आता है और वह (उषद्भिः वर्णैः) उज्वल रश्मियों से (रामम् अभि अस्थात्) रात्रि के अन्धकार को दूर भगाता है।

३—प्रतद्दुःशीमेपृथवाने वेने प्रराम वोचमसुरे मघवत्सु ऋ०। १०। ९३। १४।

यहां पर भी असुर अर्थात् अन्धकार का नाम राम है।

राम्या

४—सइधान उषसो राम्या अनु स्वर्ण कृधि 'स्वर्ण शुक्रमुषसो विदिद्युतः । ऋ० २ । ३ । ८ ।

इस मन्त्र में 'रामा' रात्रिके अर्थ में है। 'राम्या' षष्ठी का एक वचन है अर्थात् रात्रि के।

५—अहन्व्यं सप्तशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् । ऋ० ३ । ३४ । ३ ।

यहां पर भी 'राम्याणाम्' रात्रि के अर्थ में है।

६—होतामन्द्रो विशांदभूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् । ऋ० ७ । ६ । २ ।

यहां पर राम्याणाम् रमण करने के योग्य के हैं।

७—ताभानुनारुशता राम्या स्वञ्चायिरस्तमसश्चिदूर्वान् । ऋ० ६ । ६५ । १

यहां 'राम्यासु' के अर्थ हैं रात्रियों में।

८—उषान रामीररुणै रयोर्णुते महोज्योतिषा शुचता वर्णसा । ऋ० २ । ३४ । १२ ।

यहां 'रामीः' के अर्थ हैं रात्रियों को।

उपरि लिखित मन्त्रों में किसी ने भी अवतार नहीं माना। भाष्य देख जाइये। परन्तु पण्डित लोग मानना नहीं छोड़ते

वराह शब्द

१—प्रकाव्य शुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति । महिव्रतः शुचि बन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् । ऋ० ६।३७।७ ।

२—अस्येदुमातुः सवनेषु सद्योमहःपितुं पपिवांचार्विन्ना । मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता । ऋ० १।६१।७ ॥

पहले मन्त्र में 'वराह' के अर्थ अच्छे वचनों के उपदेष्टा के हैं। इसके इतने विशेषण हैं—देवः, काव्यं प्रब्रुवाणः, मेधिरः शुचिबन्धुः, और पावकः। दूसरे मन्त्र में आये हुए 'वराहम' के अर्थ हैं—सूकर को। अर्थात् जिस प्रकार शिकारी सूअर को मार देता है उसके समान।

३—दिवोवराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषेरूपं नमसा निह्वयामहे । हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्मछर्दिरस्मभ्यंयंसत् ऋ० १ । ११४ । ५ ॥

यहां पर उत्तम आहार व्यवहार उपदेश करनेवाले के अर्थ बराह हैं। 'कपर्दिनम्'—ब्रह्मचारी का विशेषण है।

४—विश्वेत्ता विष्णु राभरदुरुक्रमस्त्वेषितः । शतं महिषान् क्षीर पाक मोदनं वराहमिन्द्रएमुषम् ॥ऋ० । ८ । ७७ । १० ॥

इस मन्त्र में 'बारह' के अर्थ अच्छे वचन के बोलने वाले के हैं। 'एमुषम्'—अच्छे वचन संग्रह करने वाले का विशेषण है। शतपथ भाष्यकार की सम्मति में 'एमुषवराहं' एक प्रकार का वायु है।

५—इदंसुमे जरितरा···वराहं निरतक्त कक्षात् ऋ० १० । २८ । ४ ॥

यहां पर वराह के अर्थ साधारण शूअर के हैं।

आशय यह है कि बलवान् आत्मा का निर्बल को इस प्रकार निकाल देता है जैसे निर्बल गीदड़ बलवान सूअर को भगा देता है।

६—सइद्दासं तुवीरवं···विया वराह मरो अग्रयाहन् ऋ० १०।९८।६।

यहां भी वराह के अर्थ सुअर के हैं।

७—वराहो वेद वीरुधं नकुलं वेद भेषजीम्। सर्वा यन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसेहुवे॥ अथर्व ८।७।२३

अर्थात्—सूकर नाना प्रकार की रोगहारी लताओं को जानता है आदि।

८—अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महपितुं पपिवां सुविन्ना। मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥ अथर्व—२०।३५।७।

अर्थात्—यह समस्त सृष्टि के कर्त्ता का ही महान् यश है कि वह अपने महान् सृष्टि उत्पत्ति आदि कार्यों में पालन करने योग्य समस्त संसार रूप सोम को उत्तम भोज्य अन्नों के समान निरन्तर खाता या लीलताही रहता है। वह व्यापक सब का बड़ा कर्ता परिपक्व कर्म वाले या पाक करने वाले, अपने आत्मा को साधन द्वारा पकानेवाले मुमुक्षु को अचानक ले जाता है और शासन रूप वज्र का फेंकने वाला वह परमेश्वर ही अपने पास आये (वराहम्) श्रेष्ठ ज्ञान से पूर्ण, स्तुति शील

आत्माको विद्ध करता है। अपने प्रेम वश करता है।

९—मन्वं बिभृति गुरुभृद् मद्रयायस्य निधनं तितिक्षुः। वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय ॥ अथर्व—१२। १। ४८।

अर्थ—मलयुक्त या कृपण या मूर्ख पुरुष को पालती पोसती हुई और भारी उपदेशप्रद आचार्यों को भी धारण करने वारी अथवा जैसे तुच्छ पदार्थों को उठाती है। वैसे ही भारी पर्वत आदि को भी धारण करती है। यह पृथ्वी भले अथवा बुरे देह-मुरदे को स्वयं सहन करती है वही (वराहेण संविदाना) मानो वराह शूकर से मन्त्रणा करती हुई (मृगाय सूकराय) जंगली जानवर सूअर के लिये भी अपने को उसके लिये त्याग देती है—अपने को भले-बुरे मूर्ख विद्वान सब के लिये अर्पण कर रही है।

१०—सई सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं विधनसैरदद ब्रह्मणस्पति वृषभिर्वराहै धर्म स्वेदेभिर्द्रविण व्यानट् ॥ अर्थव—२०। ९१। ७।

वह ज्ञानवान्, निष्ठयोगी बलवान् सत्योपदेष्टा अपने मित्र दीप्तिमान् तेजस्वी, ज्ञानधन के प्रदान करने वाले गुरुओं से जिस प्रकार शिष्य, ज्ञान-वाणियों को रोक रखने वाले अज्ञान को नाश करता है उसी प्रकार वह योगी भी बलवान सत्यवान् मित्र के समान सदा साथ विद्यमान्, अनुकूल गति वाले, देह को शोधन करने वाले, मलदायक, बलसौर प्राणप्रद प्राणों के बल

उस प्रकाश को रोकने वाले अज्ञान आवरण को विशेषरूप से नष्ट करता है, और पसीना बहाने वाले बलवान् या आनन्द वर्षक सुआहृत, उत्तम रूप से वशीकृत अति द्रुतगति वाले मन को भी विशेष रूप से वश करता है। (यह मन्त्र ऋ० १०। ६७। ७ में भी है।)

वामन शब्द

१—अश्वस्तुपरो गोमृगस्ते·····वेहद्वैष्णवोवामन यजु० २४। १॥

विष्णु देवता के लिये वामन—बौनापशु। महीधरः। विष्णु देवता और बौना नाटे शरीर से कुछ टेढ़े अङ्ग वाला पशु। दयानन्द भाष्य।

२—उन्नतः ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रा वैष्णवा०। यजु० २४। ७।

उन्नतः उच्चः ऋषभः पुष्टः वामनः बहुन्यपि वयसि गते बुद्धिरहितः।—ऊंचा बैल पुष्ट बौना अधिक आयु हो जाने पर भी नहीं बढ़ता। महीधरः।

ऊंचा और श्रेष्ठ टेढ़े अङ्ग वाला। दयानन्द कृत भाष्य।

३—उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदेवामनम्। यजु० ३०।१०

उत्सादेभ्य कुब्जं वक्राङ्गम् प्रमुदे वामनं ह्रस्वाङ्गम्। उत्साद देवता के लिये कुबड़ा प्रमुद देवता के लिये बौने को। (बलि चढ़ावे) महीधरः।

नाश करने को प्रवृत्त हुए कुबड़े को, प्रबल कामादि के आनन्द के लिये छोटे मनुष्य को। (उत्सन्न कीजिये)।

४—एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्निषोमीया वामनः। यजु० २४। ८।

अर्थात्—वामना अनड्वाहः—वामन बौना बैल सम्बन्धी हैं। महीधरः। टेढे अङ्गों वाले व नाटे बैल हैं वे। दयानन्द कृतार्थ।

५—नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमः। यजु० १६।३०

वामनाय=प्रशंसित ज्ञानी के लिये सत्कार हो।

इसी प्रकार "कश्यप" शब्द भी ऋ० ६। ११४। २। यजु० २४। ३७। में "कश्यप" यजु० ६। ६२। में अथर्व—कश्यप ८। ६। ७ में, १३। ३। १० में, १४। २७। १।, ८। ५। १४, १८। ३। १५।, १६। ५३। १०। कश्यप—४। २६। ३। कश्यप कश्यपस्य १। १४। ४।, २। ३३। ७।, ४। २०। ७।, १७। १। २७-२।, ३०। ६६। २३। और "कश्यपस्यः"—१३। १। २३। में विद्यमान है।

सामवेद में—"कश्यपस्य" शब्द पू० १। ४। १०। में पू० ४। ३। २ में आया है। परन्तु किसी भाष्यकार ने अवतार नहीं माना है।

पौराणिक पण्डितों में यह अज्ञान फैल रहा है कि जहाँ उन्होंने राम, कृष्ण, बराह, वामन, कपिल, सिंह, गणेश और इस ही प्रकार के शब्द, जिनको यह अवतार सिद्ध करना चाहते हैं, देखे तो वहीं पर अकड़ गये, और लगे बक्कारने कि—लो यह अवतार सिद्ध करने वाला मन्त्र वेद में विद्यमान है। उनको इस बात की किंचित परवाह नहीं कि इन शब्दों के अर्थ, हमसे

पुराने टीका और भाष्य कारों ने, क्या किये हैं ? न इनको परमेश्वर का भय है न लोक का। न इनको वेदों के पाठ बदलने में पाप प्रतीत होता है न अर्थ बदलने में।

निरुक्त और अवतार--

१—'राम' शब्द निरुक्त १२। १३ में आया है जिसका आशय यह है—निरुक्तकार पृथ्वी पर अन्धेरा कैसे होता है यह बताते हैं।

"विश्वारूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। विनाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनुप्रयाण मुषसो विराजति। ऋ० ५।८१। २। इस पर निरुक्त—

"सर्वाणि प्रज्ञानि प्रति मुंचे। मेधावी कविः क्रान्त दर्शनो भवति, कवतेर्वा प्रसुवति भद्रं द्विपाद्भ्यश्च चतुष्पाद् भ्यश्च व्यचिख्य पन्नाकं सविता वरणीय, प्रयाण मनुष्सो विराजीत। नघोरामः सावित्र इति पशुसमाम्नाये विज्ञायते। कस्मात् सामान्यादित्यधस्तात्तद् वेलायां तमो भवत्ये तस्मात्सामान्यादधस्ताद रामोऽधस्तात् कृष्णः कस्मात् सामान्यादित्यग्नि चित्वा न राममुपेयात्। रामा रमयाणोपेते न धर्माय कृष्ण जातीय तस्मात्सामान्यात्। कस्मात्सामान्यादिति कालानुवादं परीत्या कृकवाकोः पूर्वं शब्दानुकरणं वचेरुत्तरम्। भगोव्याख्यातः। तस्य कालः प्रागुत्सर्यणात्। तस्यैषा भवति। १२। १३॥

भावार्थः—कवि (सर्वज्ञ, सविता) सारे रूपों को पहनता है, दोपाओं वाले (मनुष्यादि) और चारपाओं वाले (पशुओं)

के लिये (फिरने चरने आदि विषय में) कल्याण की अनुज्ञा देता है, स्वीकार करने योग्य सविता द्यौ को प्रकाशित करता है उषा की चढ़ाई के पीछे प्रकाशता है। ५। ८१। २।

सारे प्रकाशों को पहनता है। कवि=मेधावाल्य, पहुंचे हुए दर्शनवाला (सर्वज्ञ) अर्थ वा (गत्यर्थक) 'कवति से है (सदा चलता है) प्रेरता है कल्याण, दोपाओं वाले और चार पाओं वालों के लिये प्रकाशित करता है द्यौको, सविता स्वीकार करने योग्य। उषाकी चढ़ाई के पीछे चमकता है (द्यौको प्रकाशित करता है और उषा के पीछे प्रकाशता है, कहने से सविता का काल कहा, उसको ब्राह्मण वाक्य से समर्थन करता हुआ कहता है) नीचेसे काला (पशु) सविता का होता है, ऐसा सामान्य में जाना जाता है। किस सामान्य से (नीचे से काला पशु सविता का होता है, इसलिये कि) नीचे (पृथिवी पर) उस सविता के) काल में अंधेरा होता है, इस सामान्य से (अर्थात् राम रमण से होना चाहिये, इसका अर्थ काला किस समानता से ?) अग्निचयन करके रामा (शूद्रा) को न विवाहे, रामारमण के लिए विवाही जाती है नकि धर्म के लिये, वह कौन ? काली जाति की स्त्री (नकि आर्य स्त्री)। इस समानता से (राम काले का नाम है)। कृकवाकु (कुक्कड़) सावित्र (सविता का) होता है, यह पशु समाम्नाय में जाना जाता है, किस समानता से ? काल के कथन को जान कर (अर्थात् वह सविता का काल बतलाता है) कृकवाकु का पहला भाग (कृक) उसके शब्द का अनुकरण है, वच् (अ० य०) का उत्तर भाग है (कृ, क,

शब्द कहता है) भाग व्याख्या किया गया है (३ । १६) में, उस का काल है निकलने से पहिले (सविता के पीछे) उसकी यह है ।

प्रश्न—रामचन्द्र जी और परशुराम जी आदि अवतार भी थे परन्तु एक दूसरे को किसी का पता नहीं कि यह अवतार है ? क्या सर्वज्ञ ईश्वर का अवतार होकर भी इतना अज्ञान ? कहिये आपके पास इसका क्या उत्तर है ?

उत्तर—परशुराम जी क्षत्रियों को दण्ड देने के लिये अवतरित हुए थे और रामचन्द्र जी रावण राक्षस को मारने के लिये ।

प्रश्न—क्या २१ बार क्षत्रियों का बीज नाश कर देने से पाप दूर हो गया ? क्या यह कर्म कोई अच्छा काम था ? माता को मार डालना कोई पुण्य कार्य है ? किसी जाति में किसी एक के अपराध करने पर सारी जाति को नष्ट कर डालना क्या न्याय संगत है ? जब रावण के उत्पन्न करने के समय आवश्यकता नहीं पड़ी तो मारने के समय कैसे पड़ गई ? परन्तु मेरे प्रश्न का फिर भी उत्तर नहीं हुआ कि दोनों अवतार और दोनों एक दूसरे से अपरिचित ?

उत्तर—परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता का बध किया था ।

प्रश्न—क्या पिता की अनुचित आज्ञा भी माननी चाहिये ? यदि ठीक है तो, प्रहलाद ने अपने पिता की आज्ञा क्यों न मानी ? और पिता से तो माता का पद उच्च है ?

उत्तर—फिर माता के जिला देने का पर भी तो मांग लिया।

उत्तर—मरना और जीना प्राणियों के लिये अत्यन्त दुःख देने वाली व्याधियां हैं। यही दोनों दुःख दिये गये ?

उत्तर—मरने का तो अवश्य परशुराम की माता को दुःख हुआ होगा, परन्तु जीवित होने का दुःख कदापि नहीं हुआ होगा; क्योंकि गर्भवास से दुःख होता है; परंतु माता जी को तो गर्भ का दुःख भोगना नहीं पड़ा। वह तो वैसे ही जीवित कर दी गईं।

प्रश्न—सिर धड़ से पृथक् हो जाने पर, फिर किसी प्रकार से भी जीवित हो जाना असम्भव है, अतः यह कथा ही मूल से असत्य है। ऐसी निर्मूल कथाओं से कहीं अवतार सिद्ध होते हैं।

उत्तर—महाशय जी ! इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। जब से होश संभाला तब से यही कथायें कान में पड़ीं। इन्हीं को धर्म की कथायें समझा। इस प्रकार की छानबीन तो, आर्य-समाज के बनने पर अब हुई है। अच्छा यदि हम अवतार भी मानते रहें तो हानि ही क्या है ?

प्रश्न—अवतार मानने से भारतवासियों को जितनी हानि हुई है उतनी हानि किसी जाति को किसी घोर शत्रु के हाथ से भी नहीं हुई होगी। पहिली बात तो यह कि—जब कोई विधर्मी यह प्रश्न करता है कि तुम्हारी आर्य जाति में कौन २ से व्यक्ति

धर्मात्मा, बलवान्, गुणवान् और परमज्ञानी हुये हैं ? इसके उत्तर में जब कभी राम, कृष्ण, परशुराम, कपिल, व्यास, स्वा० शङ्कराचार्य आदि का नाम लेते हैं तो विपक्षि झट बोल उठता है कि वह तो ईश्वर के अवतार थे; किसी मनुष्यको बताओ कि वह ऐसे गुण वाला हुआ हो ? हम को लज्जित होना पड़ता है।

दूसरे यह कि मनुष्यों में दुर्बलतायें अवश्य रहा करती हैं। इसलिये विधर्मी लोग अवतारों की निर्बलतायें, यह कह कर पेश करते हैं कि देखो तुम्हारे ईश्वर में ऐसी निर्बलतायें हैं ? इधर वह हमारे अवतारों को ईश्वर मनवा कर ऐसी २ निर्बलतायें दिखाते हैं; उधर अपने, नितांत सदोष, कल्पित और मनुष्यता से भी गिरे हुये ईश्वरों को पेश करके आर्य जाति को भ्रष्ट करते रहते हैं।

दूसरे यह कि—जब विधर्मी यह समझ लेते हैं कि हिंदू लोगों के अन्दर कोई मर्यादा नहीं है—जिसकी इच्छा होती है वही अवतार बन बैठता है, चाहे वह आर्य हो वा अनार्य; हिंदू झट उसको ईश्वर जान कर उसके वेद विरुद्ध बचनों पर विश्वास करके पथ भ्रष्ट हो जाते हैं, तो बहुतसों ने अवतार बन कर हिंदू जाति को अत्यन्त हानि पहुंचाई। देखिये—सर आग़ाख़ां विष्णु के अवतार बने, मिर्ज़ा गुलामअहमद क़ादियानी कृष्ण के अवतार बने, पंजाब में खेड़े का साईं कृष्ण का अवतार बना और भी जो भी चलता-पुर्ज़ा हुआ उसने अवतार बन कर हिंदुओं को जाल में फंसाया।

ईसाइयों ने ईसा मसीह को ईश्वर का अवतार कह कर कितने हिंदुओं से उनका प्यारा धर्म छुड़वाया ? इस समय दक्षिण में एक :०: सिद्दीक़ी चिह्न विश्वेश्वर—विष्णु का अवतार

:०: इसका नाम दीनदार सिद्दीक़ी है।

अपने को कह कर वहां के हिंदुओं को गोभक्तक बना रहा है !!!

कहां तक कहा जाय जिस चलते-पुर्जे की इच्छा होती है वह अवतार बन जाता है और हिंदू लोग ऐसे भोले-भाले बने बैठे हैं बिना सोचे-समझे उसको ईश्वर का अवतार मान लेते हैं।

हिंदू मुख से तो यह कहते हैं कि—अवतार धर्म की स्थापना और पाप को नष्ट करने के लिये होता है, परंतु यह कभी नहीं सोचा कि—इन कलियुगी अवतारों ने कौनसा धर्म फैलाया और पाप का क्या नाश किया ? क्या वैदिक धर्म को छुड़ा कर म्लेच्छ बना देना ही धर्म की स्थापना है ? गोरक्षक से गोभक्तक बना देना ही धर्म की स्थापना है ? क्या शिखासूत्र का त्याग कर देना ही धर्म की स्थपना है ? क्या संध्या और यज्ञादि कर्म छुड़ा कर पथ भ्रष्ट कर देना ही धर्म की स्थापन है ? क्या अपने को कृष्ण का अवतार बता कर निर्दोष कुमारी, विधवा और सधवाओं के धर्म नष्ट करना ही धर्म की स्थापना है ? यदि इस ही का अवतार और धर्म स्थापना है तो भारत वर्ष को ऐसे अवतारों की कभी भी आवश्यकता नहीं।

हिंदुओं की बुद्धि का एक और नमूना देखिये— इसे तो यह रट लगाते हैं कि—धर्म की स्थापना के लिये अवतार हुआ करते हैं। परन्तु जब यह पूछा जाता है कि यह बुद्ध अवतार काहे के लिये हुआ है तो बगलें झांकने लगते हैं। इन भले आदमियों स पूछें कि जिस बुद्ध ने नास्तिकता फैलाई, वैदिक धर्म का लोप किया, क्या वह भी अवतार हो सकता है ?

कृष्णावतार की सिद्धि यहत्र मन्त्र है—

प्रश्न—यः कृष्णः केश्यसुरः स्तम्बज उततुण्डिक

अरायानस्यामुष्काभ्यां भंससो अपहन्मसि ।

अथर्व कां० ८ सू० ६ मं० ५ ॥

उत्तर—इस मंत्र का सायणकृत अर्थ—"सीमन्तोन्नयन कर्मणि अनेन अर्थ सूक्तेन श्वेत पीत सर्षयान् संपात्याऽभिमन्त्र्य गर्भिराया बन्धनीयात्"। मन्त्रार्थः—

यः प्रसिद्धः कृष्णः कृष्णवर्णः केशी केशवान् प्रकृष्टकेशः एतन्नाम्ना असुरः तथा स्तम्बजः स्तम्बेजातः असुरः उतअपिच तुण्डिकः तुण्डं मुखं कुत्सित मुखः एतन्नामा असुरः। एतत्सर्वं अराया दुर्भगास्तान् आयान् अस्यागर्भिण्या मुष्काभ्याम स्त्रीणामपि मुष्कमस्ति "व्यक्तंपुंसोनतु स्त्रियाः" इति स्मरणात्। मुष्काख्य प्रदेशाभ्यां तत्रापि भंससः कटि सन्धि प्रदेशात अपहन्मसि अपहन्मः।

अर्थात्—इस अर्थ सूक्त से श्वेत और पीली सरसों, सीमन्तोन्नयन संस्कार में, मिला कर गर्भवती के बांध दे।

मन्त्रार्थ—जो प्रसिद्ध काले रंग वाला, बालोंवाला, प्रकृष्ट-केश नामक असुर है तथा स्तम्ब में उत्पन्न हुआ असुर है और जो निन्दित मुख वाला, तण्डिक नाम वाला असुर है। ये सब ये दुर्भग (बदक़िस्मत) हैं। इन दुर्भगों को स्त्री के मुष्क कटिप्रदेश से भगाते हैं।

तृतीय अध्याय

मूर्तिपूजा निर्णय

प्रश्न—"मूर्ति शब्द के क्या अर्थ हैं।

उत्तर—मूर्ति के अर्थ शरीर के हैं। देखो अमरकोष।

१—कायो देहः बलीव पुंसो स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः।
पादाग्रं प्रपदं पादः पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम् ।।७१।

अमरकोष, मनुष्यवर्ग, २ कांड।

अर्थ—काय, देह, मूर्ति, तनु, तनू ये १२ नाम शरीर के हैं। (५ इस श्लोक में वर्णन किये ७ ७० वे श्लोक में हैं।)

२—कक्षान्तरेऽपि शुद्धान्तो नृपस्तासर्वगोचरे।
कासू सामर्थयोः शक्तिर्मूर्तिः काठिन्य काययोः।।६६

प्रेट अमरकोष कांड ३ नानावर्ग

अर्थ—शुद्धान्त यह एक (प्र०) नाम स्थान के भीतर की कक्षा राजधानी विशेष, रनवास और अशौच के अन्त का है। शक्ति यह एक (स्त्री०) नाम बर्च्छी का है, और सामर्थ्य का है। आगे के वार्ता शब्द तक सब (स्त्री०) हैं। मूर्ति यह एक नाम कठिन पने का और शरीर का है।

प्रश्न—"मूर्ति" शब्द के अथ हैं?

उत्तर—न्युब्जोभुग्ने रुजावृद्धः नाभौ तुन्दिल तुन्दिभौ ।
किलासी सिध्मलोऽन्ध्रोऽदृङ् मूर्छालेमूर्तमूर्छितौ ॥

अमरकोष २ कांड मनुष्य वर्ग श्लोक ६१

अर्थ—न्युब्ज नाम रोग करके अधोमुख हुए कुबड़े का है। वृद्ध नाभि, तुंदिल, तुंदिभ बात आदि से ऊंची हुई नाभि वाले के हैं। किलासिन् (इन्नन्त) ये दो नाम सीप रोगी के हैं। अंध अदृश् (शान्त) ये दो नाम अन्धे के हैं। मूर्च्छाल, मूर्त, मूर्च्छित ये तीन नाम मूर्छा वाले के हैं।

२—कर्कशं कठिनं क्रूरं कठोरं निष्ठुरं दृढम् ।
जठरं मूर्तिमन्मूर्तं प्रवृद्धं प्रौढ़मेधितम् ॥

अमरकोष कांड ३ विशेष्य निघ्न वर्ग श्लोक ७६

अर्थ—कर्कश, कठिन, क्रूर, कठोर निष्ठुर, दृढ़, जठर मूर्तिमत, मूर्त ये नौ नाम कठिन के हैं।

प्रश्न—यह मूर्ति शब्द लौकिक है वा वैदिक ?

उत्तर—यह मूर्ति शब्द लौकिक है वैदिक नहीं। वेदों में कहीं पर भी मूर्ति शब्द नहीं आया। वेद में प्रतिमा शब्द आता है।

प्रश्न—क्या ईश्वर की मूर्ति है।

उत्तर—नहीं। वेदों में ईश्वर को अकाय=निराकार कहा है।

प्रश्न—वेदों में मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा के मन्त्र विद्यमान हैं।

यथा-एह्यतूश्मान मातिष्ठा तूमा भवन्तु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥
अथर्व कां० २ सू१ १३ मन्त्र ४ ।

इस मन्त्र में ईश्वर से कहा गया है कि आओ इस पत्थर में विराजो। तुम्हारा शरीर पत्थर हो। देवता तुम्हारी आयु १०० वर्ष की करें।

उत्तर—भले मानुषों ! क्यों वेदों का अनर्थ करते हो ? न आपको वेदों के शब्दों के अर्थों का ज्ञान है, न आप उन अर्थों को मानते हैं जो तुम्हारे सनातनी पण्डितों ने कर रक्खे हैं। संसार की आँखों में धूल झोंकना आपही का काम है।

देखो आपही के घर के सायणाचार्य इसके क्या अर्थ करते हैं।

"हे माणवक ! एहि आगच्छ। अश्मानम् आरुह दक्षिणेन पादेक क्रम। ते तव तनूः शरीरम् अश्मा भवतु। अश्मवत् रोगादि विनिर्मुक्तं दृढं भवतु। विश्वे देवाश्च ते शत संवत्सर परिमितम् आयुः कृण्वन्तु कुर्वन्तु ॥

अर्थ—हे बालक। आ पत्थर पर बैठ। तेरा शरीर पत्थर अर्थात् पत्थर के तुल्य रोगादि रहित पुष्ट हो। सब देवता तेरी १०० वर्ष की आयु करें।

आशय यह है कि—यह सारा सूक्त गोदान कर्म में विनियुक्त है। ऐसा कौथुम शाखीय ७। ४। का प्रमाण सायण देते हैं कि—

जिस समय गोदान किया जाता है, बालक को पत्थर पर खड़ा किया जाता है, उस समय यह मन्त्र पढ़कर कहा जाता है कि "आ पत्थर पर हे ब्रह्मचारी ! बैठ ! तेरा शरीर पत्थर के समान नीरोग और दृढ़ हो, देवतागण तेरी सौ वर्ष की आयु करें।"

भला इससे मूर्त्ति पूजा का क्या सम्बन्ध ? क्या तुम्हारी मूर्तियों की आयु सौ वर्ष की ही है ? क्या तुम्हारा ईश्वर देवताओं के आशीर्वाद का मुहताज है ? क्या पहिले से उस पत्थर में परमात्मा विद्यमान नहीं था ? क्या मूर्त्तियां पत्थर की ही होती हैं पीतल आदि की नहीं ? आखिर आपका कोई सिद्धान्त भी है या नहीं है ? आप अपने किसी भाष्यकार को वेदज्ञ मानते हैं या नहीं। या सब ही के भाष्यों को चण्डू खाने की गप्प ही मानते हैं ? दुनिया में किसी के भी होकर रहोगे या नहीं ?

प्रश्न—मा असी । प्रमाअसि । प्रतिमा असि ॥
तैत्तिरीया रण्यक ४ । ५ ।

अर्थः—हे महावीर तुम ईश्वर की प्रतिमा हो।

उत्तर—देखो तुम्हारे सायणाचार्य हां क्या कहते हैं ?—

हे परिधे ! प्राग० प्रत्वेन दक्षिण दिग्वर्ती उदग्दिग्वर्त्ती वात्वम् (मा असि) महावीरस्थानं मातुमियत्ता परिच्छेत्तुं समोऽसि तथा हे परिधे ! उदगग्रत्वेन प्राग्दिग्वर्त्ती वात्वम् (प्रमाअसि) प्रकर्षेण मातुं समर्थोसि । इत्यादि ।

अर्थात—हे यज्ञ की वेदी की परिधि ! पूर्व दिशा में अग्र भाग होने से दक्षिण वा उत्तर वर्त्ती तू (मा असि) महावीर स्थान को मापने और "इतना है" यह परिच्छिन्नता बनाने को समर्थ है।

यज्ञ की प्रतिमा—"एतानी वाव सर्वाणि छन्दां
गायत्र त्रिष्टुभं जगतमन्वत्यान्येतानी हि यज्ञे प्रतिमानि
क्रियन्ते"।

ऐ० ब्रा० प्रथम पात्रिका खंड ३ अ० २ पृष्ठ ४३

अर्थात—गायत्री आदि छन्द आदि यज्ञ की प्रतिमा है

तथा हे परिधि! उत्तर को अग्र भाग होने से पूर्व
उत्तरवर्तीतू(प्रमा असि) अत्यन्त कर को मापने को समर्थ है

सायणाचार्य मा, प्रमा, प्रतिमा शब्दों का अर्थ नाप
का साधन (नपैना) करते हैं। सायणाचार्य कहते हैं
हेपरिधि! आप कहते हैं हे मड़ावीर! क्या संसार को
अन्धा ही समझ लिया है?

प्रश्न—कासोत्प्रमा प्रतिमा० ऋ० १०। १३०। ३ में
पूजा का विधान है—?

उत्तर—सिवाय संसार को धोखा देने के कुछ और
सीखा है? देखो आपके सायण क्या कहते हैं?—

प्रश्न—क्रियते-यद्यदा विश्वे सर्वे साध्या देवा देवं
पतिमयजन्त। तदानीं तस्य यज्ञस्य * प्रमा प्रमाणम् इयत्ता

---

* पृथिवी के छन्द को 'मा' कहते हैं, अन्तरिक्ष के
को प्रमा कहते हैं, द्यौके छन्द को प्रतिमा कहते है।
भाष्य पृ० २००। "माछन्दः तत् पृथिवी, अग्निर्देव
२-प्रथमाच्छन्दः तदन्तरीक्षम् वातो देवता। ३-प्रतिमा
तदधो। आप०। सू० १६। २८। १॥

कथं भूतासीत ? तथा प्रतिमा हविः प्रतियोगित्वेन मीयते निर्मीयते इति प्रतिमा देवता सा वा तस्ययज्ञस्य कासीत् ?

अर्थात्—इस ऋचा में प्रश्न किया गया है कि यज्ञ के साधन तब किस प्रकार हुए ? उस सृष्टि रूप यज्ञ की प्रमा परिमाण क्या था ? उसकी (यज्ञ की) "प्रतिमा" हविः स्थानी पदार्थ जो हवि के स्थान में प्रतिनिधि या वह क्या था ? इत्यादि ।

आशय यह है कि यदि जगत् रचना को एक यज्ञ मान लिया जाय तो इस यज्ञ की नपैना, परिधि और हवि आदि क्या होंगे ? यज्ञ वेदी की परिधि नापकर बनाई जाती है अतः एक प्रतिमा–नपैना होता है, उस ही के विषय में प्रश्न है कि इस सृष्टि रचना रूप यज्ञ की परिधि का नपैना क्या था ? आपका प्रतिमा शब्द देखते ही मूर्ति पूजा पर ध्यान जा दौड़ा। क्या सच्चा अर्थ न करने की सौगन्ध खाली है ? इस प्रकार की प्रार्थना अपने लिए भी आती है यथा—

"अश्मा भवतु नस्तनूः"=नो ऽस्माकं तनूः शरीरम् अश्मा पाषाणतुल्य दृढ़ा भवतु । यजु० २९ । ४९

भावार्थ—हमारा शरीर पत्थर के तुल्य दृढ़ हो

महीधरः ।

प्रश्न—सहस्रस्य प्रमाऽसि । सहस्रस्य प्रतिमा असि सहस्रोस्योन्मासि । सहस्रोसि सहस्रायत्वा ।यजु०१५ ।६५

हे अग्ने ! सहस्रस्येष्टकानां प्रभा प्रमाणं त्वमसि । सहस्रस्य

प्रतिमा प्रतिनिधिरसि । सहस्रोन्मानं तुलासि । महीधरः ।

भाषार्थ—हे अग्निदेव ! तू सहस्र ईंटों की प्रमा=प्रमाण है। सहस्र ईंटों की तू प्रतिनिधि है। इत्यादि। आशय यह है कि यज्ञ की अग्नि ईंटों का नपैना है। यहां मूर्ति पूजा के विधान की क्या चर्चा ? इस मन्त्र में महीधर हे अग्ने ! संबोधन करते हैं और ये पौराणिक पण्डित 'हे ईश्वर" ! ऐसा कहते हैं। कितना अनर्थ है ?

सम्वत्सरस्य प्रतिमा यांत्वां रात्र्युपास्महे । सान आयुष्मती प्रजा रायस्योषेण संसृज अथर्व ३ । १० । ३ ।

सत्यार्थः—हे रात्रि ! तू संवत्सर–वर्ष की प्रतिमा नपैना है तेरा सेवन हम करते हैं--भले प्रकार सोते हैं हमारी आयु को वृद्धिहो । प्रजा और धन प्राप्त हो।

देखो आपके सनातनी पं० अखिलानन्द जी क्या कहते हैं !

"रात्रिसूक्तम्—

संवत्सरस्य प्रतिमां यांत्वां रात्र्युपास्महे ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रास्योषेणसंसृज ॥

अथर्व ३ । ११ । ३

अर्थ—संवत्सर की प्रतिमारूप जिस रात्रिका सेवन करते हैं वह हमारे लिये प्रजा और धनदे । यहां पर प्रतिमाशब्द मापने के अर्थ में आया है । ३६० रात्रियों द्वारा वर्ष मापा जाता है"

अथर्वालोचन पृष्ट १५६ ।

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि यजु० १५६५

अर्थात्—तू सहस्र की प्रभा है, सहस्र की प्रतिमा है।

"सहस्र" किसको कहते हैं ?—

सर्वं वै सहस्रं सर्वस्य दातासि" । शतपथ ७।५।२।१३

अर्थात्—संपूर्ण जगत को 'सहस्र' कहते हैं। तुमही सारे जगत् के दाता हो। आशय यह है कि इस ब्रह्मदिन और ब्रह्म-रात्रि का नाम "सहस्र" है। सो हे परमात्मन्! आप इस सहस्र चतुर्युगी के दिन और रात्रि के प्रमाण अर्थात् निर्माण करने वाले हो। प्रभा और प्रतिमा नाम नपैने के हैं।

रात्री के समान पत्नी भी यही गुण रखती है।

ये संवत्सरे पर्यतेग्निऽमाधते प्रजापतिरेवैन माधत्ते द्वादशसु रात्रीषु पुरा संवत्सरस्यायेयात्तादि संवत्सरस्य प्रतिमा। गो० ब्रा० पूर्वभाग प्रपा० २। १५॥

इस मन्त्र में रात्रि को वर्ष का नपैना बताया है। मूर्तिपूजा का कोई सम्बन्ध नहीं। रात्रि का अभिमानी देव ईश्वर मानने में क्या प्रमाण है? जरा सायणाचार्य का किया हुआ अर्थ भी देखा होता।

प्रनश्—तन्मृदश्चाऽपांच महावीराः कृता भवन्ति। तस्मान् मूर्तिं निर्माणाय मृतपिंडं परि गृह्णाति। शतपथ १४। १। २६।

इसमें मिट्टी की महावीर की मूर्ति बनाना सिद्ध है।

उत्तर—पौराणिक भाईयो! थोड़े जीवन के लिये क्यों पाप की गठरी सिरपर रखते हो? यह मूर्तिपूजा ही आपसे ऐसे घोर

पाप करा रही है भला इससे अधिक पाप और क्या होगा कि आपने शतपथ में इतना पाठ अपनी ओर से और घुसेड़ दिया कि—"तस्मान्मूर्तिं निर्माणाय मृतपिण्डं परिगृह्णाति" 'यदि आप धर्मात्मा हैं तो यह पाठ शतपथ में दिखावे ? वर्ना ऐसी हरकतों से बचें। यही पाप सनातन नाम धारियों को डूबोदेगा। महावीर किसको कहते हैं ? सो सुनिये—तदेतदैव मिथुनंपद्

धर्मः ऐ ब्रा० सायण ११४।५।पृ० ८७। भाष्य-सयोधर्मःप्रवर्ग्य हविराश्रय भूता महावीराख्यो मृन्मय पात्र विशेषो योऽसावाहि तच्छिन्नं प्रजननेन्द्रिय रूपम् । अतः महावीर एक पात्र है नकि मूर्ति।

प्रश्न—देवयतनानि कम्पन्ते दवत प्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्त्युन्मीलन्ती निमीलन्ती इसहर सायण भाष्यदेखो—

वैष्णवान् अद्भुत विशेषे होमविशेषम् दर्शयितुं तदङ्गत्वेन परस्यादिवो निरीक्षणपूर्वक मावर्त्तनंदर्शयति। सपरं दिवमन्वावर्त्तेइति। स्वदृश्य माणादभुत विशेष निमित्तवान् अधिकारीप मुत्कृष्टां वैष्णवीं दिश मन्वीक्ष्य वर्तते। होमार्थं निमित्तानां दि वैष्णवत्वात इदानी तावन्नोमित विशेषान् दर्शयति। अथ पदा युक्तानि। अथ पुनरस्य पुरुषस्य यदा यानि अयुक्तानि अयोग्यानि खर महीषादीनि प्रवर्तन्ते स्वप्नावस्थायां तथा अगोचरे ता देवतायतनानि कंपन्ते तैनिमित्तैश्चलन्ति।

देवी उत्पात होनेपर विष्णु संबन्धी यज्ञ का विधान है जिस समय तारागण हैं सती, कांपती, रोतीहुई और कटती से

दीखपड़ें तब जानलें कि वायुमण्डल विकृत होगया है तब। विष्णु सम्बन्धी यज्ञ करें, क्या व्याहृत्या हुति देवें। ताण्ड्य ब्राह्मण को सामवेद कहना भी एक प्रकार का सर्व साधारण की आंखों में धूल झोंकना है। यह सब स्वप्न अवस्था का वर्णन भी है—यथा-"स्वप्नावस्थायां देवताश्च प्रतिमा हसन्ति,रुदन्ति,गायन्ति,नृत्यन्ति विदीर्यन्ते च उन्मीलन्ति नेत्रा नेत्रोन्मीलनं कुर्वन्ति"। सायणः।

प्रश्न—"महावीर यज्ञ का शिर है" ऐसा वेद कहता है। इससे मूर्ति पूजा सिद्ध है?

उत्तर—क्यों सरासर अनर्थ पर कमर बांधे बैठे हो? वेद में यह कहाँ लिखा है। हां महीधर शतपथ के अनुसार कहते हैं कि "महावीरो यज्ञस्य शिरः" * महावीर यज्ञ का सिर है। वही महीधर यजु० ३७। ६ में कहते हैंकि-घोड़े की लीद से महावीरों को धूप दो महावीर यज्ञ के पात्र का नाम है। यह महावीर-पात्र यज्ञपुरुष का सिर कहाता है जिसको यजु० वेद ने अध्याय३७। ३ ४, ५, में बताया है। वेद में महावीर शब्द नहीं, हां शतपथकार याज्ञवल्क ऐसा बताते हैं। आगे शतपथकार इस महावीर पात्र का इस प्रकार वर्णन भी करते हैं:—

तदाहुः। यद् वानस्पत्यैर्देवेभ्यो जुव्हत्यथ कस्मादेतन् मृन्मयेनैव जुहोतीति। शतपथ—१४।२।१।५३। पृष्ठ ६६२॥

---

*५ ३०। १५ क० पर निम्नकिथ—Heated for Praurgya: in which fresn miuk was poured into a heated uessel called mahavir ar, as this place gharna. P. 462.–महवीर पात्र है। धर्मभी यही है

अर्थात्—महावीर पात्र मही का क्यों बनावे ? काष्ठ के पात्रों से देवताओं का हवन किया करते है ? इसका उत्तर आगे देते हैं:-

यद्वानस्पत्यः स्यात् प्रदह्येत । यद्धिरण्य मयः स्यात् प्रलीयेत यल्लोहमयः स्यात् प्रसिच्येत । यदयस्मयः स्यात् प्रदह्येत तस्मादेनं मृन्मयेनैव जुहोति । शतपथ १४ । १ । ५४ ॥

अर्थात्—काष्ठ का महावीर बने तो जलने का भय, सुवर्ण का गल जावे, लोहे का चूजावे, अयोमय फूंकने लगे। इस लिये मही के महा वीर से होम करे। कात्यायन भी यही कहते हैं—

"यध्मानु द्धरत्यनवेत्वेति प्रतिमन्त्रम् । २६।१ । २५। पक्वानमहावीरानापाकादिवो द्धरति त्रिभि मन्त्रैरित्यर्थः । महीधरः ।

यहां भी महावीर पात्र को अग्नि में पकाना लिखा है। क्या ईश्वर भी पकाये जाते हैं।

प्रश्न— प्रनभस्व पृथिवी भिन्द्धीइदं दिव्यं नभः ।
उद्गः दिव्यस्य नो धातारीशानो विष्याद्दतिम् ॥
अथर्व ७।१६।१

सत्यार्थः—हे पृथिवी ! तू हल आदि से अच्छी तरह जुतजा । हे ईश्वर तू सामर्थ्यवान् होकर इस दिव्य गुण वाले मेघ को खण्डित कर और दिव्य जल की बड़ी भारी मशक को नाना दिशाओं में खोलादे । "(दृतिम)" का अर्थ पौराणिक मंडल परमेश्वर करता है, परन्तु सायणाचार्य-"दृतिम" "जल पूर्णां भस्त्रां मेघरूपाम्" जल भरी मशक मेघ रूप वाली, करते

हैं। जभी तो हम कहते हैं कि सनातन धर्म की रट लगाने वाले अपनी सनातनी सायण और महीधर की परवा न करके उच्छृङ्खल होकर दौड़ लगाते हैं। वास्तव में यदि कोई उत्तर दायित्व शून्य कोई मत है तो सनातनियों का ये कुछ भी कहदें, लिखदें स्वतन्त्र हैं। शोक !!

प्रश्न— "दृतेदृंहमामित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्" यजु ३६।१८ से मूर्ति पूजा सिद्ध है?

उत्तर—देखिये महीधर यहां पर "दृत" शब्द का क्या अर्थ करते हैं दृतेह विदरिविदीर्णं जरा जर्जरितेऽपि शरीरे हे महावीर ! या मां त्वं दृढ़ दृढ़ी कुरु। पट्वा विदीर्णं कर्मणि मां दृढं अच्छिद्रं कर्म कुरु।

अर्थात—हे महावीर ! मेरा बुढ़ापे से, निर्बल शरीर होने पर भी उसको दृढ़कर विदीर्ण कर्म होने पर भी मुझको अच्छिद्र कर्म वाला कर। तीसरा अर्थ महावीर का करता है। श्री स्वामी जी 'दृत' के अर्थ करते हैं "अविद्या रूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वान्" सो सत्य है 'दृत' शब्द 'दृ' विदारणे धातु से बना है जिसके अर्थ हुए विदीर्ण करने वाला। इसको महीधर ने भी माना है। परन्तु इस विदीर्ण करने वाले का नाम उसने महीवीर रक्खा है, सो रक्खा कराने हमारी क्या हानी ? परन्तु इस महावीर को "मूर्तिमें व्यापक ईश्वर" करना अज्ञान है ईश्वर तो एक रस होकर सब में व्यापक है। महावीर ऐसा अर्थ जब ही हो सकता है कि इसको दृति शब्द माना जाय। महीधर दोनों

मानता है—अदन्त 'इत' और इकारान्त इति 'इति।' पहले इते सप्तम्यन्त पद मानता है। आगे भी इते "विदीर्णे कर्मणि" कहकर सप्तम्यन्त ही मानता है। तीसरी वार "हे इते महावीर!" यहां पर 'इति'—इकरान्त पद माना है। सो इति शब्द के अर्थ अमरकोष में चमड़े की मशक के हैं। देखो—"इति सीमन्त इरितो रोमन्थोद्गीथ बुद्बुदः।"

"कासभेदीऽर्बुदः कुन्दः फेनस्तूयौ सयूपकौ॥ अमर कोष १ कांड लिंगादि संग्रह वर्ग ५। इस पर महेश्वर कृत अमर विवेक टीका—"इतिः चर्मपुटः अर्थात् इतिः चमड़े के कुप्पे या मशक को कहते हैं।

मेदिनी कोष भी यही कहता है—इतिश्चर्मपुटे मत्स्येनेति मेदनी देखो अमर विवेक टीका। तीसरा अर्थ जो महीधरने किया है उससे तो कोई महावीर पात्र ही सिद्ध होता है—यथा

"ससुषिरत्वासेत्कृत्वाच्च इतिशब्देन महावीरः।

यजु० ३६। १८ का भाष्य—

अर्थात्—छिद्र सहित और सींचने का पात्र होने से महावीर पात्र का नाम जानो।

सुषिर अर्थ छिद्र के है देखो अमरकोष—प्रथम कांड पाताल भोगीवर्ग श्लोक १। सुषिरं विवरं बलम्।

धत्य हो। परमात्मा को सछिद्र भी माननेलगे। आखिर होतो सनातनी।

*मूर्तिपूजा पर शङ्कर स्वामी—

"नचकार्यप्रत्यभि संधि" वे०सू० ४।३१। १४ कार्य में ध्यान

कभी नहीं करना चाहिये "नतस्य प्रतिमा अस्ति" पर—इतिच परस्यैव ब्रह्मणोशो नमत्वप्रसिद्धः । श० भा०

यद्यपि हम पूर्व प्रकरणों में सप्रमाण यह सिद्ध कर चुके हैं कि श्री स्वामी शङ्कराचार्य जी ब्रह्म को सदैव निराकार मानते रहे हैं। स्थल स्थल पर साकारता का विरोध किया है। परन्तु फिर भी उनकी बनाई हुई "परापूजा" नामकी पुस्तक से हम मूर्तिपूजा का उत्कट खण्डन दर्शाते हैं—

१—पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्यचासनम् ।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घंच शुद्धस्याचमनं कुतः॥

२—सर्वाधारो निराधारः सर्वव्यापक ईश्वरः ।
प्राणादि प्रेरकत्वेन जीवने हेतुरेवच ॥ ३ ॥

पुराण वाक्य—

५—अधमाःप्रतिमापूजा स्तोत्र जायप्यंच मध्यमाः ।
उत्तमा निगमः पूजा सोऽहं पूजा महात्मनः ॥

४—तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्ठ पाषाण मृन्मये ।
प्रतिमायां मनोयेषां तेनराभूढ़ चेतसः ॥

५—पाषाणौरालयंवद्धा देवःपाषाण एवच ।
ब्रूहि पण्डित देवस्तु कस्मिन्नस्थाने सतिष्ठति ॥

६—स्वगृहे पापसं त्यक्तवा भिक्षामृछ ति दुर्मतिः ।
शिलामृत् दारु चित्रेषु देवता बुद्धि कल्पिता ॥

७—निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्यच ।
निरालम्बस्यो पवीतं रम्यस्या भरणं कुतः ॥ ३ ।
८—निर्लेपस्य कुतो गन्धं पुष्पं निर्वासनस्य च ।
निर्गन्धस्य कुतोधूपं स्वप्रकाशस्य दीपकम् ॥ ४ ॥
९—नित्यतृप्तस्य नैवेद्यं निष्कामस्य फलं कुतः ।
ताम्बूलं च विभोः कुत्र नित्यानन्दस्य दक्षिणा ॥५॥
१०—स्वयं प्रकाश मानस्य कुतो नीरांजनं विधिः?
प्रदक्षिणाह्यनस्य चा द्वितीयस्य काननिः ॥६॥
११—अन्तर्बहिश्च पूर्णास्यकथमुद्वासनंभवे त् ।
इयमेव परापूजा शम्भो सत्यस्वरूपिणः ॥७॥
१२—देहो देवालय प्रोक्तो जीवोदेहः सदाशिवः ।
त्यजेदज्ञान निर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत् ॥८॥

इन श्लोकों का क्रमशः यह भाव है—

१—पूर्णका आवहन कैसा ? सर्वाधार के लिये आसन कैसा, स्वच्छके लिये अर्घपाद्य कैसा ? शुद्धकेकिये आचमन क्या ?

२—वह ब्रह्म सर्वाधार और निराधार है, सर्व व्यापक ईश्वर है प्राणादि का दाता होने से जीवन का हेतु है ।

३—अधम पुरुषों के लिये मूर्तिपूजा हैं, मध्यमों के लिये स्तोत्र और जपहैं । वेद की पूजा उत्तम है, महात्माओं की सोऽहं पूजा है ।

४—तीर्थों में, पशुवाले यज्ञ में काठमिट्टी पत्थर की प्रतिमा

में जिनका मन है वे पुरुष मूढ़ बुद्धि हैं।

५—पत्थरों करके मन्दिर में बांधकर, यह पाषण देव है (ऐसा मान कर) अरे पण्डित! बतला तो सही वह देव ठहरेगा कहां?

६—अपने घरमें खीर को छोड़कर दुर्मति भीख मांगता फिरता है। पत्थर, मिट्टी और लकड़ी में देवता बुद्धि कल्पित करता है।

७—जो निर्मल है उसको स्नान कैसा? सारा विश्व जिनके उदर में है उसको वस्त्र कैसे? निरालम्ब को जनेऊ कैसा? रम्य को आभरण किस लिये?

८—जो निर्लेप निवास है उसके लिये गन्ध कैसी?
जो निर्वास है उसके लिये पुष्प कैसे?
निर्गन्ध के लिये धूप कैसे? स्वप्रकाश स्वरूप के लिये दीपक कैसा?

९—नित्य तृप्त के लिये नैवेद्य कैसा? निष्काम के लिये फल कैसे? विभू के लिये तांबूल कैसा? नित्यानन्द वाले को दक्षिणा कैसी?

१०—स्वयं प्रकाश मान को दीपक क्या दिखना? अनन्त की प्रदक्षिणा कैसी? अद्वितीय को नमस्कार कैसा?

११—भीतर बाहर परिपूर्ण को उद्वासन कैसा? सत्य शम्भू की पूजा तो यह है—

१२—यह शरीर ही मन्दिर है, जीव सदा शिव है, अज्ञान रूप निर्माल्य के त्याग ही से सोऽहं भावसे पूजन करे।

पं० उन्नाला प्रसाद जी विद्यावारिधि—

"जो कारण जड़ प्रकृति की उपासना करते हैं, वे अन्ध तममें प्रवेश करते हैं और जो कार्य की उपासना करते हैं वे [illegible] से भी अधिक अन्धकार में प्रवेश करते हैं। दयानन्द [illegible] भास्कर पृष्ठ ३२३।

मूर्तिपूजा और पुराण—

१—मूर्तिपूजा अनित्य है सनातनी नहीं।

कलौदश सहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदनीम्।
देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणिच पुराणकम्॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण कृष्ण जर्म खंड अ० ६० श्लो० ३२ पृष्ट [illegible]

२—शालिग्राम की उत्पत्ति।

हेनाथ! नेदयानास्ति पाषण सदृशस्यच।
छलेन धर्म भंगेन मम स्वामी त्वया हतः॥ [illegible]
पाषण सदृशस्त्वंच दयाहीनो यतः प्रभो।
तस्मात् पाषणरूपस्त्वं भुविदेव भवाधुन॥ २४ [illegible]

ब्रह्मवैवत्त पुराण प्रकृति खंड अध्याय २१ श्लोक २३। २४। [illegible]

३—हे विष्णो! ते दयानास्ति पाषण सदृशं मन [illegible]
पति धर्मस्य भंगेन मम स्वामी हतः खलु॥ ३३ [illegible]
पाषण हृदस्त्वंच दयाहीनो यतः खल [illegible]
तस्यात् पाषण रूपस्त्वं मच्छयेनभवाधुन॥ [illegible]

शिवपुराण रुद्र संहिता २ युद्ध खंड अध्याय ४१ श्लोक ३३ [illegible]

अर्थ—कलियुग के दस हजार वर्ष बीतने तक पृथिवी [illegible]

पं० ज्वाला प्रसाद जी विद्यावारिधि—

"जो कारण जड़ प्रकृति की उपासना करते हैं, वे अन्ध तममें प्रवेश करते हैं और जो कार्य की उपासना करते हैं वे तिस से भी अधिक अन्धकार में प्रवेश करते हैं। दयानन्द तिमिर भास्कर पृष्ठ ३२३।

मूर्तिपूजा और पुराण—

१—मूर्तिपूजा अनित्य है सनातनी नहीं।

कलौदश सहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदनीम्।
देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणिच पुराणकम्॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण कृष्ण जर्म खंड अ० ६० श्लो० ३२ पृष्ट १८२

२—शालिग्राम की उत्पत्ति।

हेनाथ! नेदयानास्ति पाषण सदृशस्यच।
छलेन धर्म भंगेन मम स्वामी त्वया हतः॥ ३॥
पाषण सदृशस्त्वंच दयाहीनो यतः प्रभो।
तस्मात् पाषणरूपस्त्वं भुविदेव भवाधुन॥ २४॥

ब्रह्मवैवत्त पुराण प्रकृति खंड मध्याय २१ श्लोक २३। २४। पृष्ठ ४०

३—हे विष्णो! ते दयानास्ति पाषण सदृशं मनः।
पति धर्मस्य भंगेन मम स्वामी हतः खलु॥ ३३॥
पाषण हृदस्त्वंच दयाहीनो यतः खलः।
तस्यात् पाषण रूपस्त्वं मच्छपेनभवाधुन॥ ३४॥

शिवपुराण रुद्र संहिता २ युद्ध खंड अध्याय ४१ श्लोक ३३, ३४।

अर्थ—कलियुग के दस हजार वर्ष बीतने तक पृथिवी पर

हरि, देवताओं की प्रतिमायें, शास्त्र और पुराण, पूज्य रहेंगे। (फिर नहीं) (शङ्खचूड़) की स्त्री वृन्दा ने कहा — "हे नाथ तुमको दया नहिं है तुम पत्थर के हृदय वाले हो, छल से धर्म भ्रष्ट करके पति को तुमने मार दिया। हे प्रभो तुम दयाहीन हो, पत्थर के दिल वाले हो, इसलिये तुम आज से पत्थर हो जाओ। (विष्णु जो इस शाप से पत्थर के शालीग्राम बन गये) (वृन्दा तुलसी बनगई)

हे विष्णुजी! तुमको दया नहीं है, तुम्हारा मन पत्थर के समान है पति धर्म भंग से मेरा पति तुमने मार डाला। चूंकि तुम हेखल! पत्थर के कलेजे वाले और निर्दयी हो इस लिये मेरे शाप से आज से पत्थर के हो जाओ। (शिवपुराण)

४—जलाधरी और शिवजी की शिखंडी—

जब ऋषियों के शाप से शिव····कट कर पृथिवी पर गिरगया और ज्योतिष्मान बनकर संसार को भष्म करने लगा तो संसार में बड़ा हाहाकार मच गया। सब देवता विष्णु के पास गये तो विष्णु ने ऐसा कहा—

आराध्य गिरजां देवीं प्रार्थयन्तु सुरा शिवम्।
योनी रूपा भवेच्चेछै तदा तान्स्थिरता भवेत्। ३२।

अर्थात्—हे देवताओं! गिरजा देवी की आराधना करके शव की प्रार्थना करो, तब पार्वती योनीरूप हो जायगी और उसमें यह·····स्थिर हो जायगा। शि० पु० रुद्रसं० अध्याय १२ पृ० २७।

कुछ अबोध सनातनी कहते हैं कि यह ज्योतिर्लिङ्ग था। शिवजी अपना लिङ्ग=त्रिशूल हाथ में लिये हुये थे।

उत्तर—अश्लीलता को कहां तक छिपाओगे ? यदि वह ज्योतिर्लिङ्ग था और महादेव जी त्रिशूल हाथ में लिये थे तो ऋषियों ने ऐसा क्यों कहा—?

त्वया विरुद्धं क्रियते वेदमार्ग विलोपियत् ।
ततस्त्वदीयं यल्लिङ्गगं पततां पृथिवी तले ॥

शिवपुराण रुद्रासं० अ० १२ । १७

अर्थात्—हे शिव ! तूने वेद धर्म का लोप करने वाला विरुद्ध कर्म किया है, इसलिये यह तेरा लिङ्ग पृथिवी पर गिर जाय।

कहिये पण्डित जी ! क्या त्रिशूल हाथ में से गिरा ? और यहां त्रिशूल पार्वती की·····जलाधरी में स्थापित हुआ ? इसी पर आप जल चढ़ाते हैं ? न जाने कब ज्वाला मुखी पहाड़ की तरह भभक उठे !!! फिर त्रिशूल हाथ में लेना वेद विरुद्ध कैसे हो गया ? फिर इस श्लोक का क्या अर्थ करोगे ?—

उरुद्वयंचापि वृकोदराय संपूयेन्मेढ्र मनङ्गवाश्वे ।

भविष्य पुराण उत्त० पर्व ४ अध्याय २०६ पृष्ठ २०१ श्लो० ८

यहां पर "मेढ्र" शब्द के त्रिशूल अर्थ करोगे ?

गणेश जी की उत्पत्ति—

विचार्येतिच सादेवी वपुषो मल सम्भवम् ।
पुरुषं निर्ममौ सातु सर्वलक्षण संयुतम् ॥

शिवपुराण कुमार सं० अ० १३ । २० ॥

उस देवी (पार्वती) ने ऐसा विचार कर अपने शरीर

से उत्पन्न हुए मैल से सर्वलक्षण युक्त एक पुरुष बनाया।

मूर्त्ति पूजा पर पं० भीमसेन—

"नतस्य प्रतिमा अस्ति" पर पं० भीमसेन जी लिखते हैं कि—"ईश्वर की प्रतिमा, प्रतिकृति उपमा वा तुल्यता नहीं। ब्रा० सर्व० पृष्ठ ५ भाग ४ प्रश्न नं० ४ का उत्तर।

संभूति और असंभूति

संभूतिः—कार्यस्योत्पत्तिः। तस्याअन्या असंभूतिः प्रकृतिः कारणमव्याकृताख्यम्॥ महीधरः।

अर्थात्—संभूति कार्य को कहते हैं, उससे भिन्न को असंभूति अर्थात् प्रकृति जिसको अव्यक्त कारण कहते हैं।

इस समय मूर्त्तिपूजा का निषेध :०:

वैदिक धर्म की पुष्टि—

सत्येतु मानसी पूजा देवानां तृप्ति हेतवः।
त्रेतायां वन्हिपूजा च यज्ञदानादिका क्रिया॥
द्वापरे मूर्त्ति पूजा च देवानां वै प्रियंकरी।
कलौतु दारुणोप्राप्ते ब्रह्मपूजन मुत्तमम्॥ १२॥

अर्थात्—सत्युग में देवताओं की तृप्ति के लिए मानसी पूजा थी। त्रेता में वन्हि पूजा और यज्ञ, दान क्रिया थी। द्वापर

:०: पं० भीमसेन जी ब्रा० सर्वस्व वर्ष ४ मास १ पृ० ५ पर लिखते हैं—

"जिसका महान् यश कीर्ति है, जो त्रिपाद् अमृत ब्रह्म है वह साकार नहीं होता।"

में देवताओं को मूर्त्तिपूजा प्रिय थी। इस दारुण कलियुग के आने पर ब्रह्म=एक निराकारपरमेश्वर ही की पूजा उत्तम है।

कहिए पंडितजी! अब तो वैदिक धर्म की जय बोलियेगा। देखिये आपका पुराण ही एक ब्रह्म की उपासना करना इस समय बतला रहा है। क्या अब भी इस नाशकारी कर्म को नहीं छोड़ोगे? वैदिक धर्म की विजय पुराण से ही होरही है।

देखिये भागवत क्या कहती है?—

यस्यात्म बुद्धिः कुणपे त्रिधातुके।
स्वधी कलत्रादिषु भौम इज्यधीः॥
यस्तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कर्हचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषुसएवगोखरः॥

भागवत स्कंध १० अ० ८४ श्लोक १३।

टीका पं० रामस्वरूप सम्पादक "सनातन धर्म पताका" मुरादाबाद

इस कारण जिस पुरुष को वात, पित्त, कफरूप तीन धातुओं से युक्त शव समान जड़ शरीर में ही 'यह मैं हूं' ऐसी आत्म-बुद्धि है; स्त्री पुत्रादिकों के ऊपर ही 'यह मेरे हैं' ऐसी बुद्धि अपने पन की बुद्धि है; ईश्वर और देवताओं दिव्य विग्रह को छोड़कर केवल मृत्तिका पाषाणादि की स्थूल मूर्ति में ही पूजनीय बुद्धि है और तीर्थवासी साधुओं को तथा शास्त्ररूप तीर्थों को छोड़कर केवल जल में ही तीर्थ बुद्धि है और तीर्थरूप साधुओं में वह सर्व रूप बुद्धि नहीं है, वह गौओं के तृण आदि को उठाने वाले गदंन की समान (पशु तुल्य) है।

नह्यमायानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
तेपुनन्त्युरू, कालेन दर्शनादेव साधवः ॥

भागवत स्कंध १० । अ० ८४ श्लो० ११ ॥

अर्थात—पानी के तीर्थ नहीं, न मिट्टी पत्थर के देवता होते हैं । ये तो बहुत काल में पवित्र करते हैं; साधु दर्शनमात्र से पवित्र कर देते हैं । (पानी और मट्टी से बहुत काल में शुद्धि होती है । साधुओं के दर्शन मात्र से पवित्रता होती है)

भा० व० स्कंध १० । ८४ पर पं० रामस्वप भागवत टीकाकार—केवल तीर्थ करने के ही तीर्थ मानने वाले अर्थात् साधु और शास्त्रादि तीर्थों के द्वारा भीतरी शुद्धिनकरके केवल ऊपर से स्नान मात्र ही करके अपने को तीर्थ से वी मानने वाले, तथा केवल प्रतिमा मात्र में ही देवता बुद्धि रखने वाले अर्थात् देवताओं के दिव्य विग्रह और दिव्य चरित्रों की ओर दृष्टि न करके स्थूल भाव से उतने पाषाण वा मृत्तिका आदि के स्थूल विग्रह को ही देवता मानने वाले मनुष्यों को क्या ? .....

१—अहं सर्वेषुभूतेषु भूतात्मा वस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मांमर्त्यः कुरुतेचा विडम्बनम् ॥२१॥
२—योमांसर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोतिसः ॥२२॥

भागवत स्कन्ध ३ अध्याय २९ श्लोक २१।२२॥

अर्थ—मैं सकल भूतों का आत्मा होने के कारण प्राणी मात्र में निरन्तर रहता हूं तिस मेरा तिरस्कार करके अर्थात् सकल प्राणियों में मुझे न देखकर, जो मरण को प्राप्त होने वाले देह आदि में आत्म दृष्टि रखकर केवल मूर्तिमात्र में ही मेरी पूजा करता है वह पूजा का अनुकरण मात्र (ढोंग) करता है ॥ २१ ॥ सकल प्राणियों में आत्म स्वरूप से रहने वाले मुझ ईश्वर का अपमान करके जो मूर्खता से केवल मूर्तिमात्र की ही पूजा करता है वह मानों केवल भस्म में हवन करता है ॥ २२ ॥

ये उपर्युक्त अर्थ पं० रामस्वरूपजी सनातनी संपादक "सनातन धर्म पताका" कृत हैं। "कुरुतेर्चा विडम्बनम्:" के सीधे अर्थ हैं=मूर्तिपूजा का ढोंग। "हित्वार्चां भजते मौढ्यात्" के स्पष्ट अर्थ हैं=मुझे छोड़कर मूर्खता से मूर्ति पूजा करता है। 'केवल' आदि शब्द सम्पादक के अपने हैं।

सोमपान और ब्रह्म

स्वामीजी ने ईश्वर को गिलोय का रस पीने का विधान आर्याभिविनय में किया है। अतः मूर्तिपूजा सिद्ध है।

उत्तर—"पाहि" के अर्थ 'रक्षा करो' ऐसे होते हैं। यही अर्थ श्री * स्वामीजी ने ऋग्वेद के भाष्य में किये हैं। परन्तु आर्याभिविनय में निरुक्त के अनुसार 'पिब'=पी ऐसे अर्थ किये हैं; सो ये दोनों ही ठीक हैं। भौतिक अर्थ में वायु का सोम=वनस्पति की रक्षा करना ठीक ही है। क्योंकि वायु का एक भाग कार्बन और नाइट्रोजन वनस्पतियों की वृद्धि का विशेष कारण

है। अब रहा आध्यात्मिक अर्थ, इसमें भी वायु=परमात्मा सोम आदि का रक्षक और "अत्ता चराचर ग्रहणात् इस वेदान्त सूत्रानुसार चराचर का ग्रहण करने वाला है। ब्रह्म के विषय में जहां खाने पीने का वर्णन होगा वह आलङ्कारिक होगा न कि अस्मदादिवत वास्तविक।

उदाहरण—"अनेत्वं सुजागृहि० यजु० ४। १४ में परमात्मा को जागने वाला कहा है। इसका जागना हमारे समान नहीं किन्तु नित्य कर्ता, पालक और संहारक रहने का वर्णन है।

"अग्नेनय सुपथा०" यजु० ४०। १६ में परमात्मा का लेचलना हमारे समान नहीं है, किन्तु ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करना है।

'गणपतिम् हवा महे०' ऋ० २। २३। १ यजु० २३।१९ में ब्रह्म का बुलाना हमारे समान नहीं है, किन्तु हृदय में ज्ञान प्राप्त करना है। इसही प्रकार सब स्थानों पर वदाशय जानना चाहिये।—

"इन्द्रपीतः शब्द की व्युत्पत्ति :

देखो—अधिकरण माला अध्याय ६ में माधवाचार्य क्या कहते हैं ?—

वक्ष्माण वदेताधिकरण न्यायेना शरीरस्येन्द्रस्य पाना सम्भवात् अथ'पीत'शब्देन दानं विवक्ष्येत्, तदानीं "इन्द्रायदत्त" सोम,इति मन्त्रार्थो भवति।

अर्थात्—इन्द्र के शरीर रहित होने से उसका सोम पीना असम्भव है। इसलिये 'पीत' शब्द का दान अर्थ होना चाहिये। तब 'इन्द्र के लिये दी हुई सोम', इस मन्त्र के यही अर्थ होंगे।

सर्वेषांत्वैक मन्त्र्य मैति शायनस्य भक्ति यानत्वात् सवनाधिका रोहि। मीमांसा ३।२।४३।

अर्थ—(सर्वेषाम्) सब ऐन्द्र तथा अनैन्द्र शेषों के भक्षण में (ऐकमन्त्र्यम्) समान भाव से उक्त एक भक्ष मन्त्र का विनियोग होता है (हि) क्योंकि (भक्तियानत्वात्) लक्षण वृत्तिद्वारा "दा" धातु के अर्थ में 'पा' धातु का प्रयोग करके बहुव्रीहि समास करने से (सवनाधिकारः) इन्द्र पीत शब्द का "सवन" अर्थ होता है। यह (ऐतिशायनः) महर्षि ऐतिशायन का मत है।

'इन्द्रायपीतः=दत्तः सोमो यस्मिन्सवने स इन्द्रपीतः'

अर्थात्—इन्द्र के लिये दिया हुआ सोम जिस सवन में वह (सवना) इन्द्रपीत है। (आशय यह है कि निराकार= अशरीरी इन्द्र ब्रह्म का, हमारे समान पीना नहीं बन सकता)

ब्रह्म का खाना

१—सहोवाच-महामनश्चतुरो देव एकः नाः स जगार ? छा० ४। २। ६॥

अर्थात्—ब्रह्मचारी ने उससे कहा—जो भुवनों का रक्षक एक देव सुख स्वरूप 'कः' नामधारी ईश्वर है। वह चारों—अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल को खाया करता है।

२—तदुह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येचायाऽऽत्मा देवानां जनिता प्रजानाथं हिरण्यदथं ष्टूवभसोऽन सूरिर्महान्तमस्य महिमान आहुरनद्यमानो पदन्नमत्तीति वैवयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे । दत्तास्मै भिक्षामिति ॥ छा० ४ ।३ । ७ ॥

अर्थात्—शौनक कापेय ब्रह्मचारी के उसी पूर्वोक्त वचन को मन में विचारते हुए ब्रह्मचारी के निकट आये । और बोलेकिवह आत्मा है । प्रजाओं का अभग्न दन्त वाला भक्षक है । परम ज्ञानी है । इसकी महती महिमा है । इस महिमा को ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं । जिस कारण स्वयं अनद्यमान हो अन्न को भी भक्षण करता है ।....इसको भिक्षा दो ।

आर्यसमाज और मूर्तिपूजा

प्रश्न—स्वामी दयानन्द जी ने उस्तरे की पूजा लिखी है ?

उत्तर—झूंट, कोरा झूंट; कहीं नहीं लिखा कि उस्तरा पूजना चाहिये । संस्कार विधि में ये वाक्य हैं—"ओं विष्णोदिंष्ट्रोऽसि" मं० ब्रा० १ । ६ । ४ ॥ इसमन्त्र से छुरेकी ओर देख के—

ओं० शिवो नामासि स्वधितिस्तेपिता नमस्ते मामा-हिंसीः ॥ यजु० अ० ३ मन्त्र ६३ ॥

इस मन्त्र को बोलके छुरे को दाहिने हाथ में लेवे तत्पश्चात्

ओं स्वधिते मैनथ्ं हिंसीः ॥ यजु० अ० ४ मन्त्र १ ।

इस सारेलेख में कहीं पर भी उस्तरे की पूजा की चर्चा नहीं है। हम पौराणिक मंडलको ललकारते हैं कि वह "संस्कार विधि" में कहीं पर भी "उस्तरे को पूजो वा पूजना चाहिये" ये शब्द दिखायें वर्ना असत्य भाषण करके अपने लिये घोर नरक न तैयार करें। जो मन्त्र इस कर्म के साथ पढ़ने बताये हैं उनके अर्थ सुनिये—

१—"विष्णोर्दंष्ट्रोसि"=तू विष्णु =यज्ञ की डाढ़ है। "यज्ञो वै विष्णुः शतपथे।"

विष्णु नाम यज्ञ का है। उस्तरा वा छुरा काटने की वस्तु है। यज्ञ को पुरुष के रूपमें, आलङ्कारिक भाषा में, बताया है। यहां इस यज्ञरूप पुरुष के और २ अङ्गों का समय २ पर वर्णन है वहां यहां पर डाढ़रूप छुरे का वर्णन है। इससे संस्कार करने वालों को चेताया गया है कि यह छुरा काटने वाला हथियार है। सावधान रहना चाहिये। बच्चे की थोड़ी आयु और त्वचा का मुलायम होना सावधानत्व के लिये कारण है। छुराप्रत्यक्षकृत वाक्यों में "त्वं" सर्वनाम आताहै। देखो निरुक्त—"ता स्त्रि विधा ऋचः"--इत्यादि।

इस लिये इस प्रत्यक्ष वाक्य में "त्वं" और "असि" शब्द आये हैं। आगे "शिवोनामासि०" आदि के अर्थ देखिये—हे जगदीश्वर वा उपदेश करनेहारे विद्वान् जो आप (स्वधितिः) अविनाशी होने से वज्रमय (असि) जिस (ते) आप का (शिवः) सुखस्वरूप विज्ञान का देने वला (नाम) नाम (असि) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले असि हैं

(ते) आपके लिये मेरा (नमः) सत्कार पूर्वक नमस्कार (अस्तु) हो तथा आप (मा) मुझे (मा) मत (हिंसीः) अल्प आयु से मुक्त कीजिये। (कहिये छुरे की पूजा कहां है ?) हां आपका महीधर छुरे की पूजा अवश्य बताता है। देखिये— "शिवोनामेति लोह क्षुरमादायेति। हे क्षुर ! त्वं नाम नाम्ना शिवः शान्तोसि स्वधितिः वज्रं ते तव पिता। ते तुभ्यंनमोऽस्तु मामा हिंसीः"। अर्थात्—"शिवोनामासि०" यहकर लोहे के छुरेको ले (और कहे) हे छुरे ! तू नाम से शिव=शान्त है। वज्र तेरा पिता है। तुमको नमस्कार हो। मुझे मत मार !

कहिये स्वामी दयानन्द जी तो कहें—"ईश्वर मेरी रक्षा कर" और आपका भाई महीधर कहे—हे छुरे मेरी रक्षा कर। कहिये कौन छुरा=वस्तरा पुजवाता है ? आप या स्वामी जी ?

पुराण ही छुरी और कुदाल की पूजा बताते हैं—

सर्वसत्त्वाङ्ग भूतासि सर्वाशम निवारिणी।
क्षुरके रक्ष मां नित्यं शान्ति यच्छ नमोऽस्तुते॥

भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४ अ० १३८। पृ० १३९

अर्थात्—सारे प्राणियों की अंग भूत है, सारे विघ्नों को दूर करनेहारी है, हे छुरी! मेरी रक्षा कर, मुझको नित्य शान्ति प्रदान कर तुमको नमस्कार है।

२—तोष्याः कर्मकराःसर्वे कुद्दालानिच पूजयेत्। ३६।

भविष्यपुराण उत्तर पर्व अध्याय १२७ पृ० १२६

अर्थात्—सारे काम करनेवालों को सन्तुष्ट करे और कुदालों को पूजे। कहिये तो जूतोंकी पूजा भी विवाह पद्धति से निकाल दूं ?

सवधिते मैनꣳहिꣳसीः यजु० ४। १ के

अर्थ—(स्वधिते) रोगनाश करने में वज्र के समान होकर (एनम्) इस यजमान वा प्राणी मात्र को (माहिंसीः) कभी मत मार। कहिये ! कहां हैं उस्तरे की पूजा की गन्ध ? हां यहां भी आपका महीधर छुरे की पूजा बताता है —देखो—

"स्वधितेक्षुरोदेवता ।हे स्वधिते क्षुर ! एनयजमानं माहिंसीः

हे क्षुर देवता इस यजमानं को मत मार। यदि जड़ को संबोधन करके कुछ कहना पूजा है तो महीधर उस्तरे की पूजा अवश्य ही बता रहा है।

प्रश्न—देखिये सायणाचार्य इस विषय में क्या कहते हैं—

अचेतन औषधि पर मीमांसा—१—अचेतनेऽर्थबन्धनात्। मी १। २। ३५॥

अर्थ—अचेतन में अपने अर्थ बन्धन करने से ?

उत्तर—अभिधानेऽर्थवादः। १। २। ३६॥

अर्थ—(सर्वमत्तमओषधे) इसमें चेतनवत् औषधि का वर्णन होने से अर्थवाद है।

१—औषधिस्त्रायते—इस पर भाष्य—यस्मिन्वपन ओषधिरपि त्रायते तत्र वपन कर्त्ता त्रायत इति किम वक्तव्यम।"

अर्थात्—ओषधि रक्षा करती है वहां पर मुंडन करने वाला रक्षा करता है या नहीं यह विकल्प है। सायण ऋग्वेद भूमिका।

२—ओषधे कुश एनं यजमानं त्रायस्व क्षुरादरक्षस्व हे क्षुर! यजमानं माहिंसीः माधस्व।(कात्यायण आपस्तम्बश्च) कण्व शाखापर सायणभाष्य पृ० ६। ३० ॥ आपस्तम्भमन्त्रंच

ऊखल और मूसल की पूजा—

प्रश्न—स्वामीजी ने संस्कारविधि में ऊखल और मूसल की पूजा लिखी है! क्यों राजब ढाते हो? क्या ईश्वर को मुंह दिखाना नहीं है? क्या महात्माओं पर दोषलगाना ही सनातन धर्म है? जरा विचारिये संस्कारविधि में इस प्रकार लेख है—

तत्पश्चात् निम्न लिखित मन्त्रों से बलिदान करें—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ॥ इससे पूर्व ॥
ओं सानुगाय यमाय नमः ॥ इससे दक्षिण ॥
ओं सानुगाय वरुणाय नमः ॥ इससे पश्चिम् ॥
ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥ इससे उत्तर ॥
ओं मरुद्भ्यो नमः ॥ इससे द्वार ॥
ओं अद्भ्योनमः ॥ इससे जल ॥
ओं व्यस्पतिभ्यो नमः ॥ इससे मूसल और ऊखल ॥
ओं श्रियै नमः ॥ इससे ईशान ॥
ओं भद्रकाल्यै नमः ॥इससेनैऋत्य ॥
ओं ब्रह्मपतये नमः ओं वास्तु पतये नयः ॥ इससे मध्य ॥
ओं विश्वेभ्योदेवेभ्यो नमः। ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः॥

अर्थात—ओषधि रक्षा करती है वहां पर मुंडन करने वाला रक्षा करता है या नहीं यह विकल्प है। सायण ऋग्वेद भूमिका।

२—ओषधे कुश एनं यजमानं त्रायस्व क्षुरादरक्षस्व हे क्षुर! यजमानं माहिंसीः माधस्व।(कात्यायण आपस्तम्बश्च) कण्व शाखापर सायणभाष्य पृ० ६। ३०॥ आपस्तम्भमन्त्रंच

ऊखल और मूसल की पूजा—

प्रश्न—स्वामीजी ने संस्कारविधि में ऊखल और मूसल की पूजा लिखी है! क्यों गजब ढाते हो? क्या ईश्वर को मुंह दिखाना नहीं है? क्वा महात्माओं पर दोषलगाना ही सनातन धर्म है? जरा विचारिये संस्कारविधि में इस प्रकार लेख है—

तत्पश्चात् निम्न लिखित मन्त्रों से बलिदान करें—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः॥ इससे पूर्व॥

ओं सानुगाय यमाय नमः॥ इससे दक्षिण॥

ओं सानुगाय वरुणाय नमः॥ इससे पश्चिम्॥

ओं सानुगाय सोमाय नमः॥ इससे उत्तर॥

ओं मरुद्भ्यो नमः॥ इससे द्वार॥

ओं अद्भ्योनमः॥ इससे जल॥

ओं व्यरूपतिभ्यो नमः॥ इससे मूसल और ऊखल॥

ओं श्रियै नमः॥ इससे ईशान॥

ओं भद्रकाल्यै नमः॥इससेनैऋत्य॥

ओं ब्रह्मपतये नमः ओं वास्तु पतये नयः॥ इससे मध्य॥

ओं विश्वेभ्योदेवेभ्यो नमः। ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः॥

ओं नक्ता चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥ इससे ऊपर ॥

ओं सर्वात्म भूतये नमः इससे पृष्ठ ।

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥ मनु० अ० ३ ॥

इससे दक्षिण !

इन मन्त्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना । यदि भाग धरनेके समय कोई अतिथि आजाय तो उसी को देदेना नहीं तो अग्नि में धरदेना तत्पश्चात घृत सहित लवणान्न लेके—

शुनांच पतितानांच श्वपचां पाप रोगिणाम् ।

वायसानां कृमीणांच शनकैर्निर्वपेद्भवि॥१॥ मनु०अ०३॥

अर्थ—कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि इन छै नामोंसे छै भाग पृथ्वी में धरे और ये छैभाग जिस २ के नाम हैं उस २ को देना चाहिये ॥ ४ ॥ अब हम सनातनियों से से पूंछते हैं कि "संस्कार-विधि" में मूसल और ऊखल पर ग्रास धरना कहां लिखा है ? वहां पर तो "पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भागधरना" ऐसा लिखा है मूसल ऊखल पर धरना नहीं लिखा है ? क्या पत्तल वा थाली या यथोक्त दिशायें—जो थाली वा पत्तल पर ही कल्पना की गई हों, ऊखल हैं शोक है कि आप लोगों को असत्य लिखते बोलते संकोच नहीं होता ! क्या सारे संसार को भी आपने अन्धा समझ लिया है ?

इस विषय पर मनु की सम्मति—

स्मरण रहे कि प्रत्येक गृहस्थी को नित्य प्रति ५ हत्यायें

लगती हैं उनको मनुमहाराज ने इस प्रकार से गिनाया है—

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोद कुम्भश्च वध्यते यास्तु वाहन् ॥
मनु अ० ३ । ६८ ॥

अर्थात्—चूल्हा १ चक्कि २ बुहारी ३ उलूखल मूसल ४ जलका घड़ा ५; इनको अपने २ कामों में लाता हुआ (पाप) से बंध जाता है ॥ ६८ ॥

वैश्वदेवादि बलि ।

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धत्वन्तरय एवच ॥ ८५ ॥
कुह्वै चैनामत्यैच प्रजापतय एवच ।
सहद्यावापृथिव्योश्च ॥ तथा स्विष्ट कृतेन्ततः ॥ ८६ ॥
एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्व दिक्षु प्रदिक्षणम् ।
इन्द्रान्त काप्यतीन्दभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥ ८७ ॥
मरुद्भ्य इतितु द्वारि क्षिपेप्स्वद्भ्य इत्यपि ।
वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥ ८८ ॥
उच्छीर्षकेश्रियै कुर्याद भद्रकाल्यैच पादतः ।
ब्रह्मवास्तोष्यति भ्यान्तु वास्तु मध्ये बलिं हरेत् ॥८९
विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो बालिमाकाश उत्क्षिपेत् ।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तं चारिभ्य एवच ॥९०

पृष्टवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्म भूतये ।
पितृभ्यो बलिशेषंतु सर्व दक्षिणतो हरेत् ॥६१॥

श्लोकों के अर्थः—

वे देवतायें हैं—अग्नये, सोमाय, इस से पहले होम करे। फिर दोनों का नाम मिला कर फिर विश्वेभ्यो देवेभ्य और धन्वन्तरये ॥ ५ ॥ और कुह्वै, अनुमत्यै, प्रजापतये- द्यावाष्टथिवीभ्याम् और अन्त में स्विष्टकृते (इन सब के साथ "स्वाहा" अंत में लगा कर होम करे) ॥८६॥

उक्त प्रकार अच्छी विधि से होम करके, चारों ओर दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से सानुग. इन्द्र, यम, वरुण और सोम, इनके लिये बलि दे ॥ ७॥

मरुद्भ्यः ऐसा कहकर द्वार अद्भ्य ऐसा कह कर जल, वनस्पतिभ्य ऐसा कह कर उलूखल मुसल निमित्त बलि दे।

वास्तुके शिर प्रदेश छत में श्री के लिए, मकान के पैर= भूमि में भद्र काली के लिये, ब्रह्मा और वास्तोषयति के लिये घर के बीच में ॥८८॥

विश्व देवों के लिये आकाश में, दिवाचर प्राणी तथा रात्रिचरों के लिये भी आकाश में ॥९०॥

मकान के पीछे सर्वात्मा मूर्ति के लिये और शेष बलि पितरों को दक्षिण में देवे ॥९१॥

बलि वैश्व पर प्रश्नोत्तर—

प्रश्न—बलि वैश्वदेव शब्द के क्या अर्थ हैं ?—

उत्तर—वैश्वदेव शब्द विश्वदेवाः से बना है जिसका अर्थ है कि सब देवों वा प्राणी अप्राणी रूप जगत के लिये अपने भोजन में से भाग देना ॥ ८१ वें श्लोक में इस का नाम भूत-बलि है।

प्रश्न—इसके करने से क्या लाभ है ?

उत्तर—७८ वें श्लोक में गृहस्थी को ५ हिंसायें लगना बताई हैं। उनकी ये प्रायश्चित्त रूप आहुतियां हैं। गृहस्थ आश्रम, चारों आश्रमों में सब से बड़ा आश्रम है। बहुत से मतवादी इस आश्रम से इस लिये घृणा दिलाते हैं कि इसमें हिंसा होती है। इसलिए यह गृहस्थाश्रम नरक का द्वार है। ब्रह्मचर्य से ही सन्यासी हो जाना चाहिये। इस लिये मनु जी ने उन हिंसाओं का जो, गृहस्थाश्रम में होती हैं, प्रायश्चित्त रक्खा है।

प्रश्न—क्या वेद भगवान भी इस कर्म का प्रतिपादन करते हैं ?

उत्तर—हां, करते हैं, देखो—अहरह बलिमित्ते हरन्तो-ऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने रायस्पोषेण समिषा मदन्तो माते अग्ने प्रतिवेषा रिषाम। अथर्व १९।७।७

पुनन्तुमा देवजनाः पुनन्तु मनसाधियः पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेद पुनीहि माम्। यजु० १९।३९

इस मन्त्र में 'अहरह' नित्य प्रति बलिवैश्व देव करने की आज्ञा विद्यमान है।

प्रश्न—अग्नि और सोमादि क्या पदार्थ है ?

उत्तर—ये सब देवता=दिव्य गुण वाले पदार्थ हैं। इनके

द्वारा जल, वायु की शुद्धि होती है, विशेषकर जो गृहस्थ में रह कर शरीरादि से अशुद्धि फैलती है, इन के द्वारा उस अशुद्धि का शमन होता है। परन्तु सर्वोपरि दिव्य गुण ईश्वर में हैं।

प्रश्न—धन्वन्तरि और :o:कुहू किनको कहते हैं?

उत्तर—गृहस्थ में जो कष्ट निवारक वस्तु है वह धन्वन्तरि कहाती है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा का उदय नहीं होता उस में जो अन्धकार और उससे उत्पन्न हुआ प्रभाव कुहू कहलाता है। (देखो अमरकोष कालवर्ग ६)

प्रश्न—अनुमती किसको कहते हैं?

उत्तर—पौर्णमासी के प्रभाव को अनुमति कहते हैं।

(देखो अ० को० प्रथम कां० कालवर्ग श्लो० ८)

प्रश्न—प्रजापति किसको कहते हैं?

उत्तर—काम को प्रजापति कहते हैं, गृहस्थ काम्य आश्रम है।

प्रश्न—ये सब देवता कहां रहते हैं?

उत्तर—ये सब सर्वत्र वायु के समान आकाश में फैले रहते हैं। इन्हीं से मनुष्यादि के शरीर बने हैं, ये सब उपादान कारण हैं इनके शुद्ध रहने से प्राणी स्वस्थ रहते हैं

प्रश्न—तो क्या द्वार, जल, छत और उखल, मूसल पर प्रास धरे?

उत्तर—नहीं, इन शब्दों में सप्तमी, विभक्ति निमित्तार्थ है, न कि अधिकरण में अतः इनके ऊपर जाकर प्रास रखने का

:o: इस पर देखो निरुक्त—११। ४२।

विधान नहीं किन्तु इनके निमित्त-इनसे जो अपवित्रता फैलती है उसके निवृत्यर्थ आहुतियां हैं। देखो श्लोकों में सब ठौरनिमित्तार्थ चतुर्थी विभक्ति पड़ीहै। 'विश्वेभ्यश्चदेवेभ्य:'आदि यदि उन २ वस्तुओं पर ग्रास रखने का विधान होता तो "बलि-माकाशउत्क्षिपेत" में आकाश में फेंकना नहीं बनता, आकाश का फेंका ग्रास तो पृथ्वी पर ही आजायगा। इसही नियम के अनुसार ऊखल मूसल पर न धरकर उनसे जो उत्पन्न होने वाली हिंसा है तन्निवृत्यर्थ बलिदेवें-प्रायश्चित्त करे। इस ही लिये श्री० स्वामी जी कहते कि थाली वा पत्तल पर यथोक्त दिशाओं में भाग धरना। यह दिशाये थाली वा पत्तल पर ही कल्पित कर ली जाती हैं।

प्रश्न—इन्द्रादि देवताओं का पूर्वादि दिशाओं से क्या सम्बन्ध है।

उत्तर—इन्द्र=सूर्य का द्वार से, सूर्य पूर्व से उदय होता है, और द्वार भी पूर्व को ही रहना चाहिये।

यम का=चन्द्र किरणों का दक्षिण से। चन्द्रमा की किरणों को पितर * कहते हैं—उनका दक्षिण से विशेष सम्बन्ध

---

*नृचक्षः पितरो गर्भमादधुः ऋ० ६।८३।३ पर सायण—"पितरः पालको देवा जगद्रक्षक रश्मयः" अर्थात् पितर पालन करने वाले देव—जगत् रक्षकिरणें।

"नमो देवेभ्यः स्वधायिभ्यः" पर सायण भाष्य—हे पितरः पालकाः सन्ति तेभ्यः स्वधास्तु। कण्वशाखा १।२। पृ० ६७

है, इस विषय पर पितृश्राद्ध विषयक शङ्का समाधान में देखना। वहां पर भले प्रकार यह विषय स्फुट किया जायगा। वरुण का पश्चम से=पश्चिम की दिशा का वरुण से विशेष सम्बन्ध है। देखो मनसा परिक्रमा में—"प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः"। देखो इस पर "दिग्विज्ञान" पुस्तक—पितर: ऋतु है—"ऋतवः पितरस्तस्माद् ध्रुव् कपालो भवति। श० ब० २। ५। ४। ४।

सोम का उत्तर से विशेष सम्बन्ध है। देखो—"उदीची दिग् सोमोऽधिपतिः"।

वायु का द्वार से—प्रवेश स्थान और वायु के आने का मार्ग होने से विशेष सम्बन्ध है। द्वार शुद्ध रहना चाहिये जिससे शुद्ध वायु आवे। जल का साक्षात् जल से।

वनस्पति का, काष्ठजन्य होने से ऊखल और मूसल से सम्बन्ध है। वृक्ष और वनस्पति ये दोनों शब्द काष्ठ से बने पदार्थों के लिये वेदादि शास्त्रों में आते हैं। आगे यज्ञ विषय में प्रमाण देखना। ऊपर का लक्ष्मी से, उन्नति का कारण होने से, सम्बन्ध है। भद्र काली का पृथिवी से, भद्र=कल्याण का संग्रह होने के कारण पृथिवी का भद्र काली से सम्बन्ध है। पृथिवी को वसुन्धरा कहते हैं।

ब्रह्मपति=गुरुपुरोहितादि का गृहस्थी से सम्बन्ध है।

वास्तु=घर की पृथिवी को कहते हैं, देखो अमरकोष—१ कांड पुर वर्ग श्लोक १६। इसलिये गृहपति मध्यम में रहे।

सामान्यतया सब देवता, और दिन रात में विचारने

वाले सब प्राणी आकाश में रहते हैं इसलिये इनका 'ऊपर' से सम्बन्ध है। सर्वात्म भूमि का पृष्ठ से सम्बन्ध है।

पितरों का दक्षिण से। यहाँ पर 'पितर' तत्वविशेष है न कि माता पिता। क्योंकि उनका श्राद्ध तो पितृ यज्ञ में आगया।

वैदिक काल में प्रत्येकस्थान, विशेष प्रकार का, विशेष २ सुविधाओं को ध्यान में रख कर बनाया जाता था। अब जसी कुव्यवस्था नहीं थी। देखो शाला निर्माण विधि।

प्रतीकोपासना

कुछ नामधारी सनातनी कहते हैं कि यह एक मूर्ति एक प्रकार की प्रतीक है, उसके द्वारा हम परमेश्वर की उपासना करते हैं। परन्तु वेदान्त शास्त्र इसका निषेध करता है। यथा:—

नप्रतीके नहिसः। वेदान्त सूत्र ४।१।५॥

ब्रह्मदृष्टि रुत्कर्षात्। वे० सू० ४। १। ६॥

अप्रतीका लम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथाऽदोषात् तत क्रतुश्च॥ वे० सू ४। १। १५॥

अर्थात—प्रतीक में उपासना न करे क्योंकि वह प्रतीक ब्रह्म नहीं है। क्योंकि ब्रह्म बहुत ही उत्कृष्ट है। जिसका अप्रतीक आलम्बन है जिसका इस विविध सिद्धान्त से कहीं दोष नहीं क्योंकि ब्रह्मोपासक ही उसको पाता है।

प्रश्न—महादेवजी के वेद ३ नेत्र बतलाता है?

उत्तर—त्रयाणां ब्रह्मा, विष्णु रुद्राणां पितरं त्र्यम्बकम्

अर्थात्—जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का पिता है वह 'त्र्यम्बक' है।

इच्छा ज्ञान क्रिया शक्तिः त्रिनेत्रोहि सदा शिव।
एवं शिवार्चनं ध्यानी सर्वदाकाल वर्जितः॥

गरुड़ पुराण आचार खण्ड अ० २३ श्लोक ५७

अर्थात्—इच्छा ज्ञान क्रिया ये ही शिव के तीन नेत्र है। सदा इन का ही ध्यानी ध्यान धरे। ऐसे ही शिव को पूजो।

वायुकोण में जलाशय रहता था, वहीं पर स्नानागार मोरी रखनी होती थी।

अग्निकोण में वनस्पति—शाकादि और ऊखल मूसल आदि काष्ठमय पदार्थ। ईशान कोण में लक्ष्मी, धन।

नैर्ऋत्य में स्त्री-शयनागार, वेद पाठी पुरोहितादि,
मध्यमें गृहपति का, और यज्ञशाला,
विश्वेदेवा का सम्बन्ध आकाश से,

दिवाचर—दिनमें घूमने वाली और रात्रिचर—रात में फिरने वाले डांस मच्छर आदि का भी ऊपर—आकाश से और सब प्रकार का अन्नादि का सम्बन्ध पृष्ठ भाग में रखना होता था। "सर्वात्मभूति" अन्नादि को कहते हैं। ये मन्त्र वेद के नहीं है किन्तु स्मृति गृह्य सूत्रों के हैं। इस ही लिये इस कर्म को स्मृति वा गृह्य कहते हैं।

पाठक गण ! अब विचारें कि जो स्मार्त्त और गृह्य कर्म मनु जी ने अपनी मनुस्मृति में वर्णन किये हैं, उन्हीं को श्री स्वामी जी महाराज ने पञ्च यज्ञों में रख दिया । इसमें ऊखल और मूसल की पूजा कहां लिखी है ? परन्तु क्या किया जाये ? सनातनियों ने अन्धे की लाठी पकड़ली है, उसही के पीछे अविद्या के गढ़े में गिरने को चले जा रहे हैं । न कोई संस्कार-विधि खोल कर देखता है न मनुस्मृति । ऊखल मूसल की पूजा की रट लगाये चले जाते हैं । आशा है कि इस लेख को पढ़कर पाठक गण सन्तोष प्राप्त करेंगे !

सगुण निर्गुण

सत्यमज्ञानमनन्तब्रह्म यो वेदेत्यनेन सविशेषमेव प्रतिपद्यत इति विज्ञायते । नच निर्गुण वाक्य विरोधः प्राकृत हेय गुण-विषयत्वात् तेषाम् ।

इस पर श्री भाष्य-पृष्ठ ३५६—

अर्थ—ब्रह्म सत्य है ज्ञान है अनन्त है इस कथन से ब्रह्म सविशेष अर्थात सगुण प्रतिपादन किया गया । एवं सगुण निरूपण करने से निर्गुण वाक्यों का विरोध इसलिये नहीं कि निर्गुण वाक्य ब्रह्म में प्रकृति के गुणों का निषेध करते हैं जैसा कि—"निस्कलं निष्क्रियं शान्तम्" ।

कहिये स्वामी जी के और इस कथन में क्या अंतर है ? जो व्याख्या श्री स्वामी जी ने सगुण और निर्गुण की है वही श्री भाष्य कर रहा है । परन्तु ये नामधारी शास्त्रों पर दृष्टि न डाल

कर व्यर्थ ही दूसरों पर दोषारोपण किया करते हैं। परमात्मा इनको सत्य ग्रहण करने का बल दे, जिससे इनकी बुद्धि शुद्ध और शान्त हो।

प्रश्न—स्वामी जी का चित्र आर्यसमाजी लोग अपने घर में, समाजों में और उत्सवों पर रखते और टांगते हैं। क्या यह मूर्ति पूजा नहीं है ?

उत्तर—देखो मूर्ति तीन प्रकार की होती हैं—जीविकार्थ, बेचने के लिये और आदरार्थ = सम्मानार्थ।

१—जीविका के लिये वह होती हैं जिनको केवल दिखा २ कर पैसा पैदा किया जाता है। सन्दूकों में बन्द करके पैसे में दिखा कर आजीविका कमाते हैं। नतो ये बेचने की हैं न सम्मानार्थ ही हैं। (आजकाल भी सिनेमा में दिखाई जाती हैं)

२—दूसरी वे जो दिवाली आदि पर बेची जाती हैं ये न जीविकार्थ हैं न आदरार्थ किन्तु विक्रीयार्थ ही हैं।

३—तीसरा जो न बेची जायें, न उनसे जीविका की जाय परन्तु सम्मानार्थ ही स्थापित की जायें। महारानी विक्टोरिया और राजाओं आदि की।

जो मूर्तियां सम्मानार्थ रक्खी जाती हैं वे पूजनीय नहीं होती उनके स्थापक और रखने वाले मूर्ति पूजक नही कहाते। न वे उपास्य ही समझी जाती हैं। नतो उनको कोई देवता समझता है न उन पर जलादि ही चढ़ाये जाते हैं। न उनको भोग लगाकर शयन ही कराया जाता है उनकी प्राण प्रतिष्ठा भी नहीं होती। फिर उनका रखना मूर्ति पूजा कैसी ?

नोट—स्मरण रहे कि प्राचीन काल में भी मूर्तियाँ आदरार्थ रक्खी जाती थीं। यह नहीं समझना चाहिये कि इस ही समय महारानी विक्टोरिया, वा लार्ड आदि की प्रतिकृतियां धरने की नई रीति है।

कवि भास जो कालिदास से भी पूर्व हुआ है, वह अपने 'प्रतिमा नाटक' में लिखता है कि अयोध्या के समीप रघुवंशियों के देवकुल में दिलीप, रघु, अज और दशरथादि की मूर्तियां बनी थीं।

शिशुनाग वंशी राजाओं के देवकुल में राजा 'उदयन' और नन्दि वर्द्धन की मूर्तियां मिली हैं।

देखो प्रतिमा नाटक पृ० २६७—४० भाग ४।

प्रश्न—यदि ऐसी प्रतिकृति या मूर्ति को तोड़दें तो वैदिक लोग क्रुद्ध तो नहीं होंगे ?

उत्तर—इसलिये क्रुद्ध नहीं होंगे कि हमारा देवता मरगया वा भ्रष्ट होगया अथवा इसको कोई कष्ट हुआ। परन्तु हां वह तोड़ने वाला अशिष्ट—बदतमीज़ समझा जायगा। इसलिये उसको सरकार सजा देगी। मान लीजिये कि कोई धृष्ट पुरुष विक्टोरिया महारानी, या सम्राट की मूर्ति को खंडित कर देता है तो उस बदमाश को इस बात की सजा नहीं मिलेगी कि उसने किसी के मज़हबी जज़बात को ठेस पहुंचाई है या कोई धार्मिक पाप किया है, परन्तु उसको इस बात का दण्ड मिलेगा कि वह राज-द्रोही अथवा उसने एक आदरार्थ स्थापित की हुई यादगार को अङ्ग भङ्ग किया है। दुःखसुख देने या देवता के भङ्ग को जान

कर नहीं दण्ड दिया जायगा इस विषय में देखो अष्टाध्यायी के सूत्र—

जीविकार्थे चापण्ये । ५ । ३ । ९९ । जीविकोर्थं चदि विक्रीयमाणं तस्मिन्वाच्ये कनो लुप्स्यात् । वासुदेवः शिव, स्कंदः ।

अर्थात— जीविकार्थ और बेचने के लिये प्रतिकृति हो तो कन प्रत्यय का लुप् हो । इस पर तत्वबोधिनी टीका—

याः प्रतिमाः प्रतिगृह्य गृहाद्गृहं भिक्षमाणा अटन्ति ता एवमुच्यन्ते । देवलका अपीति । अर्थात्—जिन प्रतिमाओं को लेकर घर घर घूम कर भिक्षा मांगी जाती है वे भी देवलका कहाती हैं ।

Was prevailing religion. Mr. R. C. D. civili zation of ancient India.

अर्थात—ऋग्वद में मूर्तिपूजा का कोई विचार नहीं । उस समय मूर्तिपूजा को कोई नहीं जानता था । बुद्ध के समय से मूर्तिपूजा चली है ।

"वाएव भिक्षयोऽभिप्रेताः । यात्वायतनेषु प्रतिष्ठाप्यन्ते पूज्यन्तेच तासूत्तर सूत्रेण लुप् ।" वे ही भिक्षावृत्तिके लिये अभिप्रेत हैं । और जो किसी स्थान पर स्थापित करके सत्कृत होती है उन्हीं में उत्तरसूत्र से प्रत्यय लुप् होता है । प्रतिकृतियां इतने काम में आती हैं—

"अर्चासु पूजनादीसु चित्रकर्मध्वजेषुच । इवे प्रतिकृतौ

लोपः कनो देव पथादिषु"। जिनके गुण गाये जायें और सत्कार किया जाय चित्र कर्म में, ध्वज में, देवपथ इनमें कन् का लोप हो। जैसे शिवः, चित्र कर्म में—अर्जुनः, ध्वज में—कपिः, गरुडः, सिंहः। स्मरण रहे कि ये ग्रन्थ पौराणिक छाया को लेकर बने हैं अतः ये सिद्धान्तकौमुदीकार अथवा तत्वबोधिनी टीकाकार शिव, विष्णु, आदि की प्रतिमाओंको यदि मूर्तिपूजा में लगावें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु प्राचीन ग्रन्थानुसार आशय वही है जो हमने ऊपर दर्शाया है। क्योंकि प्रतिमा पूजन जैनियों के काल से चला है। जिसकी पुष्टि में पं० अखिलानन्द अपनी पुस्तक—"वेदत्रयी समालोचन" के पृष्ठ—१७४ पर लिखते हैं कि—"मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः"—मौर्यों से मूर्ति पूजन चला था।

मौर्य वंश चन्द्रगुप्त का वंश कहाता है। चन्द्रगुप्त जैन था अतः सिद्ध हुआ कि मूर्तिपूजा जैनियों ने चालई जैसा श्री० स्वा० दयानन्दजी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है। There is no mention of idols in the Rivedu. The warship of images in temples was unknown to Hindoos before the Budhist revolution, but seems to have come into vastion when Budhis.

ऐलफिन्सटन सा० भी यही लिखते हैं—There seems to have been no images and no visible types of the objects of the worship.

प्रश्न—निष्क्रमण संस्कार में स्वामीजी ने चन्द्रमा की पूजा लिखी है !

उत्तर—चन्द्रमा की पूजा कहीं भी नहीं लिखी है । व्यर्थ दोष क्यों लगाते हो ? देखो वहां पर ये वाक्य हैं.....
.....“और बालक की माता दाहिनी ओर से लौट कर बाईं ओर आ अञ्जलि भर के चन्द्रमा के सन्मुख खड़ी रह कर ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम् । तदहं विद्व स्तत्पश्यन्माहं पौत्र मघ रुदम् ॥१॥

मन्त्र ब्राह्मण १।५।१४॥

इस मन्त्र से परमात्मा की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे ।".....और बालकका पिता जल की अञ्जली भर (ओं यददश्च) इसी मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ के दोनों प्रसन्न होकर घर में आवें ।''

कहिये इस जगह चन्द्रमा की पूजा कहां है ? क्या चन्द्रमा की ओर को जल छोड़ कर परमात्मा की प्रार्थना करने से चन्द्रमा की पूजा हो गई किसी वस्तु से प्राकृतिक लाभ उठा लेना उस वस्तु की पूजा नहीं कहाती “अमुक वस्तु हमारे लिये सुखद हो” ऐसी प्रार्थना परमात्मा से करना उचित ही है यथा “सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु'' आदि ।

अर्थात्—हमारे लिये जल और ओषधि सुमित्र-अनुकूल हों। ऐसे ही प्रत्येक पदाथ के लिये प्रार्थना की जाती है । इससे उस वस्तु की पूजा—उपासना नहीं होती । जल छोड़ते समय जो

प्रश्न—निष्क्रमण संस्कार में स्वामीजी ने चन्द्रमा की पूजा लिखी है !

उत्तर—चन्द्रमा की पूजा कहीं भी नहीं लिखी है । व्यर्थ दोष क्यों लगाते हो ? देखो वहां पर ये वाक्य हैं.....

.....“और बालक की माता दाहिनी ओर से लौट कर बाईं ओर आ अञ्जलि भर के चन्द्रमा के सन्मुख खड़ी रह कर ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम् । तदहं विद्व स्तत्पश्यन्माहं पौत्र मघ रुदम् ॥१॥

मन्त्र ब्राह्मण १।५।१२॥

इस मन्त्र से परमात्मा की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे ।”.....और बालकका पिता जल को अञ्जली भर (ओं यददश्च) इसी मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ के दोनों प्रसन्न होकर घर में आवें ।”

कहिये इस जगह चन्द्रमा की पूजा कहां है ? क्या चन्द्रमा की ओर को जल छोड़ कर परमात्मा की प्रार्थना करने से चन्द्रमा की पूजा हो गई किसी वस्तु से प्राकृतिक लाभ उठा लेना उस वस्तु की पूजा नहीं कहाती “अमुक वस्तु हमारे लिये सुखद हो” ऐसी प्रार्थना परमात्मा से करना उचित ही है यथा “सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु” आदि ।

अर्थात्—हमारे लिये जल और ओषधि सुमित्र—अनुकूल हों। ऐसे ही प्रत्येक पदार्थ के लिये प्रार्थना की जाती है । इससे उस वस्तु की पूजा—उपासना नहीं होती । जल छोड़ते समय जो

चन्द्रमा की किरणें शीतल प्रभाव पति, पत्नी और बालक पर डालती हैं वह विचित्र है। व्याख्या आगे देखना।

प्रश्न—स्वामी जी भी तो इन पौराणिकों को मूर्तिपूजक नहीं बताते प्रत्युत हमको कहते हैं कि—"वे भी उन मूर्ति को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं।" देखो १४ वां समुल्लास आक्षेप नं० ३० की समीक्षा।

उत्तर—स्वामी जी अपनी सम्मति नहीं किन्तु आप पौराणिकों का कथन ही वर्णन कर रहे हैं कि—वे पौराणिक बुतपरस्ती की सफाई में ऐसा कहते हैं। उनका अपना विचार आगे है कि—"हां जो हम लोग वैदिक हैं वैसे ही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ तो बुतपरस्ती आदि बुराईयां से बच सकोगे, अन्यथा नहीं।" इससे सिद्ध है कि स्वामी जी हिन्दू और मुसलमान दोनों की बुतपरस्ती को बुरा समझते थे।

देखिये विल्सन महोदय क्या लिखते हैं—In a word the religion of Veda was not—idolatry. अर्थात एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि वेदों का धर्म मूर्ति पूजा नहीं था। देखो Wilsan's Rigvedu volume I Introduction.

विल्सन साहब यह भी मानते हैं कि "इन्द्र" आदि शब्द परमेश्वर के भी में वेदों में आते हैं—अ० ६। ४७। १८ पर सम्मति—Indra is here as identified with परमेश्वर सर्वश्रेष्ठ आदि कारण first cause, idcrtical with reaction P. 611.

नीलकण्ठ महादेव—"नीलग्रीव इवास्तं गच्छन् लक्ष्यते।" अर्थात्-अस्त होते समय सूर्य नीला सा प्रतीत होता है। अतः उस अस्त होते हुए सूर्य को नीलकण्ठ कहते हैं। यजुः उव्वट भाष्य।

नीलकण्ठ महादेव एक लुब्धक नक्षत्र हैं जो नीला है इसको "नीलकण्ठ" महादेव कहते हैं। श० प० भाष्य पृष्ठ २६३।

प्रश्न—अर्चन्त प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्य वर्चत॥ ऋ०मं०८ सू० ६६।८

इस मन्त्र में परमात्मा की अर्चना करना कहा है। अर्च धातु मूर्त की पूजा ही अर्थ में आती है अतः वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध है।

उत्तर—इस मन्त्र में अर्च धातु मूर्तिपूजा अर्थ में किसी ने नहीं मानी। यहाँ पर क्या इस अर्थ में कहीं भी नहीं आती। देखो सायण इस धातु के अर्थ करते हैं। प्र+अर्चम्=प्रउच्चारित। अर्थात् ऊंचे स्वर से बोलना। आशय यह है कि ऊंचे स्वर से परमात्मा की स्तुति करो। ग्रिफिथ साहब भी यही कहते हैं—अर्च=Sing=गाओ। सायणाचार्य के अर्थ का मरहठी अनुवाद—"हे स्तोते हो! स्तुतिकरा! जोराने स्तुति चालूद्या। हे प्रिय मेधो! स्तोत्रे म्हणा। मुलेंदि इन्द्रालास्तवोत। धर्यशाली युद्धा या प्रमाणे इन्द्राचे स्तुति करावे। हे स्तोते हो! तुमच्या थोर इन्द्रां करतां स्तोत्रम्हणा कारण महापराक्रमी वृत्रहन्ता इन्द्र शेकड़ों धाराच्या वज्राने वृत्राला ठार करतो।

आशय यह है कि इन्द्र की ऊंचे स्वर से स्तुति करो।

प्रश्न—उभयं वा एतत्प्रजापति निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च ।

उत्तर—प्रजापति यज्ञ दो प्रकार का है। निरुक्त और अनिरुक्त, परिमित और अपरिमित। अर्थात् 'प्रजापतये स्वाहा' यह आहुति चुप होकर देता है यह प्रगट करता है कि इस यज्ञ का फल वर्णन नहीं हो सकता।

"गणपति" मिट्टी की डेली की पूजा

गणानांत्वा गणपति ꣳ हवामहे प्रियाणांत्वा प्रियपति ꣳ हवामहे निधीनांत्वा निधिपति ꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥ यजुः० २३। १९ ॥

यही मन्त्र ऋग्वेद २। २३। १ पर "हवामहे" तक आया है। महीधर ने इस मन्त्र के अत्यन्त घृणित अर्थ किये हैं। सायणाचार्य इस मन्त्र पर अपनी सम्मति इस प्रकार देते हैं—

"गणानान्त्वा गणपति हवामहे०" इति ब्राह्मणस्पत्यं ब्रह्मवैवृहस्पति र्ब्रह्मणैवैनं तदभिषज्यति ॥ ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका १ अध्याय ४ खण्ड ४।

इस पर सायणभाष्य—

एतस्मिन् सूक्ते प्रथमाया ऋचस्तृतीय पादे ज्येष्ठराजं ब्रह्मणं ब्रह्मणस्पत इति श्रूयमाणत्वादिदं सूक्त ब्रह्मणस्पति देवताकम् पृष्ठ ८७। अर्थात् इस सूक्त में जो पहिली ऋचा है उसके तीसरे चरण में "ज्येष्ठ राजंब्रह्मणां ब्रह्मणस्पति।" ऐसा सुना जाने से

यह सूक्त ब्रह्मणस्पतिदेवता से सम्बन्ध रखता है। ४६ वायुओं में पहला वायु गणपति है, श० प० भा० पृ० २३४। हमको केवल यहां पर यही दिखाना है कि गणपति शब्द पौराणिकों का माना हुआ गणेश, नहीं है। न यह मिट्टी की डेली के अर्थ में है। न बर्मियों का घोड़ा है। किन्तु स्वामी दयानन्द और सायणा-के कथनानुसार ब्रह्म परमात्मा के अर्थ में है।

इस मन्त्र पर पं० विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव कृत टीका भी पढ़िये—"हे ब्रह्मणस्पते गणां या गणपति, ज्ञात्यामधीता अत्यन्त प्रख्यात ज्ञाता०" इस मरहटी टीका में गणपति को सूंड वाला नहीं बताया किन्तु ब्रह्म ही बताया है।

गणपति संप्रदायवालों से स्वामी शंकराचार्य क्या कहते हैं सुनिये—"भोगाणपत्य ! सत्यमुक्तं भवता गणपतेः सर्वो-त्तमत्वं, तन्माया द्र द्र शुत्पत्तिश्चेति भवद्भिः प्रतिपादितं किल तदसमञ्जसं प्रतिभाति, कथं सगुणस्य गजमुखस्य गणपतेः रुद्रगणैः सहलयानुगस्य जगत्कारणत्वं कल्पयितुमुचितम्। किञ्च रुद्रसुत इति लोके प्रसिद्धिरस्ति, तस्य ब्रह्मत्वे कल्पिते पित्रादि कारणत्वं सुतस्यानुचितमेव, अतो रुद्रादि कारणं पर ब्रह्मैव "सदेव सौम्येदमग्न आसीत" इत्यादि वाक्यात्"।

अर्थ—हे गणपति के मत के मानने वाले ! जो तुमने यह कहा है कि गणपति सब से उत्तम है उसी की माया से रुद्रादि कों की उत्पत्ति है यह ठीक नहीं, सगुण गणेश हस्ति के मुख वाला जिसका रुद्रके गणों के साथ ही उत्पत्ति लय होता है वह कैसे जगत् का कारण हो सकता है ? क्योंकि

वह रुद्र का पुत्र है यह लोक में प्रसिद्ध है, यदि इसको ब्रह्म मानेंगे तो वह पुत्र होने से रुद्रादिक का कारण नहीं बन सकेगा, इसलिये ब्रह्म ही रुद्रादि सबका कारण है "वही सत्यरूप सृष्टि से प्रथम था" इत्यादि वाक्यों से। (ब्रह्म ही जगत् का कारण है)

कहिये क्या शंकर स्वामी भी स्वामी दयानन्द के अनुयायी आर्यसमाजी थे।

चतुर्थ अध्याय

वेद विषय

वेद शब्द के अर्थ

वेद शब्द विद् धातु से बना है। इस धातु के अनेक अर्थ हैं—जैसे=विद्-ज्ञाने, सत्तायाम्, लाभे, विचारणे चेतनाख्या निवासेषु। अर्थात्—जिनके पाठ से, मनन करने से, निदिध्यासनसे मनुष्य यथार्थ ज्ञान को प्राप्त होता है, जिनके पढ़ने से वह विद्याओं में पारङ्गत हो जाता है, जिनके पढ़ने से सारे ही सुखों का लाभ होता है, जिनके द्वारा सत्यासत्य धर्माधर्म का विवेक होता है और जिनमें सारी विद्यायें बीज रुप से विद्यमान हैं, वे वेद कहलाते हैं।

वह्वृक् प्रतिशाख्य वृत्युपक्रमो की व्याख्या—

१—विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभि धर्मादि पुरुषार्था इति वेद : अर्थात्—जिनके कारण धर्मादि पुरुषार्थ विद्यमान हैं, माने जाते हैं या प्राप्त किये जाते हैं, इसलिये इनका नाम वेद है।

२—इष्ट प्राप्ति अनिष्ट परिहारयोरलौकिक मुपायं यो वेदयति स वेदः अर्थात्—इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट को दूर करने के उपायों को जो बताये वह वेद है।

३—प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते एतं विन्दन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।

अर्थात्—प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से जो उपाय न जाना जाय, उसको वेद बतलाता है—यही वेदों की वेदता—वेदपना है। स एव उपायो वेदस्य विषयः। तद्बोध एव प्रयोजनम्।

अधिकरण में वेद

आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः। तस्मिन् आयुर्वेदे विद्यते अस्ति इत्यायुर्वेदः १।१४ सुश्रुत टीकाकार उल्लपण

तद्बोधार्था चाधिकारी। तेन सहोप कार्योपकार भावः सम्बन्धः।

अर्थात्—वही उपाय (परोक्ष विषय का ज्ञान) वेद का विषय है। उस विषय का जान लेना ही प्रयोजन है। उस बोध की इच्छा वाला ही अधिकारी है। उस अधिकारी के साथ वेद का उपकारी और उपकारक भाव का नाम सम्बन्ध है। (इस ही को वेद का अनुबन्ध चतुष्टय कहते हैं)

प्रश्न—वैदिक लोग चार वेद बतलाते हैं परन्तु सब जगह तीन ही वेदों का लेख है। जैसे वेदत्रयी वाक्य विख्यात है ?

उत्तर—'वेद त्रयी' नाम तीन विद्याओं का है। यज्ञ विषय में ये ३ ऋक्, यजु० और साम ही काम आते हैं इसलिये प्रायः इनका नाम विद्यात्रयी या वेदत्रयी धरा गया है।

तस्माद्यज्ञात सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे *छन्दा-

---

* छन्दसम् के अर्थ यहां पर अथर्व वेद के हैं—"यदिदं किंचच्चा यज्ञ थंवि सामानि छन्द थंसि" बहदारण्यक उ० १।२।४ यत्र ब्रह्मायवमान छन्दस्यां वाचं वदनं ऋ० ६।१।१३।६।

श्छ सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत । ऋ० १०।६०।६ में चारों वेदों का वर्णन है । वेद नित्य हैं—

तस्मैनूनमभिद्यवे वाचा विरूप । नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् । ऋ० ८ । ७ । ५ । ६ ।

अथर्व वेदमें चारों वेदों का वर्णन

यस्माद् ऋचो अपातक्षन् यजुरस्मादपाक्षन् सामानियस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् स्कम्भंतं ब्रूहिकतमः स्विदेव सः अथर्व—

"ददिदं किंचर्चो यर्यंषि सामानि छन्दांसि" । ब्रह्मदारण्येक ४० १ । २ । ५ ।

वेद में चारों वेद—

पाहिनो अग्न एकया पाह्यूऽइत द्वितीयया । पाहि-गीर्भिस्तिसृभि रूर्जाभ्यते पाहि चेतस्तृभिर्वसो । सामवेद अध्याय १ खं० ४ मं० २ ऋ० ८ । ६० । ६

प्रश्न—वेद तो ब्रह्मा जी ने बनाये हैं, स्वामी जी लिखते हैं कि अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा पर प्रगट हुए ?

उत्तर—देखो श्री स्वामी जी के बताये हुए चार ऋषियों पर ही सृष्टि के आदि में प्रगट हुए, इस सिद्धान्त की पुष्टि में निम्न लिखित प्रमाण है—

१—जीव विशेषैरग्निवायवादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् । ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदोवायोः सामवेदआदित्यात् । ऐत० ब्रा० ५ । ३२

२—तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयोवेदा अजायन्त । अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः । शतपथ ११ । ५ । ३ ।

३—तेभ्यः तप्तेभ्यस्त्रीन् वेदान् निर्ममत ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदमिति, अग्नेर्ऋग्वेदं, वायोर्यजुर्वेदमादित्यात्सामवेदम् । गोपथ ब्रा० पूर्वभाग १ । ६ पृ० ३

४—जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् । सायणकृत ऋग्वेद भाष्यभूमिका पृ० ४ पं० ७ छापा कलकत्ता ।

५—ईश्वरस्याग्नेयादि प्रेरकत्वेन निर्मातृत्वं द्रष्टव्यम् । सायण भा० भू० पृ० ४ पं० ६ ।

६—अथर्वणां चन्द्रमा देवतं ज्योतिः० गोपथ पूर्व भाग प्रपाठक १ खं० २६ ।

७—अङ्गिराश्चतुर्थं वेद प्रवर्तकाचार्यः । तैत्तरीय ब्राह्मण की सायण कृत व्याख्या २ । १ ।

८—अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम् । दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् । मनुस्मृति ।

इसपर कुल्लूकभट्ट—"पूर्वं कल्पेये वेदास्त एव परमात्म मूर्तेर्ब्रह्मणः स्मृत्या स्मृत्यारूढाः तानेव कल्पादौ अग्नि वायु रविभ्य आचकर्षा ऋग ब्रह्मा यजु साम संज्ञं वेदत्रयं अग्नि वायु रविभ्य आकृष्टवान् ।

६—(जगदीश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में)

अग्नि, वायु सूर्य इन तीन शिक्षक* ऋषियों द्वारा वेद त्रयी प्रकट की। देखो निगमागमचन्द्रिका (महामण्डल काशी का मुखपत्र) भाग १५। संख्या ७। पृष्ठ १३८

१०—स्वयं अग्नि, वायु, आदित्य इन ३ तपस्वियोंसे तीनों वेद ऋग् यजुः साम प्रकाशित हुए। दयानन्द ति० भा० पृ० २२२।

वेद कब प्रकट हुए?

१—बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्नयत्प्रैरत नामधेयं दधानाः। यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः। ऋ० १०। ७१। १॥

इस पर सायण भाष्य—

बृहस्पतिरनेन सूक्तेनाविदित वदार्थेन बालान् दृष्ट्वा विद्वांसं माहस्वात्मानं संबोध्याह—हे बृहस्पतेरन्तरात्मन्! प्रथममुत्पत्त्यनन्तरं इतर वागुच्चारणात् प्रागेव नामधेयं दधानाः पदार्थेषु निदधानाः बालाःयत् प्रैरतप्रेरितवन्तः तद्वाचोग्रिं भवति यत्तत तात्तैन्यादिकं वाक्यं पूर्वमाभिधाय पश्चादन्या वाचं वदिष्यन्ति खलु तस्माद्वावाचो अग्रं अस्यां दशायामवस्थितान् बालान् पश्य।

---

* ब्रह्माजीसे इन्हीं तीनों ने वेदों को पढ़कर विहित यज्ञादिक कर्मों का अनुष्ठान किया। दयानन्द ति० भा० पृ० ३८।

अतः पं० ज्वालाप्रशाद मिश्र यह तो मानते हैं कि ये तीनों पुरुष थे नकि तत्व।

तथा इदानीं एषां श्रेष्ठं प्रशस्यतमं यच्चारित्र प्रज्ञापरहितं वेदार्थं ज्ञानमासीत् एषां तत् ज्ञानं गुहा गुहायां निहितं गोप्यं तत् प्रेणामकारलोपश्छान्दसः प्रेम्णा आविर्भवति वेदाभ्यास काले सरस्वतीस्वार्थं मेभ्यः प्रकाशयतीत्यर्थः ।

आशय यह है कि—परमात्माने इस सूक्त द्वारा, वेदार्थों के ज्ञाता बालकों को देखकर स्वयं अपने आपे से विस्मित होकर कहा—

हे परमात्मन् प्रथम उत्पत्ति के अनन्तर और दूसरी वाणी बोलने से पहले जो वस्तुओं के नाम लेते हैं, उनमें तात इत्यादि प्रथम बोलते हैं वे बालक दूसरी बोली बाद को बोलते हैं इस अवस्था में बालकों को देखो कि इस ही प्रकार इनका वेद ज्ञान भी पाप रहित था। उस समय इनका छुपा हुआ ज्ञान भी प्रम से प्रगट हो जाता है। वेदाभ्यास काल में सरस्वती अपने अर्थ को इन पर प्रगट कर देती है ।

जिस प्रकार एक बालक, और कोई शब्द बोलने से पहले, चाचा अम्मा आदि शब्द बोलता है वैसे ही सृष्टि की आदि के चार ऋषि जो वाणी बोलते हैं वह शुद्ध और पाप रहित परमात्मा की ओर से होती है परमात्मा का वेदों का ज्ञान परमात्मा रूपी पिता से ही प्राप्त होता है। जैसा कि कहा है--सपूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

वह परत्मा पहले चार ऋषियों का भी गुरु शिक्षक है क्योंकि परमात्मा नित्य है—काल के बन्धन में नहीं है।

इस सूत्रमें "पूर्वेषाम्" बहुवचन होने से सिद्ध है कि वह एक परमात्मा पहले ऋषियों का भी गुरु है। यदि एक ब्रह्मा के ऊपर वेदों का प्रकाश होता तो "पूर्वस्य" ऐसा एक वचन होता।

जड़ पदार्थों का ज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। क्या अग्नि वायु आदि जड़ पदार्थों पर कोई ईश्वरीय ज्ञान प्रगट हो सकता है?

२—यज्ञेन वाचः पदवीय मायन्ता मन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्। तामा भृत्या व्यदधुः पुरुत्रातांसप्तरेभाअभि संनवन्ते॥ ऋ० १०। ६। ७१। ३।

सायण भाष्य—विदितार्थं धीराः पदवीयं वतेरचोयत् संज्ञा पूर्वकाय विधेरनित्यत्वात् गुणाभावः। पदेन यातव्यः पंथा पदवीयः तं वाचो मार्गं यज्ञेन आपन् प्राप्तवन्त ऋषिषु अतीन्द्रियार्थ दर्शिषु प्रविष्टां तां वाचमविन्दन् अलमन्त अनन्तरं तां वाच माभृत्य आहृत्य पुरुत्रा बहुषु देशेषु व्यदधुः व्यकार्षुः सर्वान् मनुष्यान् अध्यापया मासुरित्यर्थः। एतादृशीं तां वाचं सप्तरेभाः शब्दायमानाः पक्षिणः पक्षिरूपाणि गायत्र्यादीनि सप्तछन्दांसि अभिसंनवन्ते अभितः संगच्छन्ते॥

आशय यह है कि—अर्थ जानने वाले धीर पुरुषों ने वाणी के मार्ग को यज्ञ द्वारा प्राप्त किया अतीन्द्रियार्थ देखने वाले में प्रविष्ट हुई वाणी को प्राप्त करते हुए। इसके अनन्तर उस वाणी को लेकर बहुत से देशों में सब मनुष्यों को पढ़ाते हुए इस प्रकार की उस वाणी को=गायत्री आदि सात छन्दों को,

पक्षियों के समान शब्द करते हुए सब ओर से प्राप्त होते हैं।

वेद भगवान ने दो उदाहरणों से वेदों का प्रकाश मनुष्यों पर होना बताया है—एक बालक के उदाहरण से और दूसरा पक्षी के उदाहरण से। बालक और पक्षी दोनोंही किसी दूसरे से सिखाई हुई विशेष बोली बोलते हैं। यदि मनुष्य इन दोनों को अपनी बोली न सिखावे तो वे कोई सार्थक शब्द नहीं बोल सकते—वे सदैव दूसरों का अनुकरण मात्र करते हैं। बालक माता की बोली बोलता है, पक्षि तोता मैना आदि भी दूसरों की बोली का अनुकरण करते हैं। इसही प्रकार सृष्टि की आदि में उत्पन्न होनेवाले चार ऋषि भी अपनी कोई भाषा न रखते हुए परमात्मा की दी हुई भाषा बोलते हैं वह भाषा निष्पाप होती है। ज्ञान स्वच्छ परमात्मा प्रदत्त होता है। निष्कर्ष यह है कि-सृष्टि के आदि में आदि ऋषियों की भाषा और ज्ञान दोनों ही अपने न होकर परमात्मा की ओर से होते हैं।

३—सक्तुमिव तित उना पुनन्तो यत्रधीरा मनसा वाचमक्रत। अत्रासखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि। ऋ० १०। ७१। २

भावार्थः—जिस समय उन धीर पुरुषों ने मन से उस वाणी का उच्चारण किया तो वे मानो चलनी से सत्तू साफ कर कर रहे थे इस विषय में वे मित्र मैत्री के नियमों को जानते हैं, क्योंकि इनकी वाणी में कल्याण मयी शोभा रक्खी हुई है।

सर रमेशचन्द्रदत्त जी कहते हैं—"सामवेदस्यवयः क्रम लक्षवत्सरेरन्यून हइवेना ।" देखो मानवेर आदि जन्मभूमि पृष्ठ २८ । अर्थात्—सामवेद की आयु लाख वर्ष से कम नहीं है ।

ये चार ऋषि मन्त्रदृष्टा थे नकि मन्त्र रचयिता—

१—ऋषिरतीन्द्रियार्थदृष्टा मन्त्र कृत् करोतिधातुस्तत्र दर्शनार्थः देखो "ऋषिमन्त्रकृदेकाद्वै० ऐतरेय ब्राह्मण पं० ६ । अ० ३६ । खं० । १

परसायण भाष्य ।

२—यद्यप्यपौरुषयेवेदे कर्त्तारो न सन्ति, तथापि कल्पादा विश्वरानुग्रहेण मन्त्राणां लब्धारो मन्त्र कृदुच्यन्ते । तै० । सा० भा० ४ । १ । १ ।

अर्थात्—यद्यपि अपौरुषेय वेद के कर्त्ता मनुष्य नहीं हैं, तथापि कल्प के आदि में ईश्वर के अनुग्रह से मन्त्रों को प्राप्त करने वाले मन्त्र कृत्=मन्त्रों के रचयिता कहाते हैं ।

टिप्पणी—"नात्वाएतान् सभ्यातान् विश्वामित्रः प्रथम पश्येताम् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवोऽसृजत ।" गोपथ ब्राह्मण पृ० । ४ । १६ । ऋ० ६ । १ ॥

ऋषिदृष्टा थे कर्ता नहीं

१—दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः ।

२—एतत्कवयः सूक्तमपश्यत् ऐतरेय ब्रा० ३ । १६ ।

३—गौरवीति एतत् सूक्तमपश्यत ,, ,,

४—एतां यदमपश्यत् । ऐ० ब्रा० ४ । १० ।

५—ऋषिदर्शनात्। निरुक्त २। ११।

६—तदेतत् पश्यन्नृषिर्वामदेवः। शतपथ १४। ४। २। २२।

स्मरण रहे कि "नाभानेदिष्ट" मनु का पुत्र था। उसने कुछ मन्त्रों की विशद व्याख्या की वही उन मन्त्रों का दृष्टा कहाता है परन्तु वे मन्त्र उससे पूर्व उसके पिता मनु जी को वेद मन्त्र स्मरण थे। यदि नाभानेदिष्ट ही कर्ता होता तो उससे पहले मनु को कैसे स्मरण होते? इससे सिद्ध है कि ऋषिगण दृष्टा थे नकि कर्ता। यथा—"इदमित्था।" ऋ० १०।६१-६२। इसमें प्रमाण—

वेद में अनित्य वस्तुओं का नाम।

१—मनुपुत्रेभ्योदापं व्यभजत्। तैत्तिरीय संहिता ३।१। ६।

२—मनोर्वैजाया आसन्। मै० सं० १। ५८।

३—नाभानेदिष्टं मृशंसति। ऐतरेयब्रा० ५। १४।

स्मरण रहे कि वेदों में अनित्य वस्तुओं के नाम नहीं आते हैं। वेद सदैव उन वस्तुओंका वर्णन करते हैं जो प्रवाहसे अनादि होती हैं। इस विषय में मनुजी क्या कहते है?

१—सर्वेषांतु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ मनु० १। २१।

२—नाम रूपंच भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम्।
वेदशब्देभ्यएवादौ निर्ममे स महेश्वरः॥ वेदान्तभाष्य १।३।२८।

३—ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः।
शर्वयन्ते प्रसूतानां तान्यैवैभ्यो ददात्यजः॥
यथर्त्तावर्त्त लिंगानि नाना रूपाणि पर्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव यथा भावा युगादिषु॥

यथानि मामितोऽतीता स्युत्यास्ते सांप्रतैरिह ।
देवा देवैस्त्यतीतैर्हि रूपेर्नामभिरेव च ॥ वेदान्तभाष्य १।३।३०।

इन उपरोक्त श्लोकों का एक मात्र यही तात्पर्य है कि वेद नित्य हैं, उन नित्य वेदों में से नित्य पदार्थों के नाम देखकर ही संसारी पुरुषों ने, अपने २ पुत्र, नगर, पर्वत, नदियां और अन्य संस्थाओं के नाम रक्खे। जैसे विश्वामित्र, वसिष्ठ, यमदग्नि, वामदेव और राम कृष्णादि ये सारे ही शब्द वेदों में गुण वाचक आये है। इन्हीं को देखकर प्राचीन ऋषि महर्षियों ने सांसारि मनुष्यों और अन्य २ पदार्थों के नाम धरे। देखिये सायणाचार्य उदाहरण सहित इस वैदिक सिद्धान्त को किस प्रकार पुष्ट करते हैं ?

"परन्तु श्रुति सामान्य मात्रम्" इति तस्याऽयमर्थः—

यत्काठकादि समाख्यानं तत्प्रवचन निमित्तम्। यतुपरं ववराद्यनित्य दर्शनं तच्छब्द सामान्य मात्रम्। ननुतत्रानित्यो ववराख्य कश्चित पुरुषो विवक्षितः। किन्तु ववर इति शब्दानु कृतिः। तथा सति ववरेति शब्दं कुर्वन्वायुरभिधीयते। सच प्रवाहणः। प्रकर्षण वहनशीलः एव मन्त्रा थूहनीयम" । सायण ऋग्भाष्य भूमिका।

अर्थः—"परन्तु श्रुति सामान्य मात्रम्।" यह जैमिनि मुनि का वचन है। इसका आशय यह है कि—जो काठकादि = कठ शाखा वाले आख्यान करते है "तत प्रवन निमित्तम" = व पढ़ना पढ़ाना*मात्र ही है। और जो 'बबर' आदि अनित्य शब्द देखे जाते हैं शब्द सामान्य मात्र-नित्य शब्द हैं। वहां पर

---

* किसी २ सूक्त के सौ सौ दृष्टा ऋषि हुए हैं यथा "पयस्वतं शतं वैखानसाः" ऋग्वेदानुक्रमणी।

किसी अनित्य 'बबर' के कहने कि इच्छा नही है। किन्तु 'बबर' यह शब्द का अनुकरण नकल है। ऐसा होनेपर 'बबर' ऐसा शब्द करने वाला वायु ही विधान किया गया है और वह प्रवाह भी है—जो अत्यन्त बहन शील हो वह बबर वायुः। इसही प्रकार और स्थलों पर भी समझलेना चाहिये। (आशय यह है कि काठकादि नाम पढ़ने पढ़ाने कारण आये हैं नकि वेदों में किसी व्यक्ति विशेषके नाम हैं) जैमिनि आचार्य का भी यही मत है।

शङ्का—अनित्य दर्शनाच्च। १। १। २८। वेदों में बबर, मयु-छन्दा, विश्वामित्र और वसिष्ठ आदि अनित्य शब्द देखे जानेसे, वेद अनित्य है।

उत्तर—उक्तन्तु शब्द पूर्वत्वम्। १। १। २९। शब्द की नित्यता पहले कहयी। आख्या प्रवनात् १। १ ३०। ये विश्वामित्र आदि नाम पढ़ने पढ़ाने से हैं। वेद मन्त्रों के जो ऋषि हैं' यह उनके लिये उत्तर है परन्तु श्रुति सामान्य मात्रम्१। १। ३१।

अर्थः—वेदमें सामान्य नित्य शब्द ही आते हैं' सांख्य-शास्त्र के रचयिता कपिल क्या कहते हैं ?

शङ्का—न नित्यत्वम् वेदानां कार्यत्व श्रुतेः। ५। ४५॥

अर्थ—वेद नित्य नहीं उनमें वेदों का कार्यत्व सुना जाने से।

न पौरुषेयत्वं, तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्॥५। ४६

अर्थ—वेदों को किसी पुरुष ने नहीं बनाया क्योंकि उसके कर्त्ता पुरुष का अभाव है।(कोई पुरुष नहीं जो वेद बना सके)

मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात्। ५। ४७॥

अर्थ—मुक्त और बद्ध दोनों की योग्यता नहीं कि वेदों की रचना कर सके। (वे लोग' विशेष कर पौराणिक, सोचें कि क्या कपिलदेव नास्तिक थे ?)

महाभाष्यकार पतञ्जलिजीका मत—

"नैगमाश्च रूढि भवाश्चौणादिकाः सुसाधवः कथंस्युः ? नामच धातुजमाह निरुक्ते । नाम खल्वपि धातुजमेवाहः नैरुक्ताः । व्यकरणे शकटस्य च तोकम् वैयाकरणानांच शाकटायन आह धातुजं नामेति । महाभाष्य ३ । ३ । १ ॥

अर्थात्—वैदिक शब्द और रूढि भाव को उत्पन्न हुए औणादिक शब्द किस प्रकार साधु हो सकेंगे ?

उत्तर—निरुक्त कारका मत है कि सब नाम धातुओं से ही बने हैं। और शाकटायन (वैयाकरण) का भी यही मत है।

उदाहरण—शतपथकार याज्ञवल्क्यजी उदाहरण देते हैं कि — "अर्थवात्वाप्रथमोनिरमन्थदग्नऽइति प्राणोवाऽअथर्वा पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थतेत्यायो वैपुष्करं प्राणोऽथर्वा" । श० प० ६ । ४ । २ । १ । २

अर्थात्—हे अग्नि ! सबसे प्रथम तुमको अथर्वण ने मथा। निःसन्देह प्राण को अथर्वा कहते हैं।

अथर्वा ने पुष्कर से अग्नि को निकाला, पुस्कर जल है और अथर्वा प्राण हैं।

तात्पर्य—यह है कि—वेदोंमें जहां अथर्वा शब्द आया है वहां पर अथर्वा के अर्थ प्राण के हैं। हिन्दुओं की, इस सिद्धान्त को न मानने से, अत्यन्त ही हानि हो चुकी है, परन्तु

कट्टर-हिन्दू सनातनी चाहे संसार से लुप्त हो जायें, चहे शिखा सूत्र का लोप हो जाय, चाहे गोवंश नष्ट हो जाय परन्तु इनकी हठ न जाय-हट्टी सनातन धर्म बना रहे।

निरुक्तकार भी उदाहरण देकर समझाते हैं—

ऋषिरायुध विशेषः। तद् बहुला सेनायस्य सोऽयमरिष्ट येणः।

इति सेनोवा नित्यमेव प्रेषित सेनः शत्रून प्रति।

ऋष्टषेणो मध्यमः तदपत्य मयमग्निः पार्थिवः ग्नष्टिषेणो देवापिः सशन्तनवे सर्वस्मै यजमानायेति याज्यम्। वृहस्पति र्वाचस्पतिरिति मध्यमः स्तनयित्नु लक्षणं वाचमित्यर्थ। दुर्गाचार्यः।

देवापिः=देवानामाप्त्या=सहि स्तुतिभि र्देवानामाप्नोति हविः संप्रदानेनच। दुर्गाचार्यः।

अर्थात्—'ऋष्टिः' विशेष आयुध का नाम है, जिसकी सेना में ऐसे विषेष हथियार वाले सिपाही हों उसको अरिष्टषेण कहते हैं। अथवा जिसकी सेना बढ़ी हुई है—शत्रुके सामने बढ़ी चली जाती हो उसको अरिष्टषेण राजा कहते हैं—ऋष्टषेण मध्यम है उसकी सन्तान यह अग्नि है जो पृथवी पर रहती है। वह शन्तनु यज्ञ करने वाला कोई यजमान को कि वह लोगों के शरीर का कल्याण चाहता है।

वृहस्पतिवाणी का पति यह मध्यम है, विजली के लक्षण वाली वाणी कड़क यह अर्थ हुआ।

देवापि—देवताओं के लिये स्तुति करने और हवि देने से

देवोंको प्राप्त होने वाला।

आपिः—सोमका पिता कहता है—देखो ऋग्वेद १।३१।१६

"अपिः पिता प्रमितिः सोम्यानां भूमिरस्पृषि कृन् मर्त्यानाम्।

शान्तनु=धानको कहते हैं। देखो सुश्रुत ४६। २१॥

इस सारे लेख का आशय यह है कि—ऋष्टिषेण, देवापिः, आदिः, शान्तनु और इसही प्रकार के वैदिक शब्द सबही धातुज और नित्यहैं। वर्षासूक्त का वर्णन है। जल, बिजली, वर्षा, यज्ञ और धान इत्यादि का वर्णन हैं। कोई इतिहास नहीं है।

कुरुक्षेत्रः—कुरुक्षेत्रम् देवान देवयजनम्। शतपथ१४।१।१।२।

अर्थात्—देवताओं के यजन स्थान को कुरुक्षेत्र कहते हैं।

सुरथ—सुष्ठुरथो वर्त्तते यस्य स सूरथः। चन्द्रवंश राजा राजा भूत् इति। चन्डी स्तोत्र।

दशरथ—दशसु दिक्षु गतो रथो यस्य स। सर्व बन्शे नृप भेदे। शब्द स्तोत्र महानिधि कोषे।

अरिष्ट नेमिः—अरिष्टनेभिः प्रतना जमाशुमित्येषवा अरिष्टनेमिः पृतना जिदाशुः। ऐतरेय ब्राह्मण ३। १८। ६।

सायण भाष्य—अरिष्टनेमिः रिष्टं, हिंसा तद्राहित्या त्यमरिष्टम्। तस्यच नेमि स्थानीयम्। यथा रथ चक्रस्य नेमिः परितो रक्षिता भवति तद्वत्। अर्थात्—रिष्ट हिसा को कहते हैं। उससे जो रहित वह है 'अरिष्ट' उसकी नेमि के स्थान में जैसे रथ के पहिये की नेमि चारों ओर से सुरक्षित रही है उसके समान। पूर्ण अहिंसक को अरिष्ट नेमिः कहते हैं।)

सुदास्=अच्छा देने वाला। "सुदः कल्याण दानः"=निरुक्त २। २४॥

पिजवनः=स्पर्धा के योग्य वगवाला अथवा न मिली हुई गतिवाला। "पिजवनः पुनः स्पर्धनीय जवोवा मिश्री भाव गतिर्वा। निरुक्ते २। २४॥

त्रितः—त्रित शब्द के अनेक अर्थ हैं—जैसे, "त्रितस्त्रिस्थान इन्द्रो" निरुक्त ६। २५।

(१) अर्थात् ३ स्थान वाला इन्द्र—स्थूल सूक्ष्म और कारण वाला जीवात्मा।

(२) "त्रितस्य नाम जयन्मधु"। ऋ० ६। ८६। २०। सत रज तम वाली प्रकृति को नाम रूप देता है।

(३) ऋ० ५। ६। ५ में आये "त्रित" पर ग्निकिथ–Trfta here perhapy Vayu, the wind Page 476. त्रित के अथ कदाचित् वायु के हैं। ऋ० ५। ५४।

(४) पर ग्निकिथ-- Trita is cloud or company of mareets stationed these places·

(५) Trita as God of the renote place of the seen ऋ० 1-187.

च्यवनः—च्यवन ऋषि होता है। स्तोमों का (अपने-भीतर से निकालने वाला। "च्यवन ऋषिर्भवति च्यावयितास्तोमानाम्। निरुक्ते ४। २६

अप्सरा—५। १३ निरुक्त पर दुर्गाचार्य—"अपसारिणी भवति अपः प्रति नित्यमेव सरति तत्प्रभवत्वात्"। अपसरा पानी

में चलनेवाली है पानियों के प्रति ही चलती (तत् प्रभवत्वात्) उससे उत्पन्न होनेके कारण (पानीसे उत्पन्न होने वाली बिजली) जो सनतान नाम धारी अथवा अन्य विधर्मि अप्सरा को हूरका पर्यायवाची कहते हैं वे इस निरुक्त पर विशेष ध्यान देने को कृपाकरें। वैदिक विज्ञान पर विचार करें !

अत्रि:—के अनेक अर्थ—ऋ० ८। ५। २५ माता पिता और भ्राता रहित यजु० १७। १६ "अत्रिणम" = भोगने योग्य। "भक्तक:=राक्षस: महीधर:। १७। १६।

अत्रिण:—दूसरों का धन खाने वाला-अथर्व १। १६।१-३

दशरथस्य—"चत्वारिंशद्दशरथस्य-" ऋ० १। १२६। ४ पर निकिथऔर स्वा०द०न०Ten car's mater दशरथाय सेनेशस्य

कक्षीवान:—वहव्य: कक्षय: विद्या प्रदेशा: विदिता: सन्ति यस्य स:। स्वा० द० न०

वामदेव—पितावै वामदेव्यं पुत्रा: पशवानि। ता० ब्रा० ७। ६। १।

प्रजापतिर्वा वामदेव्यम्। ता० ४ ८। १५ शतपथ १३। ३। ३

यशोवैं वामदेव्यम् ता० ४। ८। १५

वामदेव्यमात्मा (महाव्रतस्य) ता० १६। ११। ११

शान्तिर्वै वामदेव्यम्। ता० १।१। ८। २।

शान्तिर्वै भेषज वामदेव्यम्। कौ० २७। २। २६-३-४!

सर्वदेवत्यं वै वायदेव्यम। तां० ७। ८। २।

---

*stotional three ploies.

प्रजापतिर्वै वामदेव्यम्। श० प० ५। १। ३। १२
प्राणोवै वामदेव्यम् श० प० ६। १। २। २८
पशावो वै वामदेव्यम्। ता० ४। ८। १५।
अन्तरिक्षंवै वामदेव्यम्। ता० १५। १२। ५
तै० १। १। ८। २

वामदेव्यम्—पर निम्नकिथ-यजु० १२। ४। Belonyiny to Vamadeva or the Rishi ar inspired seer of Book IV of the R. V. the namigiven to various saamans a 100

पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः० ऋ० ७। १८। २१। पराशरः दुष्टों का हिंसक। 'शतयातु':—सैकड़ों के साथ जाने वाला। वसिष्ठः=बहुत बसने वाला। 'शतयातु'=बहुत से राक्षस जिसके बांधने की इच्छा करते हो, वा बहुतसे राक्षसों का मारने वाला सायणा चार्यः।

स्कन्द महेश्वर और वैदिक इतिहास—

अर्ष्टिषेणो होत्रमृषि निषोदन् देवापिर्देव सुमतिं चोकेत्वान। स उत्तरस्मादधरं समुद्रं अपोदिव्या असृज वर्ष्या अभि। ऋ० १०। ९८। ५॥

ऋषिषेणो मध्यमः तत्रभवत्वाच्चार्ष्टिषेणो वेद्युतः तस्ययार्थिनात्मना वस्थितस्य हौत्रकर्मेन देवापित्वम्·····शन्तनवंशं सव शरीरिणामस्तु इत्येवमर्थं वृष्टि प्रसाधने कर्मणि प्रवृत्तस्य यजमानस्यार्थय।

दुर्गाचार्य के मतमें—(ऋष्टिषेण) मध्यम स्थानीय अर्थात् अन्तरिक्ष स्थानीय अग्नि=विद्युत्।

देवापिः—ऋष्टिषेण नामक मध्यस्थानीय अग्नि से उत्पन्न होने वाला यह पार्थिव अग्नि।

शन्तनुः—सब प्रजाओं का कल्याण हो इस विचार से यज्ञ साधन में प्रवृत्त हुआ यजमान। (यही स्कन्द महेश्वर कहते हैं)

करावः—मेधावी-निघंटु ३। १५। ऋ० १।३७।१ पर निरुक्त—Sing forth 6 kanvas to your fandof mareets "कणानि शब्द कर्मा कणन्तीति करावः=वायवः" लौगाक्षि गृह्यसूत्र आचार्य देवपाल कृत। Jar an exhaus lanation of this and other hymrs to the maruts. M' muller's Vandic Hymus part .i. p. 52.

अर्थात—शब्द करने वाले वायु को "करव" कहते हैं।

कुशिक-विश्वामित्र

कुशिकः कंशतेर्वा स्यात् प्रकाशयति कर्मणः। यास्कः। अर्थात्-शब्द और प्रकाश करने से "कुशिक" कहाता है।

इस पर स्कन्द महेश्वर-प्रवृषि स्राविते भयं कूला नदीः सव मित्रो भगवान् आदित्योऽध्येषतीव। देशलवनंमाकार्ष्टं, यज्ञानां संव्यवहार्या भवत इति।

कुशिकः कंशतेः औषसः प्रकाशः कुशिकस्य प्रकाशस्य। सूनुरह मादित्यः तस्य पुत्रस्थानीय इत्यर्थः।

अर्थः—वर्षा ऋतु में जब नदियां अपने किनारों से भी

ऊपर उफन चलती हैं तब जगत के मित्र तथा पालक सूर्य ने उन नदियों से प्रार्थना की कि-तुम डुबोओ मत यज्ञों अर्थात् प्रजासम्बन्धी समस्त सुख जनक कार्यों में लाईजाने योग्य बनो। (क्रंश-धातु से कुशित शब्द बनता है इसका अर्थ है 'औषस' अथात उषा संबन्धी प्रकाश) मैं कुशिक अर्थात् उषस् सम्बन्धी प्रकाश का पुत्र आदित्य हूं अर्थात् उषः प्रकाश के पुत्र की जगह हूं।

स्कन्द महेश्वर आगे कहते हैं—एवं प्रवृषि प्रवृद्रोदकाप्रत्याख्या य एनम्·····अन्तेवर्षाणां शरदि प्रत्यहं तारतम्येन क्षीयमाणोदकाः आशुश्रवुः।

टिप्पणीः—योहवैवसिष्ठं वेदवसिष्ठोहस्यानां भवति। वाग्वा वासिष्ठः। छा० ३। ५।१। २। वाग्वै वसिष्ठा। छा० उ० ६।२।

स्कन्द महेश्वर की स्पष्ट सम्मति—

एवमाख्यान स्वरूपाणामन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषुच योजना कर्तव्या, एष शास्त्रे सिद्धान्तः। औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यान समयः। परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्।

अर्थ—इस प्रकार के आख्यान स्वरूप मन्त्रों का, यजमान और नित्य पदार्थों में योजना करनी चाहिये यही शास्त्र का सिद्धान्त है। क्योंकि मन्त्रों में आख्यान रूप अर्थ सर्वथा गौण रूप से किये जाते हैं। अर्थ करने की वास्तविक शैली नित्य पक्ष की ही है।

परिक्षित्—संवत्सरो वै परिक्षित् संवत्सरो हीदं सर्वं परिक्षीयतीति अतो खल्वाहुः अग्निर्वैपरिक्षित् अग्निर्हीदं सर्वं परिक्षीयतीति गोपथे।

भरत—वाग्वै सरस्वतो प्राणो भरतः । ऐत०वा०पञ्चिका २ अ० ३ । २४ । प्र० २३ ।

ऐतिश प्रलापः—आयुर्वै ऐतिश प्रलापः । ऐ. ब्रा. ६ । ४ । ३३ पृष्ठ ८८

इन्द्रजाया—सेना वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा । ऐ. ब्रा ३ । २ । २२ ।

यम वायु के अर्थ में १—यमाय त्वाङ्गिरस्वते । यजु० १८ । ६ इस पर महीधर "यमाय वायवे" पृष्ठ १३२४ जीवाराम विद्यासागर प्रेस कलकत्ता ।

२-अयंवैयमो योऽयंयवते । इति श्रुतेः । श०प० १४ । २ । २ । ११ ।

३-यमरूपवायु के उद्देश्य से । मिश्रयजुर्भाष्य पृष्ठ १३६ ।

४-यम सूर्य—यमायत्वा मखायत्वा पर महीधर पृष्ठ १३०८ । यजु० ७ । ११

यमयति नियच्छति सर्वमिति यम आदित्य यजु० ७ । १५ । यमोरश्मिभिरादित्यः । निरुक्त १२ । २६ ।

५—(यमाय) सबके नियम में रखने वाले आदित्य की प्रीति के लिये । मिश्र यजु० भाष्य ३७ । १५ पृष्ठ १३४४ ।

वरुरुचि का "निरुक्त समुच्चय" और इतिहास—

एवं नैरुक्त पक्षे योजना औपचारिकोऽयं मन्त्र व्याख्यान समयः निरुक्तत्र विरोधात् परमार्थेनत नित्य पक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः ।

दुर्गाचार्यः--

यः कश्चित् आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिकोवार्थ आख्यायते दिष्टप्रदिताव भासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारेहि नित्यमविवक्षित स्वार्थः।

प्रश्न—यजुः १२। ४ में "वामदेव्यम्" = वामदेव ऋषि के जाने व पढ़ाये ऐसा पाठ आया है। इससे वामदेव अवश्य ऐतिहासिक व्यक्ति था ?

उत्तर—"पितावै वामदेव्यम"। तारा ड ७। ६। १ के प्रमाण से सिद्ध है कि वामदेव्य पिता को कहते हैं। यह 'वामदेव्य' शब्द 'साम' का विशेषण है। कैसा साम ? ऐसे पुरुष का पढ़ाया वा जाना हुआ जिसका पिता ऋषि हो अर्थात सामगान और उसका यथार्थ ज्ञान वह प्राप्त कर सकता है जिसके कुल परम्परा से सामवेद के पढ़ने पढ़ाने का अभ्यास हो। खान्दानी गवैया ही बढ़िया गवैया हो सकता है। ऐसा ही औरों के विषय में भी जानिये। महीधर भी 'वामदेव्यंसाम' = वामदेव—पिता वा ऋषि से पढ़ाये वा पढ़े साम। ऐसा ही अर्थ करता है।

प्रश्न—यजुः १६। ७२ में है कि "आङ्गिरा विद्वान से किया हुआ विद्वान्।

उत्तर—यहां पर वेद में आङ्गिरा शब्द किसी ऋषि विशेष के लिये नहीं प्रयुक्त हुआ है किन्तु निरुक्तानुसार-"अङ्गारेष्वङ्गिराः" (निरुक्त ३। १७) अङ्गारों अर्थात् जो तपस्या से उत्पन्न हुआ

हो, जिसने अपना जीवन तपोमय बनाया हो - वह अङ्गिरा है। ऐसे तपस्वी का शिष्य आङ्गिरस् कहाता है। बस वेद में यही बताया है कि ऐसे विद्वान से विद्यापढ़े वा ऐसे को प्राप्त हो महीधरं भी-"आङ्गिरसः अङ्गनां रसः प्राणः"=अङ्गों का रस प्राण ऐसा अर्थ करते हैं। (आङ्गिरस-पदनामसु निघंटु) ५। ५

प्रश्न—यजु० ११। ३२ में दध्यङ् और अथर्वण ऋषि के नाम हैं ? 'दध्यङ्' किसी ऋषि का नाम नहीं है प्रत्युत ध्यानी पुरुष को 'दध्यङ' कहते हैं—देखो निरुक्त—"दध्यङ" "प्रत्यक्तो ध्यानमिति वा प्रत्यक्तमस्मिन्ध्यानमिति वा" ध्यान को प्राप्त हुआ अथवा पहुंचा हुआ है ध्यान इसमें उसको दध्यङ कहते हैं। स्थिर प्रकृति वाले को अथर्वा कहते हैं। देखो निरुक्त-"अथर्वाणोऽथन वन्तस्य र्वतिश्चरति कर्मा तत् प्रतिषेधः-"न हिलने वाले। 'थर्वति' चलने अर्थ वाला है, उसका निषेध सो (अथर्वा) न चलने वाले (स्थिर प्रकृति) निरुक्त ११ १८॥

आशय यह है कि निश्चल प्रकृति का पुत्र भी ध्यानी होता है। ऐसे पुरुष को राजा आदर से अपना शिक्षक बनावे।

प्रश्न—ऋ० १०। ३६। ४ में 'च्यवानं' शब्द आया है जो ऐतिहासिक हैं ?

उत्तर—'च्यवानं' के अर्थ निघंटु में बाहु के हैं। देखो निघंटु २।४। 'च्यवन' शब्द निघंटु में ४।८ पदनामों में पड़ा है। और इस शब्द की व्याख्या निरुक्त ४।१६ में आई है। "च्यवन ऋषि र्भवति। च्यावयिता स्तोमानाम्"। च्यवन ऋषि है। स्तोमोंका (अपने अन्दरसे) निकालने वाला। निरुक्त पक्षमें स्तोमों के वक्ता

को च्यवन कहते हैं। अतः— कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं, विशेषण होने से किसी विशेष पुरुष का नाम नहीं।

प्रश्न—ऋ० १।१८।१ में कक्षीवन्तं ऐसा पाठ है। यह ऋषि का नाम है

उत्तर—निरुक्तकार ने स्वयं इस मन्त्र का अर्थ किया है— "सोमानं सोतारं प्रकाशवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते कक्षीवन्तमिव य औशिजः। कक्षीवान् कक्ष्यावान् औशिजः पुत्रः। उशिग्वृष्टेः। कान्तिकर्मणः। अपित्वयं मनुष्यकक्ष एवाभिप्रेतः स्यात्तं सोमानं सोतारं मां प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते"!

मन्त्रार्थः—हे वेद पति परमेश्वर! जो मैं आप कमनीय का पुत्र हूं, उस मुझको उद्योगी पुरुष की तरह, अथवा मुझ मनुष्य को ऐश्वर्य संपादक और तेजस्वी कीजिये। निरुक्तों के अनुसार कक्षीवान् के अर्थ है कक्षा=छाती वा बगल, उस करके युक्त कक्षीवान्= मनुष्य। औशिजः कमनीय परमेश्वरस्य पुत्रः= भक्तः औशिजपुत्रः। कमनीय परमेश्वर का भक्त। पितापुत्र, गुरुशिष्य, स्त्री पुरुष अथवा माता पिता आदि शब्द आजाने से यह नहीं समझलेना चाहिये कि किसी संसारी पिता पुत्रादि का वर्णन है।

प्रश्न—ऋ० १। १६१। ४—५ मन्त्रों में ऋभु आदि के प्रश्नोत्तर हैं? त्वष्टा का भी संवाद है!

उत्तर—प्रश्नोत्तर आजाने से क्या यह सिद्ध हो गया कि यह वार्तालाप कोई संसारी पुरुष कररहा है? कदापि नहीं। "पृच्छामित्वा यत्परमन्तं पृथिव्याः०" कहने से और उत्तर "इयंवेदिः

परोअतन्तः पृथिव्याः" देनेसे क्या यह सिद्ध होगया कि ये प्रश्नोत्तर कोई बैठा हुआ इस संसार में कर रहा है ? ऋभु कौन हैं त्वष्टा क्या है, यह जान लीजिये। निघंटु २। १५ में ऋभुः नाम मेधावी का है। ऋभवः" निघंटु ५ ५। मे पदनाम में आया है। निरक्त ११। १५। १६। मेंइस शब्द की व्याख्या है। ऋभवः उरु भान्तोति वा ऋतेन भान्तीतिवा, ऋतेन भवन्तीतिवा। ऋभवः जो वहुत चमकते हैं, यज्ञसे वा सत्यसे चमकते हैं, यज्ञसेवा सत्यसे होते हैं। "आमित्य रश्मयोऽप्यभव उच्यन्ते"। सूर्य की किरणें भी ऋभुः कहाती हैं।

त्वष्टा—निघंटु ५। २। ६ में पद नाम में है। निरुक्त ८। १३ में "त्वष्टा तूर्णमश्नुते"=त्वष्टा=शीघ्र प्राप्त होता है। निरुक्ते १०। ३४ में त्वष्टा को सविता कहा है। १२। १२ में सविता नाम हैं।

ऋग्वेद म० । १। १६१ । ४ पर ग्रिनकिथा सा० का नोट—

४—Then Twashtra: represented as hiding himself for shame among the goddesses-probably the leberlial waters, when he saw this alternation of his work, and in anger proposing to slay the Rilhus who had this disgraced him. P. 213.

१ । १६१ । ५ पर भी ग्रिनकिथ साहव का नोट—

As twashtras thus had spoken, let us stay these men who have reviled cholice, drinting

cup of Gods, they gave themselves new names when some juce was shed, and under these new names the maiden welcomed them. P. 213.

इसपर नोट—New names: probably Rtus, seasons. in place of Ribhu. Ludwing.

The maiden: apparent by the daughter of Twashtras meaning, perhaps, as Ludwing suggests, the first Dawn of the year, of which Tvashtar is the god.

जो मत इन पश्चात्य विद्वानों का है वही मत सायण का भी है। आशय यह है कि ऋभु, त्वष्टा आदि ये सब आकाशीय मरुत्, सूर्य, उषा और जल इत्यादि के वर्णन हैं। पार्थिव, मानवी सृष्टि से इन मन्त्रों में वर्णित त्वष्टा, ऋभु, मरुत् और पति का कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न—ऋ० १।३४।१ और १।३५।१ में ऋभुओं का इतिहास है।

उत्तर—ऋभु के अर्थ मेधावी आदि बतादिये गये हैं ऊपर ग्रिफिथ साहब की सम्मति भी बताई जाचुकी है। अतः इनमें संसारी पुरुषों का कोई इतिहास नहीं है। अथर्व ११।६।१-२-३ में "ब्रूमो वयम्) से साधारण प्रार्थना है। कोई व्यक्ति विशेष किसी व्यक्ति विशेष से प्रार्थना नहीं कर रहा है। यह मनुष्यों की ओर से परमात्मा से प्रार्थना है।

६—अग्निरपि यम] उच्यते अग्नि का नाम भी यम का है निरुक्त १०।२१।

८—यम शूद्र है ! ब्राह्मणसर्वस्व पत्र पृष्ठ २६७। प्रमाण यजु० ४। ६। मनु० ७। ७५ ॥

8—Yam here said to mean' Agni as solar diety' निरुक्त। यमी = स्त्री-"यम्यै त्रयोदशी" यजु० २५। ५

9—Yam here to repr-asunttherising sun see—Ehni mythus Des yam. 621

यम्यै = न्याय करने वाली स्त्री के लिये। स्वा० दयानन्द।

यमस्येयं यमी-यमसम्बन्धिनी। महीधरः।

अग्निवा यम इयं यमी। गो ब्रा० उ० भा० ४। ८ से यमी अजाद्यतष्टप ४ १ ४ से यमा बनता है। यथा-"यमेइव पतमाने यदैतम् ॥ ऋ० १० १३ २

आशय यह है कि स्त्री अर्थ में 'यमी' बनेगा। और "यमा स्त्री लिंगमें होगा "यमस्य माता यद्यमान मयंहतो जाया विवस्वतो ननाश" निरुक्त १२ १२

अर्थात्—यम की माता यमी विवाही गई; महान् विवस्वान् की पत्नी छिप गई।

*वसिष्ठ —यद्वै नु श्रेष्ठ स्तेन वसिष्ठोऽयद्वस्तृतमो वसति

"अदब्ध व्रत प्रमतिर्वसिष्ठ इत्येग्नेर्वै देवानां वसिष्ठः"। ऐतरेय ब्रा० ५। २ पृष्ट १२२ इस पर साण भाष्य—"वसिष्ठोऽतिकायेन निवास हेतुः। हविर्वहनेन देवानां स्व स्व स्थाने निवास हेतुत्वादग्नेर्वसिष्ठत्वम्। अधिक निवास का हेतु, हवि लेजाने से देवताओं का अपने अपने स्थान पर निवास हेतु होने से अग्नि वसिष्ठ है।

तमो एव वसिष्ठाः ॥ शतपथ ८।१। १६। येन वै श्रेष्ठः तेन वसिष्ठः गो० प० ३।५। तं देवाश्च ऋषयश्चान्वुवन् वसिष्ठोऽयमस्तु यो नो यज्ञस्याग्रे गेयमन्वागिति गो० प० ३।६॥

जमदग्नयः— प्रजाग्निताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा (जमदग्नयः) निरुक्त ७।२४

अर्थात् प्रभूत अग्निवाले वा प्रज्वलित अग्नि वाले –जमदग्नयः हैं

वाचस्पतिः —वाचस्पतिर्वाचः पाता वा पालयिता वा । निरुक्त १०।१७ ॥ अर्थात्—वाणी का स्वामी वा रक्षा करने वाला।

टिप्पणि —सनातनी पं० भीमसेन जी वेदों को अपौरुषेय और ब्राह्मण ग्रन्थों को पौरुषेय मानते हैं –भीम ज्ञान त्रिंशिका का परिशिष्ट और पं० रघुनन्दन शर्मा जयपुरी का "वेद धर्म व्याख्यानम् ॥"

वेद और ब्राह्मण ग्रन्थ–

यद्यपि इस वेद ब्राह्मण ग्रन्थ विषय पर अनेक शास्त्रार्थ हो चुके हैं, जिनमें आर्यसमाज की ओर से ऐसे ऐसे पुष्ट प्रमाण दिये गये हैं कि जिनको देख और सुन कर बड़े २ दिग्गज काशीस्थ विद्वानों के छक्के छूट चुके हैं, परन्तु फिर भी शास्त्रार्थ कर्ताओं के लिये कुछ प्रमाण पुनः उद्धृत किये देते हैं जिससे समय पर विद्वन्मण्डली को एकत्रित मिल जायें।

ब्राह्मण ग्रन्थ और उनके भाष्यकार—

ऋग्वेद का ब्राह्मण ऐतरेय है। उसका भाष्य सायणाचार्य ने किया है। सायणाचार्य उसकी भूमिका में लिखते हैं कि—

"काश्चिद् खलु महर्षेर्बहव्यः पत्न्यो विद्यन्ते। तासां मध्ये कस्याश्चिदितरेति नामधेयम्। तस्या इतरायाःपुत्रो महीदासाख्यः कुमारः। एतच्चारण्यकाण्डे समाम्नायते। "एतद्धस्मवै तद्विद्वान् महीदास ऐतरेयः"। इति. तदीयस्यतुपितुर्भार्यान्तरपुत्रेष्वेव स्नेहातिशयोनतुमहीदासे। ततः कस्यांचि"द्यज्ञसभायां तं महीदास मवज्ञायान्यान्पुत्रान्स्वोत्संगे स्थापयामास, तदानी खिन्नवदनंमहीदास मवगत्यै तराख्या तन्माता स्वकीयकुल देवता भूमि मनुसराम। सा च भूमिर्देवता दिव्यमूर्तिधरा सती समागत्य महीदासाय दिव्य सिंहासनं दत्वा तत्रैनमुपवेश्य सर्वेष्वपि कुमारेष पण्डिताधिक्य मवगमय्यैतद्ब्राह्मणं प्रति भासन रूपं वरं ददौ।

मन्त्रार्थ—तेवाएतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहास पुराण मभ्यंतय यंस्तस्या भितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यन्त्राद्य द्यंरसोऽजायता। छा० उ० ३। ४। २।

अर्थात्—इतिहासपुराण अथर्वाङ्गिरा के कहे हुए हैं। तदनुग्रहात्तस्य महीदासस्यमनसाऽग्निर्वै देवानाभवम इत्यादिकं स्तृणुते स्तृणुत इत्यन्तं चत्वारि शदध्यायोपेतं ब्राह्मणं प्रादुरभूत्"। सायणचार्यकृत भूमिका।

इस कथा का आशय यह है कि-किसी 'वलु' नाम के महर्षि की बहुतसी स्त्रियां थीं। उनमें एक इतरा नामकी भी स्त्री थी। इस इतरा स्त्री का एक महीदास नाम का कुमार था। यह कथा 'अरण्यकांड में कही गई है—"एतद्धस्म वै तद्विद्वान् महीदास ऐतरेयः" इति।

अर्थात्—यह विद्वान् महीदास इतरा का पुत्र था। इस माता को छोड़कर पिता का अन्य पुत्रों पर अधिक प्रेम था

महीदास पर नहीं था। तिसके उपरान्त किसी यज्ञसभा में महीदास का अपमान करके उसके दूसरों भाइयों को स्थापित किया। तब महीदास को खिन्नवदन देखकर, इतरा उसकी माता अपने कुल देवता की भूमि को चली गई*। फिर वह भूमि देवता, दिव्य मूर्ति धारण करके, और महीदास के समीप आकर, दिव्य आसन देकर, और उसपर महीदास को बिठाकर तू सब भाइयों में श्रेष्ठ होजायगा ऐसा उस ब्राह्मण को सुन्दर वर दिया। उस वर के अनुग्रह से महीदास के मन से "अग्निर्वै देवानामवम०" से लेकर "स्तृणुते स्तृणुते०" यहाँ तक चालीस अध्याय युक्त ब्राह्मण प्रादुर्भूत हुआ। (मही=पृथिवी, इसके वरदान से उच्च हुआ अतः महीदास' नाम रक्खा गया)

टिप्पणी—एतद्दस्म वैतद्धि छनाह महीदास ऐतरेयः सकिं म एत दुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति सह षोड़शं वर्ष शत मजीवत्प्राह षोड़शं वर्षशतं जीवति य एवं वेद। छ०उ० ३। १६। ७।

इतरा का अर्थ-

इतरस्त्वन्य नीचयोः अमरकोषे—

इतरा=दासी कहाती है। इस इतरा का नाम मही भी था। 'दासा' न्त होने से पता चलता है कि शूद्र था।

कवषमैलूष—यह भी शूद्र था। यथा—"ऋषयोवै सरस्वत्य सत्रमास। तेकवषमैलूषं सोमादनयन्। दास्याः पुत्रः कितवोऽ

---

* अथवा स्मरण करती हुई

ब्राह्मणः कथंनो मध्ये दीक्षिष्टेति। ऐतरेय ब्राह्मण २। २६॥

इसही ने ऐतरेय-महीदास कहलाकर यज्ञ कराया और ऐतरेय ब्रा० रचा।

छन्दोब्राह्मणानि च तद् विषयाणीं। अष्टा० ४।२।६२

इसमें छन्द-वेद और ब्राह्मण पृथक २ गिनाये हैं।

याज्ञवल्क्यादिभ्य : प्रतिषेधो वक्तव्यः। याज्ञवाल्क्य के बनाये ब्राह्मण ग्रन्थों में निषेध किया है। (ब्राह्मण ग्रन्थ श० प० याज्ञवल्य का बनाया है।)

पुराण प्रोक्तेषु—"पुराणे ऋषियों के कहे ब्राह्मण ग्रन्थ" ऐसा पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र मुरादाबादी ने द० ति० भा० में लिखा है। तेनप्रोक्तम्। ४।३। १०१। और तित्तिरि वरतन्तु खण्डिको खाच्छण ४। ३। १०२।

सूत्रोंपर महाभाष्य—तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोकाः=तित्तिरि के कहे श्लोक।

वेद का लक्षण—यत्रवैछन्दासि तद्वेदाः॥ गोपथ ब्रा० प्रपाठक १ कंडिका ३३।

अर्थात्—जहां छन्द हों वह वेद है। ब्राह्मण ग्रन्थों में छन्द नहीं अतः वेद भी नहीं।

याज्ञवल्क्य जी का शतपथ—

१—शीती भूतं चं मांदृष्ट्वा भगवानाह भास्करः।
प्रतिष्ठास्यति ते वेदाः सखिलः सोत्तरो द्विज !॥ १०॥
कृत्स्नं शतपथं चैव प्रणेष्यसि द्विजर्षभ !

तस्याम्तेच पुनर्भावे बुद्धिस्तव भविष्यति ॥११॥ महाभारते ।

२—सूर्यस्यचानुभावेन प्रवृत्तोहं नराधिप !
कर्त्तुं शतपथं चेदमपूर्वं च कृतंमया ॥ २२ ॥
यथा भिलषितं मार्गं तथा तच्चोप यादितम् ॥ २३ ॥
महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३२३ । श्लोक २२ । २३ ॥

"तत्र शतपथ ब्राह्मणस्य मन्त्र व्याख्यान रूपत्वात् व्याख्येय मन्त्र प्रतिपादकः संहिता ग्रन्थः पूर्व भावित्वात् प्रथमो भवति ।"

इन श्लोकों का आशय यह है कि श्री याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि मैने ही अपनी इच्छानुसार जैसा चाहा वैसा शतपथ ब्राह्मण बनाया*। और जिस मार्ग का मैने अनुसरण करना चाहा किया।

शतपथ ब्राह्मण मन्त्रों के व्याख्यान रूप होने से, व्याख्येय मन्त्रों की प्रतिपादन करने वाली संहिता ग्रन्थ पूर्वहोनेसे प्रथमहै।

ऋ० सायण भूमिका—"मन्त्र ब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेद इति चेत ? न। ईदृशो मन्त्रः ईदृश ब्राह्मण नित्यनयो रद्याप्यनिर्णीतत्वात्"

अर्थात्—यदि यह कहा जाय कि मन्त्र और ब्राह्मण दोनों शब्दराशि वेद है, तो, यह नहीं हो सकता, क्योंकि अभी यह अनिर्णीत विषय है।

---

* जिस समय शतप्रथब्राह्मण का दर्शन हुआ था। उस समय भारत वर्ष में ब्रह्मविज्ञान और यज्ञविज्ञान दोनों ही का खूब प्रचार था। शतपथभाष्य पृ० ७८ पं० मोतीलाल कृत

गोपथ ब्राह्मण—

१—महर्षेर्वसिष्ठस्यपुत्र एतां वाचं ससृजे। गोपथ २। ७ अर्थात्—महर्षिवसिष्ठ के पुत्र ने इस वाणी को सृजा।

२—वसिष्ठ ऋषि प्रणीत गोपथ अथर्व वेद का सबसे पुराना ब्राह्मण है। अथर्वालोचन पुस्तक पं०अखिलानन्द लिखित पृ०४८ ब्राह्मण ग्रन्थोंपर पं० अखिलानन्द की सम्मति—"ब्राह्मणानां मन्त्र व्याख्यानत्वम्"।

१—ब्राह्मण भाग में वेदों के अतिरिक्त ऋषियों के बनाये हुए अनेक मन्त्र ऐसे हैं—अथर्वालोचन पृ० ३३ पंक्ति १६। १७।

२—शतपथ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य ने बनाया ऐसा *पतञ्जलि कहते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण इतरा नामक ऋषि पत्नी के पुत्र महीदास ने बनाया है ऐसा उसकी भूमिका में लिखा है ऐसा सायण मानता है अथर्वालोचन। पृ० ३१। ३४।

३—"ओंकार वेदेषु" १८। अथकार भाष्येषु" कात्यायन १। १६ यह लिखते हुए कात्यायन ने भी वेद और ब्राह्मण को भिन्न भिन्न माना है। अथर्वालोचन पृ० ३४।

४—व्याख्यान मूलपरक होने से मूल नहीं माना जा सकता है। अथर्वालोचन। पृ० ३४।

---

* "तदुहो वाच याज्ञवल्क्य":—निश्चय यह याज्ञवल्क्य ने कहा। शतपथ ७।

५—हमारी सम्मति में तो जहां वेद का साक्षात् विरोध हो वहां ब्राह्मण ग्रन्थ मानने योग्य नहीं है, परन्तु जहां विरोध न हो वहां पर ऋषियों के ब्राह्मणादि वाक्य भी अवश्य मानने योग्य हैं। अथर्वालोचन पृ० ३४। ३५।

६—उसके बाद जब ऐतरेय ऋषिने ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण लिखाथा'''वेदत्रयी समालोचन पृ० २१ पं० अखिलानन्द लिखित। पं० मोतीलाल जी शर्मा जयपुरी शतपथ भाष्यकार की सम्मति।

१—इसही विज्ञान को लक्ष्य में रखकर महर्षि ऐतरेय कहते हैं। शतपथ भाष्य वर्ग २ अङ्क १० पृ० ६७६ ॥

२—इसी अध्यात्मिक मनुविज्ञान को लक्ष्य में रखकर महर्षि तांड्य कहते हैं। मनुर्वैयत् किञ्चावदत्तद् भेषजं भेषजतायै। तांड्य ब्राह्मण २३। १६। ७॥

३—स्वयं शतपथ ने कृत्तिका पर वसन्त संपात माना है। (श० प० कां २) हम उत्तर भाग पर संपात देखते हैं। इस हिसाब से यह विषवत आज कृत्तिका से ५ नक्षत्र हटा हुआ है। प्रत्येक नक्षत्र के १३ अंश २० कला होती हैं। एवं प्रत्येक अंश को समाप्त करने में विषुवत् को ७५ वर्ष लगते हैं। इस हिसाबसे शतपथ को बने करीब ५ हजार वर्ष होजाते हैं। इन संपात भेदों से ही ब्राह्मणादि वेद ग्रन्थों के काल का निर्णय होता है। शतपथ भाष्य पं० मोतीलाल जयपुरी कृत पृ० २६२। सामश्रमी जी

---

* आदरायातशय।

—पुरासीद् विद्या पर पर्याय एवायं वेद शब्दः, तथायत्तच्च सर्वासामेव विद्यानां निधानानी मे मन्त्राः प्रदृष्टा, अतो मन्त्रकाले एव त्रिविधानां मन्त्राणां वाचकः सम्पन्नो वेद इति। ततो ब्राह्मणकाले ब्राह्मणेष्वपि ग्रन्थेषु मन्त्र मात्र पर एव व्यवहृतो वेद शब्दः पश्चात् सूत्रकालेतु मन्त्र ब्राह्मणयो रुभयोरेव विधानि धातत्वेनाद एवेति शय स्थिते रूभयोरेव बोधकः संजातो वेद इति। निरुक्तपर्यालोचन

* अर्थात्-पहले विद्याका पर्यायही वेद शब्द था। क्योंकि सबविद्याओं के भण्डार में 'मन्त्र' ही ऋषियों ने देखे। इसलिये मन्त्र कालमें ये ३ ऋग्, यजु,साम ही त्रयी वेदवाचक था। ब्राह्मण काल में मन्त्रसंहिता ही का नाम वेदरहा। सूत्रकाल में आदर के लिये मन्त्र और ब्राह्मण दोनों वेद कहे जाने लगे।

महाभाष्य—चतुर्वेदविद्भिर्ब्राह्मभि ब्राह्मणै महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदवाख्यानि तानि ब्राह्मणानि इति महाभाष्य ५।१ १

अर्थात—चारों वेदों को जानने वाले ब्राह्मण महर्षियों के कहे जो वेद व्याख्यान वह ब्राह्मण हैं।

निरुक्तकारयास्क—वेदों को निगम कहते हैं। ब्राह्मणों को ब्राह्मण यथा—इत्यपि निगमो भवति। निरुक्ते ५।३।३।४।

इति च ब्राह्मणम्-७।१२-१३।१०॥

यैमांसायामपि—

पूर्व पक्ष—विधिमन्त्रयो रैकार्थमैक शब्दात् ॥२३०॥

उत्तरपक्ष—अपिवा प्रयोग सामर्थ्यात् मन्त्रो विधान वाची यात् ३१।

तच्चोदकेषु मन्त्राख्या ॥ ३२ ॥

शेषे ब्राह्मण शब्दः ॥ ३३ ॥

शेषः परार्थत्वात् ३ । १ । २ ।

परिणाम—अनाम्नातेष्व मन्त्र नाम्नातेषु हि विभागः ३ । १ । १ । वेद ही स्वसामर्थ्य से सब कर्मों का विधान करते हैं। अतः प्रेरणा करनेसे वेद कहाते हैं। शेष ब्राह्मण शब्द से व्यवहृत हैं शेष पराया अर्थ करने के कारण कहाये गये।

महाभाष्यकार पतञ्जली महाराज ने चारों वेदोंको गिनाते हुए ये चार संहिता मात्र ही गिनाई हैं—"शन्नो देवी रभिष्टय० इषेत्वोर्ज त्वा०, अग्नि मीले पुरोहितम्० और अग्नआयाहि वीतये।

गोपथ—इमे सर्वेवेदाः सब्राह्मणाः। गोपथे।

अष्टाध्यायी— द्वितीया ब्राह्मणे । २ । ३ । ६० । चतुर्थ्यर्थो बहुलं छन्दसि २ । ३ । ६२ ।

छन्दो ब्राह्मणानि च तद् विषयाणि । ४ । २ । ६६ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु । ४ । ३ । १०५ ।

श्रोत्रियं छन्दोऽधीते । ५ । २ । ८४ ।

गोपथ ब्राह्मणमें वेदों के विशेषण ये दिये हैं—देखो प्रपाठक २—६ ।

सकल्पाः, सब्राह्मणाः, सोपनिषत्काः, सेतिहासाः,
सपुराणाः, सनिरुक्ता, सवाकोवाक्याः,
यदि ब्राह्मणों को वेद मानोगे तो इतिहास, पुराण, निरुक्त

और कल्प ये सबही वेद मानने पड़ेंगे।

अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसित मेतद् यद्ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। इतिहासः पुराणं विद्या 'उपनिषदः श्लोकाः सूत्रायनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि इति। शतपथ कां० १४। अ० ५। ब्रा० ४ कां० १०। पृ० ७११।

यहां पर भी इतिहास पुराण को विद्या ही कहा है। नहीं तो सूत्र, श्लोक अनुव्याख्यानादि सब ही वेद—स्वतः प्रमाण मानने पड़ेंगे।

प्रश्न—ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।

उच्छिष्टा ज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवा दिविश्रितः। अथर्व ११। ७। २४॥

इस मन्त्र में ब्राह्मण भाग को भी परमात्मा से उत्पन्न हुआ बतलाया गया है।

उत्तर—इस मन्त्र में कहीं ब्राह्मण ग्रन्थ ब्राह्मण अथवा किसी ब्रा० ग्र० का नाम तक नहीं है। हां "पुराणं यजुषासह"= यजुः के सहित पुराण ऐसा पाठ अवश्य है। सो पुराण विद्या विद्या सहित अर्थात् वह मन्त्र जो सृष्टि उत्पत्ति आदि का वर्णन करते हैं उसके सहित। ('पुराण' विद्या है यह आगे बतायेंगे)

प्रश्न—'यजुः' कह देने से सृष्टि विद्या आदि के भी मन्त्र आगये फिर पृथक् "पुराणंयजुषा सह" क्यों कहा है?

उत्तर—यजुः स्वयं दो भागों में विभक्त है—१ वह भाग जिसका संबन्ध केवल यज्ञ—कर्मकान्ड से है, दूसरा वह भाग

जिसमें सृष्टि विद्या बतलाई गई है जैसे—"ततोविराडजायत०" आदि ।

यदि ब्राह्मण ग्रन्थों से आशय होता तो 'यजुषा सह' के स्थान में 'वेदोभ्यः सह' ऐसा मन्त्र में आता ।

प्रश्न—अन्य तीन वेदों में भी तो सृष्टि उत्पत्ति आदि विद्यायें हैं, फिर वहां पर उनके साथ 'पुराणम्' शब्द क्यों नहीं सम्मिलित किया ?

उत्तर—यजुर्वेद में कर्मकाण्ड प्रधान है अतः 'पुराणं' शब्द उसके साथ लगाया गया । अन्य वेदों में सब विषय निश्चित हैं ।

वेद में एक ही ईश्वर की उपासना

१—दिव्योगन्धर्वो भुवनस्य यस्पति रेकएव नमस्यो विद्वी-ड्यःअथर्व २ । २ । ४ ॥

२—यएतंदेव मेकवृतं वेद । नहि द्वितियो न तृतियश्चतुर्थो नाप्युच्यते । न पञ्चमो न षष्टःसप्तमो नाप्युच्यते । नाष्टमों न नव मो दशमो नाप्युच्यते अथव १३।४। १५। १८।

३—सनः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामध एकएव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा अथर्व २ । १ । ३ ।

४—य एक इत्तमुष्टुहि कष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्यज्ञे वृष क्रतु । ऋ० ६ । ४५ । १६ ।

५— य एक इद्धव्यश्चर्षणी नामिन्द्रंतं गीर्भिरभ्यर्च आभिः य पत्यते वृषभो वृषण्या वान्त्सत्यः सत्वा पुरुमा रः सहस्वान् न ऋ० ६ । २२ । १ ॥

६—समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथि र्जनानाम् । स पूर्व्योनूतन मावि वासत् तं वर्त निरनु वावृत एकमित पुरु अथर्व ७ । २१ । १ ।

७—तमिदं निगतं सहः स एष एक एक वदेक एव । अथर्व १३ । १ । १२ ॥

८—कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मण वर्चस चान्नं चान्नाद्यं च । यएतं देवमेक वृतं वेद ॥

अथर्व १३ । २ । १४-१५ ।

९—स सर्वस्मै विवश्यति यच्च प्राणति यच्चन एतं देवमेक वृतं वेद ॥ अथर्व १३ । २ । १६ ।

१०—तमिदं न गत सहः सएषएक एक वदेक एव य एतं देवमेक वृतं वेद । अथर्व १३ । २ । २० ॥ ११—द्यावा भूमि जन यन्देव एकः ।

इन उपर्युक्त वेदमन्त्रों में परमात्मा की एकता बतलाई है । इससे सिद्ध है कि वैदिक धर्म एकही निराकार ईश्वर काप्रतिपादन करता है । बहुदेव वादी वेदों पर, बहुतसे परमात्मा वर्णन करने का दोष व्यर्थ ही लगाते हैं । वास्तव में वैदिक शिक्षा एक ही ईश्वर को बताती है ।

वेदों में परमात्मा के अनेक नाम—

१—यद्यपीन्द्रादयस्तत्र हूयन्ते तथापि परमेश्यैवेन्द्रादि रूपेणावस्थानादविरोधः । तथाच मन्त्र वर्ण—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथो दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान् ।

२—इन्द्रं मित्रं वरुण मग्नि माहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्। ए० सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नियमं मातरिश्वानमाहुः।
ऋ० १। १६४। ४६॥

३—भूरसि भूमिरसि अदितिरसि विश्व धाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं चच्छ पृथिवींह ं ह पृथिवीं माहि ं सीः
यजु० १३। १८।

४—इन्द्रो महा रोदसी पप्रथच्छव इन्द्र सूर्य मरोचयत्। इन्द्रेह विश्वा भुवनानि येभिर इन्द्रे स्वानास इन्द्रव :।
सामवेद प्रपा० ७। अ० प्र० ३। श्लोक ८ मन्त्र २।

५—प्राणाय नमो यस्यसर्वमिद ंवशे। योभूतः सर्वस्येश्वरो यास्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ अथर्व ११। २। ४ म० १॥

उपनिषत्—६ सब्रह्मा स विष्णुः सरुद्रः स शिवः सोऽक्षरस परम-स्वराट् स इन्द्रः स कालाग्निस्स चन्द्रमाः॥ ७॥ केवल उपनिषत् १। ८॥

मनुः ७—एतमग्नि वदेन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणामपरे ब्रह्मशाश्वतम्॥ मनु०१२।१२३

८—अद्यते ऽत्तिच भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते॥१॥
अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादो ऽमन्नादोऽहमन्नादः॥ २॥
तैत्तिरीय उपनिषत्। अनुवाक २। १०॥

९—अत्ताचराचर ग्रहणात्॥ वेदान्त दशन। १। २।९॥

१०—ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येकई शान ओजसा॥ऋ०८। ६। ४१

अर्थात्—पहला द्रष्टा ऋषि एकही ब्रह्मसे स्वामी है (ऋषि ईश्वर है)

११—एकैव वा महानात्मा देवता। १४।

१२—सूर्य इत्याचक्षते। १५।

१३—ससर्वभूतात्मा। १६।

१४—तदुक्तमृषिणा सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुशश्चेति। १७।

१५—तदुविभूतयोऽन्या देवताः। १८।

१६—तदप्येतदृचोक्तम्। १९।

१७—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरिति। २०।

कात्यायन कृत सर्वानुक्रमणी।

आशय यह है कि—सूर्य आदि सब ही परमात्माके नाम हैं। वही परमात्मा सब जगत् की आत्माहै। उसकी विभूतिसे ही दूसरे देवता हैं। प्रमाणार्थ "इन्द्रंमित्रं वरुणं अग्निम्" विद्यमान हैं।

१८—सुपर्णं वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।

ऋ० १०। ११४। ५।

अर्थात—कवि लोग वाणियों द्वारा एक होते हुए भी, उस सुपर्ण ब्रह्म को, बहुत प्रकार का कहते हैं।

स्वामी दयानन्द बंगाली की सम्मति—

१९—अवश्य जहां ज्ञान के साधन में अथवा उपनिषत् उक्त ज्ञानाधिकार या आध्यात्मिक तत्वों के वर्णन में इन्द्र आदि शब्द परमात्मा के वाचक होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। सत्यार्थ विवेक समु० २ पृष्ठ १६८।

(ईश्वर के नाम के साथ कार्य आरम्भ करे)

१—पुरस्तादोंकारं प्रयुङ्क्ते । गोपथ ब्रा० प्रपा० १ ।कां० २२ ॥

२—ओमित्युक्त्वा वृत्तान्तशः शमित्येवमादीन्शब्दान् पठन्ति-पतञ्जलि ॥

३—ओमित्यग्ने व्याहरेत् । दत्तात्रेय उपनिषद् । २ । १ ।

४—ओमितिक्ता व्याहरेत । नारायणाथर्वशिर उपनिषद् ।३।

५—ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्तेच सर्वदा ।
स्रवत्यनोंकृतंपूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति । मनु० २ । ७४ ।

अथ—वेद के पढ़ने के प्रारम्भ में सदा प्रणव (ओ३म्) का उच्चारण करे और अन्त में भी । यदि पूर्व में और अन्त में प्रणव का उच्चारण न करे तो उसका पढ़ा हुआ धीरे २ नष्ट हो जाता है ॥७४॥

इन प्रमाणों के होते हुए 'श्रीगणेशायनमः, हनुमतेनमः, भैरवायनमः' आदि सब उड़ गये ।

वेदोंपरकियेगये आक्षेपों के उत्तर

प्रश्न—स्त्रियों का तीर्थपर दान करना लिखा है:—

(१) अदान्मे पौरुकुत्स्यः *पञ्चाशतं त्रसदस्युर्धूनाम् ।
मंहिष्टो अयंः सत्पतिः॥ ऋ० ८ ।१९।३६।

उत्तर—वेद में स्त्रियों का दान करना कहीं नहीं लिखा है ।

अर्थ—(पौरुकुत्स्यः) पुरुकुत्स-विविध शस्त्रों वाले योद्धाओं में तेजरूप से विद्यमान (कुत्स इति वज्रनाममुपठितम्) निरुक्त

*पौरुकुत्स्य शब्द ऋ० ८ । १९ । ३६ और ऋ० ५ । ३३ । ८। पर भी आया है ।

२।२०। (मंहिष्ठः) सबसे महान् (सत्पतिः) सज्जनों का पालक (त्रसदस्युः) शत्रुओं को त्रास देने वाला (अर्यः) प्राप्तव्य परमात्मा ने (मे) मेरे उपभोगार्थ (वधूनाम्) वहनशील नदी आदि पदार्थों को (वधूनदीनाम निघंटु १।१३) (पञ्चाशत) पचासों संख्या वाले समुदाय को (अदात) उत्पन्न किया वा दिया।

२–उतमे प्रयियोर्वयियोः सुवाससंत्वा अधितुग्वनि ।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद् वसुर्दियानांपतिः ।
ऋ० ।८।१६।३७।।

अर्थः— (उत) और (मे) मेरे लिये (प्रयियोः) प्रयाणशील अथवा चेष्टाश्रय (वयियोः) वाहन क्रिया सिद्ध (सुवास्त्वा) सुन्दर वस्तु=गृह तुल्य शरीर के (अधितुग्वनि) तीर्थ रूप मध्य में "तुग्व तीर्थं भवति तूर्णमेव तदायन्ति" निरुक्त ४।१५।२०। (श्यावः) प्रकृत्याश्रित होकर (तिसृणाम्) तीन (सप्ततीनाम, सत्तर=दोसा सत्तर गाड़ियोंका (प्रणेता) निर्माता है (दियानाम्) वह नश्वर पदार्थों का (पतिः) पालक परमात्मा (वसुः) अन्तकरण वासी (भुवत्) हो।

इन मन्त्रा में यदि कोई शब्द विवादास्पद है तो वह 'वधु' शब्द है। वधू शब्द के दो अर्थ हैं-१ स्त्री १ नदी*। अब विचारणीय यह बात है कि वेद में वधू शब्द केवल स्त्री अर्थ में ही आना चाहिये अथवा नदी अर्थ में भी ? यदि केवल स्त्री अर्थ

*वधू के अर्थ भाष्यकारोंने 'घोड़ी' के कहीं २ किये हैं।

में ही आना चाहिये तो निघंटु १-१३ में जो नदी अर्थ में वधू शब्द आया है, यह कहां पर चरितार्थ होगा ? सायणाचार्य इत्यादिकों ने सब स्थानों पर वधू के अर्थ नदी के न करके स्त्री के ही किये हैं,मानो निघंटुकार ने नदी अर्थ व्यर्थ ही लिख दिया है ? इसलिये यहां पर नदी ही अर्थ प्रकरणानुसार होना चाहिये। तीर्थ, भले प्रकार बसने योग्य ये शब्द बतलाते हैं कि नदी ही अर्थ उपयुक्त है।

वैसे भी ऋषियों को स्त्रियों की क्या आवश्यकता ? हां नदियों को विशेष आवश्यकता है जिनमें वह स्नान करे, सुन्दर घाटों पर जाकर पार उतर सकें, उन नदियों के किनारे बसकर तपोमय जीवन व्यतीत करें, राजा अथवा ईश्वर, इस प्रकार का दान प्रजा को किया करें, ऐसी प्रार्थना, वा राजा को आज्ञा अन्य स्थानों पर भी वेद ने दी हैं—यथा—

१—त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रादश गोनाम्। ददुष्प्रजाय साम्ने। ऋ० ८। ७। ४७॥

२—उदानट् ककुहो दिव मुष्ट्राश्वतुर्युजोददत्। श्रवसा यादवं जनम्। ऋ० ८। ७। ४८॥

आशय यह है कि तीन सौ घोड़े, दससहस्र गायें साम-वेद गाने वाले को देनी चाहिये। इसही प्रकार जो मनुष्य समुदाय समिति को चार ऊंट देता है वह अभ्युदय से प्रवृद्ध होकर स्वर्ग मार्ग से और कीर्ति से व्याप्त होता है (यहांपर दान की महिमा बताई है। इसही प्रकार वेदों में अनेक स्थलों पर दान की वस्तुयें

गिनाई हैं।

यथा ३—तामे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम्। यथा चिच्चैद्यः कशुः। ऋ०८। ५। ३७।

४—योमे हिरण्य सन्दृशो दशराज्यो अमंहत।

अधस्वदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्मा अभितो जना।ऋ०८ ५। ३८।

आशय यह है—ज्ञानी शासक जिस प्रकार नई संभजनीय जान करके मुझे सौ ऊंट और दस सहस्र गौऐं दे।

आशय यही है कि राजा सदैव विद्वानों का आदर करता हुआ उनके लिये आवश्यकीय वस्तुयें देता रहे।

वेद और मोनियर विलियम—

The Veda do not support any of the objectionable practices. superstition and the operion of the present day for which they were over through ignorance of their contents supp osed to be authority. अर्थात्—वेद कोई भी बात अपने भीतर नहीं रखते न समर्थन करते हैं जो आक्षेपके योग्य हो इस समय जो उनके विषय में सम्मति रक्खी जाती है उनसे वे नितान्त अनभिज्ञ थे।

यजुर्वेद के विषय में सम्मति—Yajur Veda is the most precious gift for which the west had been ever indebed to the East

Wilson's Essay Viii P. 304.

अर्थात्—यजुर्वेद एक बहुमूल्य, पश्चिम के लिये उपहार है, जिसके लिये पश्चिम सदैव पूर्व का ऋणी रहेगा।

नोट—वैदिक धर्म क्या है! इस विषय के प्रचुर प्रमाण पश्चिमी विद्वानों के मेरे बनाये धर्मशिक्षा के चतुर्थ भाग में पाठकगण देखें। यहां पर विस्तारभय से नहीं दिये।

प्रश्न—स्त्रियों का दान तो निरुक्तकार भी मानते हैं जैसे—"स्त्रीणां दान विक्रियात सर्गा विद्यन्ते न पुंसः।" अर्थात-स्त्रियों का दान बिकरी, और त्याग है, पुरुषों का नहीं?

उत्तर—यहां पर दान से वह आशय नहीं है जो आप लेते हैं, किन्तु उस दान से है जो विवाह के समय किया जाता है। कन्यादान शब्द विख्यात ही है। विक्रय वह कहाता है जो पिता कुछ धन लेकर कन्या का विवाह करते हैं। त्याग स्वयंवर के समय होता है—कन्या वर को वरण करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दी जाती है।

इसके अतिरिक्त निरुक्तकार स्त्रियों के बेचने की आज्ञा तो नहीं देते किन्तु कहते हैं कि ऐसा देखा जाता है। सम्भव है कि कोई नीच पुरुष वास्तव में स्त्री बेचते हों।

वेद में बहु विवाह

प्रश्न—वेदमें एक स्त्री के बहुत से पति और एक पति की बहुत सी स्त्रियों का विधान है यथा—

१—सुकिं शुकं बहतुं विश्वरूपं
हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रं।
आरोहसूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं
पतिभ्यो बहुतं कृणुत्वम्॥

अथर्व १४। १। ६१॥ ऋ० १०। ८५ २०॥

उत्तर—इस मन्त्र में—"पतिभ्यः" शब्द पर आक्षेप है कि बहुवचन अर्थात् एक कन्या के लिये बहुत से पति कहे गये हैं। इस बहु बचन के दो आशय हो सकते हैं—पहला यह कि 'पतिभ्यः' का अर्थ 'पालकेभ्यः' पालन करने वालों के साथ वा लिये हैं। पारस्कर गृह्य सूत्र में आये हुए-'पतिभ्यो जायांदाग्ने' पर कर्काचार्य आदि—'पालकेभ्यः' ही अर्थ करते हैं। सुसराल में जो देवर, जेठ और श्वसुर आदि हैं वे सबही पालक हैं। दूसरे वेदों में बचन व्यत्यय भी होता है इसलिये यहां पर 'पतये' के स्थान में 'पतिभ्य' कहा है। पैप्पलीय संहिता में 'पतये वस्तु कृणुष्व' ऐसा पाठ रक्खा है। अथर्व— १४। २। ३२। में पत्यासंभवेह।' ऐसा वाक्य आया है। ...हे नारि... एक बचन है। 'पतये' भी एक बचन है, अतः एक स्त्री के लिये एक ही पति वेद से सिद्ध है।

२— १४। २। १। में 'पतिभ्यो' जायांदाग्ने' में पतिभ्य 'पालकेभ्य' है। यह पूर्व बता दियागया है।

निम्न लिखित ऋग्वेद के मन्त्रों में सर्वत्र 'पति' के लिये एक बचन आया है— ऋ० १०। ८५। ७ में 'पतिम्' ।१०। ८५। ६ में 'पत्ये'। इसही सूक्त को १२वें मन्त्र में 'पतिम्' ।२४ वें में 'सहायत्या दधामि ।२७ वें में 'एनापत्या' है २८ वें में 'पतिः'। २९ वें में 'पतिम्' ३० वें में 'पतिः'। ३६ वें में 'मयापत्या'।३९ वें में 'यः पति जीवाति'। ४० वें में 'ते पतिः'।४७ वें में 'दधातु नौ' है। यह द्विवचन है—एक पुरुष और एक स्त्री ॥२॥

यह १० वें मण्डल का ८५ वाँ सूक्त सारा का सारा ही विवाह सम्बन्धी है। इस सारे सूक्त में केवल १ स्थलपर—३८वें मन्त्र में 'पतिभ्यः' बहुवचन आया है शेष सब ठौर एक वचन ही आया है। जैसा कि हमने उपर्युक्त उदाहरणों में बतला दिया है' ऋ० १०।८५।२० में भी 'पत्ये' एक वचन आया है। हाँ अथर्व वे० १४।१।६१ में 'पतिभ्यः' आया है। सो पालन कर्त्ता सुसर, देवर और जेठ अर्थ में है।

प्रश्न—अथर्व २।३६।७ में—"पतिभ्य स्त्वामदुः०" आया है?

उत्तर—इस सूक्त के पहले ही मन्त्र में बताया है कि कन्या के लिये योग्य पति होना चाहिये। और यह सूक्त इस ही विषय का प्रतिपादन करता है। अतः प्रथम ही मन्त्र में पति के लिये एक वचन आया हुआ है। यथा—"आनो अग्ने सुमतिं सं भलो गमेदिमां कुमारी सहनो भगेन। जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्मै" ॥अथर्व २। ३६। १। इस मन्त्र में बताया है कि "समनेष् वरेषु" समान चित वाले वरों में—संभलः= उत्तम रीति से ग्रहण करने हारा, वल्गुः—मधुर बचन बोलने वाला, ऐसे पत्या—पालन करने हारे के साथ सौभाग्य हो। (सर्वत्र एक वचन है)

* दूसरे मंत्र में 'सोमजष्टं, ब्रह्मजष्टं आदि एक बचन हैं। तीसरे में भी पति एक वचन है। चौथे में—पत्या' एक वचन है पाचवें में —'वरः' एक वचन है। छटे में भी "परं और परः" एकवचन है। सातवें में वचन व्यत्यय

एक पुरुष की बहुत सी स्त्रियां—

प्रश्न—शतपथ ब्राह्मणमें "तस्मादपि एकस्य प्रथं से बह्वो जाया भवन्ति।" ६। ४। १। ६। एक पुरुष की बहुत सी स्त्रियां होती हैं, ऐसा लिखा है ?

उत्तर—यहां पर ऐसी विधि नहीं है। केवल यह साधारण नियम बताया है कि—एक नर को बहुत सी मादायें होती हैं—एक नर बहुतसी मादाओं को गर्भवती कर सकता है। यही आशय है, 'पुंस' के अर्थ नर होते हैं न कि पति। जाया के स्त्री नहीं होते किन्तु मादा मात्र होते हैं। दाम्पत्यभाव का वर्णन नहीं है। यह नियम पशु पक्षी, मनुष्य और कीट पतङ्ग सब ही के लिये है।

प्रश्न—शतपथ में और भी लिखा है—'चतस्रोजाया' उपक्लृप्ताभवन्ति' १३। ४। १ ८॥ चार स्त्रियां करनी चाहिये।

उत्तर—इसके अर्थ हैं—चार स्त्रियां नियत की जाती हैं। यहां पर विवाह करने की आज्ञा नहीं है। न विवाह का प्रकरण ही है। 'उपक्लृप्त'=To appoaint-नियत करना। आप्टेमहाशय

प्रश्न—तस्मादेकस्य बह्वयो जाया भवन्ति नैकस्यै बह्वः सहपतयः। ऐत ब्रा० ३। २। २३ पृ० । ३७।

अर्थात्-इसलिये एक की बहुत सीस्त्रियां होनी चाहियें न कि एक स्त्री के बहुत से पति ?

उत्तर—इसमें नैसर्गिक नियम बताया है कि एक नर बहुत सी माताओं में सन्तान पैदा कर सकता है, परन्तु एक मादा

बहुत नर नहीं रख सकती। इस वाक्य पर महाभारत नीलकंठी टीका आदि पर्व अध्याय १९५ में देखिये—

'सह' इतिः युगपत् बहुपतित्व निषेधो वक्तव्यो नतु समय भेदेन।

अर्थात्—'सह' शब्द से यह आशय है कि एक साथ बहुत से पतियों का निषेध है न कि समय भेद से। (विधवा विवाह हो सकता है)

प्रश्न—ससंस्तिरो बिष्टिरः संगृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आशये। पुनर्वर्धन्ते अपियन्ति देव्य मन्यदर्पः पित्रोः कृण्वन्ते-सचा। ऋ०१।१४०।७। इसमें बहु विवाह का विधान है ?

उत्तर—इस मंत्र के भावार्थ में श्री स्वामी जी क्या लिखते हैं? देखो "पैर्विद्यावद्भिः सह विदुषीणां विवाहो जायते ते नित्यं वर्धन्ते। ये सद्गुणान् गृह्णन्ति तेऽत्र पुरुषार्थिनो भूत्वा जन्मान्तरेपि सुखिनो जायन्ते।

भावार्थ—जिन विद्वानों के साथ विदुषी स्त्रियों का विवाह होता है। वे विद्वान जन नित्य बढ़ते हैं। जो उत्तम गुणों का ग्रहण करते वे यहाँ पुरुषार्थी हो कर जन्मान्तर में भी सुख युक्त होते हैं।

एक स्त्री के दो पति नहीं हो सकते—यदेकस्मिन्यूये द्वे रशते परिव्ययति तस्मादेको द्वे जाये विन्दते यन्नकांगंरशन द्वयोर्पूपयो परिव्ययति तस्मान्नैका द्वौपती विन्दते। तौत्तरीय संहिता ६।६।४।३

अर्थात्—एक स्त्री का एक ही पति हो न कि दो।

प्रश्न—राजा हरिश्चन्द्र क[illegible] नयां थीं।

उत्तर—राजा हरश्चिन्द्र की केवल एक ही रानी "शेव्या" थी। सौ रानियों से आशय सौ वर्ष की आयु से है।

प्रश्न—याज्ञवल्क्य ऋषी की दो स्त्रियां थीं ?

उत्तर—उनमें से एक ब्रह्मवादिनी थी जोगृहस्थ से पृथक थी। इसलिये दूसरा विवाह-आपत्काल में किया था। आपत्काल आदर्श नहीं होता।

दो स्त्रियां करने का निषेध—उभेधुरौ वन्दि राविन्द मानोऽन्तर्यो नवेचरति द्विजानिः। ऋ० १०। १०५। ११॥

आदर्श विवाह—यदि देखना है तो ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय १२खंड १३ - २३ पृष्ठ ३५१ देखें।

एक स्त्री के दश पति —

मन्त्र—उतयत् पतयो दश स्त्रियः पूर्वं अब्राह्मणः। ब्रह्मचेद्हस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा। अथर्व ५।१७।८।

भाषार्थः— (उत) और (यत्) यदि (स्त्रियाः) स्त्री के (पूर्वं) पहले (दशपतयः) दश पालक, पति (अ ब्राह्मणः) ब्राह्मण न हों और ऐसी कन्या का (हस्तं) हाथ पाणि ग्रहण की विधि से (चेत्) यदि (ब्रह्मा अग्रहीत्) ब्राह्मण ने ही ग्रहण किया हो तो उनमें (सः एव) वह ही (एकधा पतिः) उसका एक मात्र पति है।

मन्त्रः— ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः। ६।

अर्थः—ब्राह्मण ही पति हो न क्षत्री न वैश्य।

मन्त्र :—पुनर्वैदेवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः।१०।

अर्थः— देवता विद्वान् कन्या का पुनर्दान करते हैं। मनुष्य कन्या का पुनर्दान करते हैं।

आशय यह है कि-यदि एक किसी कन्या के दश दावेदार हों तो राजा को उचित है कि उस कन्या को ब्राह्मण को दिलावे।

कात्यायन का मत

वृतु यद्यन्य जातीयः पतितः क्लीवएव वा।
विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोऽपि वा॥
उद्वापि देया साऽन्यस्मै सहा भरण भूषणा॥

[illegible]त् यदि वर सजातीय, पतित, क्लीव, विकर्मस्थ, सगोत्र, दास, [illegible]रोगी हो तो विवाही हुई भी दूसरों को वस्त्राभरण सहित देदे।

मीमांसा और बहु विवाह

शङ्का—श्राद्धवदिति चेत्? मीमांसा ६।८। १५।

अर्थ—यदिश्राद्ध के समान उपनयन सम्बन्धी हवन आहित और अनाहिताग्नि दोनों अग्नियों में किया जाता है, ऐसा माने तो ठीक नहीं। क्यों कि—

उत्तर—नश्रुति प्रतिषेधात्॥ ६।८। १६॥

अर्थः—दो भार्याओं से विवाह का श्रुति निषेध करती है।

स्त्री यज्ञ के लिये है—सर्वार्थत्वाच्च पुत्रार्थो न प्रयोजयेत्।
६।८। १७॥

अर्थः—स्त्री का प्रयोजन यज्ञ में सम्मिलित होने रूप धर्म कार्य के लिये भी है; केवल पुत्र के ही लिये नहीं।

सोमपानस्तु प्रायणं द्वितीयस्य तस्मादुपयच्छेत् ॥

६। ८। १८॥

अर्थः—सोमपान एक ही स्त्री करती है, अतः दूसरे की इच्छा का निषेध है।

परपुरुष सम्बन्ध का निषेध—

यानि भद्राणि बीजान्ऋषभा जनयन्ति च।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसू धेनुका भव॥

अथर्व—।३।२३।

(ऋषभाः*१) वीर्य सेचनमें समर्थ, उत्तम पुरुष (यानि) जिन (भद्राणि) कल्याणकारी (बीजानि*) बीजों को (जनयन्ति) अपने शरीर में उत्पन्न करें एवं गर्भ में आहित करें (तैः) उन अमोघ बीजों से (त्वं) तू (पुत्रं विन्दस्व) पुत्र को प्राप्त कर (सा) वह तू (प्रसूः) उत्तम रीति से पुत्रों को उत्पन्न करके (धेनु का भव) दूध पिलाने वाली सच्ची माता बन।

वेदों में अश्लील प्रार्थना और उसका उत्तर

प्रश्न—वेदों में अश्लील प्रार्थना दिखाई देती है। यथा—

यावदङ्गीन पारस्वतं हास्तिनं गार्दभंचयत्।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत्तेवर्धतां पसः॥ अथर्व—

६। ७२। ३॥

१ऋषभके अर्थ बैल नहीं हैं वीर्य सेवन में समर्थ पुरुष के हैं

* बीजम्—अपत्य नाम। निघंटु २। २।

उत्तर—इस अथर्व वेद के ७२ वें सूक्त में केवल ३ मन्त्र हैं। इन तीनों मन्त्रों में यह बताया है कि मनुष्य का प्रजन्न इन्द्रिय शरीर के अनुपात से होनी चाहिये। वायु वेग से सन्तान उत्पन्न होने योग्य प्रजननेन्द्रिय बढ़ कर पुष्ट हो जाता है। यदि इससे न्यूनाधिक हो तो रोग है। तीसरे मन्त्र में बताया है कि देखो जितने बड़े २ पशु हैं उनका प्रजननेन्द्रिय, उनके शरीर के अनुपात से होता है—क़द के मुआफ़िक या डील डौल के अनुसार होता है। हे मनुष्य! तेरी प्रजननेन्द्रिय भी तेरे अङ्ग के अनुपात से हो। मनकी लहर से, कामी बनकर अनुचित वृद्धि की इच्छा मतकर। प्रायः कामी जन इस प्रकार की व्यर्थ कामनाओं के वशीभूत हो अपने को नष्ट भ्रष्टकर लेते हैं। संसार में यह देखा जाता है कि मनुष्य, अन्य अङ्ग की वृद्धिकी अपेक्षा, इस इन्द्रिय वृद्धि का यत्न अधिक करते हैं। जिसका कभी२ भयङ्कर परिणाम निकलता है। अतः दयालु परमेश्वर ऐसे कामी जनों को उदाहरण देकर समझाते हैं कि —

मन्त्रार्थ (यावदङ्गानम्) जितने अङ्गों वाला शरीर (पारस्वतम्) पूर्ण पुरुष का होता है। और (यत) जितना (हास्तिनंमदिभंच) हाथी का गधे का अथवा (वाजिनः अश्वस्य यावत्) वेगवान्—बलवान् अश्वका दृढ़ पुष्ट अङ्ग अमोघ वीर्य होता है (तावत् ते पसः वर्धताम्) हे पुरुष! उतना ही तेरा प्रजननेन्द्रित पुष्टहो।

आशय यह है कि हाथी, घोड़े और गधे आदि को सब ही इन्द्रियां उनके डीलडौल के अनुसार हैं। धातु पुष्ट की औषधियां भी अश्वगन्धा' करके ही कही जाती हैं। इसलिये उदाहरण देकर बतलाया है कि इन पशुओं के समान मनुष्य अमोघवीर्य बने। 'यावत्=जितना शब्द' हस्ति, गर्दभ, वाजिन सब के साथ लागाना चाहिये। जैसे जितनी इन्द्रियां हस्ती की, जितनी गधेकी और जितनी इन्द्रिय घोड़े की—शरीर के अनुसार हैं, उतनी ही तेरी भी वृद्धि को प्राप्त हो।

अर्थात्—तेरी इन्द्रिया भी तेरे शररी के अनुसार हो न्यूनाधिक होने से रोगी होगा। "तावत्तेबर्धतांपसः" इनकी अनुवृत्ति भी सब शब्दों के साथ रहेगी। जैसे हाथी को इन्द्रिय की वृद्धि उसके शरीर के अनुसार, गधे वा अश्व की इन्द्रिय उनके शरीर अनुसार वृद्धि को प्राप्त होती है। वैसे ही तेरी इन्द्रिय भी तेरे शरीर के अनुसार वृद्धिको हो। "यावत्" अंगीनं परास्वतं= है कि जितना पूर्व पुरुष का अङ्ग होता है, इस के कहने से सिद्ध जतनी पूर्णपुरुष की प्रजनेनन्द्रिय होती है उतनी वृद्धि को प्राप्त हो।

राष्ट्र पक्ष में भी इसके अत्यन्त उपयोगी अर्थ होते हैं। उनको भाष्य में देखो।

यसः (यजु० २३। २२) राष्ट्रंपसः। शतपथ—१३। २। ६। ६॥ पृ० ६४६ तै० ३। ६। ७। ४ षवः=समवाये धातु से वर्णव्यत्यय=पसः=राष्ट्रम्।

इयं वेदिः परो अन्त पृथिव्याः० ऋ० क० १।१६४। ३५ पर ग्रिनक्रिथ सहाब—

This alter is the corth's extrimist limit; this sacrifice of ours is the World's centre. The stalion's seed prolific is the some; this Brahman highest heaven where speach abideth 35.

note:—the stalion: Wyau's or father Heaven.

अर्थात—यह वेदि पृथिवी का पर अन्त है, यह यज्ञ भुवन की नाभि है; अश्व का वीर्य सोम है; ब्रह्म परमव्यापक वाणी है।

इस पर नोट—

अश्वः—द्यु अथवा पिता आकाश—स्वर्ग।

यदि अर्थ अश्व के श्री स्वा० दयानन्द जी ने, यही सायण ने, यही ग्रिनक्रिथ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने माने हैं।

अश्व शब्द के अनेक अर्थ हैं—

यथा—वज्रोवा अश्वः। शतपथ ४। ३। ४। २७।

२—वीर्यंवा अश्वः। ,, ,, २। १। २। ४

३—अग्निर्वा अश्वः। ,

४—राष्ट्रंवा अश्वः। तैत्तीरिय सं० ५। ७। ५२।

५—असौवा आदित्या अश्व मेघः अन्नं वै पशवः। शतपथ।

वेद भगवान् ऐसी प्रार्थना करने का निषेध करते हैं जिसमें अश्लीलता, असम्भवता, दूसरे को हानि पहुंचाना, पाप कर्म

करने का भाव और किये हुए पापकी क्षमा सम्मिलित हों। यथा--

नत्वा रासीयाभिशास्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य ।
नमे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥

ऋ० ८।१९।२६॥

भाषार्थः—हे वसो ! (त्वा) आपको (अभिशस्तये) मिथ्या अपवाद और हिंसादि दोषों की निवृत्ति के लिये (नरासीय) न पुकारूं और न प्रार्थना करूं (सन्त्य) हे सर्व संभजनियदेव। (पापत्वाय) अपने कृत पापों को मिटाने के लिये भी (न) आप को न मनाऊं। और (न मेस्तोता) मेरे मित्र ही ऐसा करें (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप। मेरा (अमतीवा) दुर्मति (दुर्हितः) शत्रु भी (न) नहीं और (पापया) पापमयी बुद्धि से मुझ को वह बाधा (न) न पहुंचाव ॥

प्रश्न—वेद में सोम को अश्वका रेतस्=वीर्य कहा है। यथा-- "अर्थं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः०" ऋ०१ ।१६४ ।३५ ।

उत्तर—यहाँ पर अश्व के अर्थ घोड़े के नहीं हैं किन्तु बादल, आकाश, सूर्य अथवा द्युलोक के हैं देखो स्वामी भाष्य और पिनाकथ सा० की सम्मति—The Stalion=Wyaus ar father Heaven. P. 225.

आशय यह है कि-सोमलता द्युलोक से सीधे आये हुये सोम तत्व से बुद्धिको प्राप्त होती है। इसका विशेष विवरण सोम के वर्णन में आयगा। घोड़े के बहुत से अर्थ हैं--देखो

ऋ० १। ६४ ६ पर ग्रिफिथ सा०

The strong horse=is the rain clouds.

अश्व के अर्थ जलधर के हैं। रेतस=जल अर्थ में है।

देखो—निघंटु १। १२। जल के सौ नाम वेद में आते हैं।

वेद बैल पर पृथिवी को स्थापित बताता है।

प्रश्न—१-ऋतस्य बुध्न उषसामिष रायत्वषा मही रोदसी आविवेश। ऋ० १। ६१। ७ बैल को पृथिवी का धारक बताया है।

२-कविर्न निरायं विदथानि साधन वृषा यत्सेकं विपियानो अर्षति। ऋ०४। १६। ६। में भी बैल की चर्चा है।

३-सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वां अग्ने सहसा प्रास्य न्यात् ऋ० ५। १। ८।

और भी 'उक्षादाधार पृथवी,

अनड्वादाधार पृथवी आदि वचन देखे जाते हैं?

उत्तर—१। ६१। ७ में वृष के अर्थ सूर्य के हैं यथा—

Bull the sun. ग्रिफिथ

४। १६। ३ में वृष के अर्थ इन्द्र के हैं—

५। १। ८ में वृष शब्द के अर्थ—

यथा— The bull:— the mighty Indra. p. 411

ग्रिफिथ साहब—

The Bull with thousand horns. Agni is the sun with his countless rays. p. 466.

अर्थात् बैल हजारों सींगों के साथ=अग्नि सूर्यस्थानी अपनी अनन्त किरणों के सहित।

ऋ० १। ३८। ८ पर निरुक्त—

The glorious Bull the mighty Agni strong as a bull.

वृष=सूर्य है'—यस्ते शृङ्ग वृषोनपात् प्रणप्तात् कुराडपायः । यस्मिन् दधृ आमन ॥ ऋ० ८। ३। १७। १३।

अर्थात् सूर्य कैसा है 'नपात्'=निराधार स्थित। 'प्रणपात्=प्रकर्षता से न गिरने वाला। कुण्डपायः पृथिव्यादि लोकों का पालन करने वाला।

पृथिवी परमात्मा के आधार पर स्थित है।

१—यः पृथिवी व्यथमानामदृंहद्। अथर्व २०। २४। २

२—यस्य द्विबर्हसोबृहत् सहोदाधार पृथिवीम् अथर्व २०। ६१। ५। ऋ० ४। १। १५। २।

३—येनद्यौरुग्रा *पृथिवी च दृढा। यजु० ३२। ६।

अनड्वान अर्थात् परमात्मा ही जगत् का आधार है—

४—अनडवान दाधार पृथिवीमुत अनड्वान् दाधारोवीऽन्तरिक्षम्। अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडर्वी रड्वान् विश्वं भुवन माविवेश। अथर्व ४। ११। १॥

५—इन्द्रत्वा वृषभम्। अथर्व २०। १। १। ऋ०३। ४०। १

६—वृषभम्=अहोमुचं वृषभम् यज्ञियानाम्। १६। ४२। ४।

७—प्रकेतुना बृहतामात्यग्निरारोदसीवृषभोरोरवीति। दिव-

---

*सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम॥ यजु० १३। ४॥

रिचदन्ता दुपमामुदानडपामुपस्थेमहिषो ववर्ध ॥ अथर्व ८। ३। ६५।
ऋ० १०। ८। १ ॥ साम ७। ७१ ।

वृषा=वर्षिता=बरसने वाला। निरुक्त ११।४७।
वृष्णि= सुखों की वर्षा करने वाला। अथर्व ६। ४। ऋ०
८। ३।१०

पाठक गण विचारें कि क्या बैल पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिशा में, प्रदिशायें और सारे भुवनों को उत्पन्न और धारण करा सकता है? क्या बैल सारे ही सुखों को वर्षा कर सकता है?

शास्त्र ने इस ही लिये वेदार्थ करने की रीति बतलाते हुए कहा है कि:—वशेषणाच्च। वेदान्त १।२।१२ विशेषण देखकर अर्थ करो। प्रकरणाच्च वेदान्त १। २। १० प्रकरण को भी ध्यान में रक्खो।

प्रजनन अङ्ग की पुष्टि का सूक्त :—

२—आ वृषायस्व शवसिहि विधस्व प्रथयस्व च।
यथाङ्गं वर्धतां शेयस्तेन योषितमिज्जहि ॥ अथर्व
६। १०। १२

अस्यार्थ :— हे पुरुष! तू (वृषायस्व) सब प्रकार से वीर्य सेचन में समर्थ हो। (शवसिहि) प्राण को ऊपर खैंच और (वर्धस्व) शरीर से खूब पुष्ट हो, (प्रथयस्व च) और अपने अङ्गों को भी बढ़ाकर इतना पुष्ट हो कि (यथा) जिससे (शेय अङ्गम) कामाङ्ग भी वृद्धि को प्राप्त हो। (तेन) इस अङ्ग से (योषितम् अपने स्त्री के पास (इत्) भी (जहि) जा, सेचन में समर्थ हो।

१—येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानयायसः अथर्व ६।१०१।१

भाषार्थः — (येन) जिस उपाय से (कृश) कृश पुरुष को (वाजयन्ति) बलवान करते हैं। और (येन) जिस उपाय से आतुर रोगी निर्बल पुरुष को (हिन्वन्ति) समर्थ बनाते हैं, हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्म = अन्न को पालन करने वाले पुरुष (अस्य) निर्बल पुरुष के (यसः) कामाङ्ग को भी उसी पौष्टिक उपाय से (धनुः इव) धनुष के समान (अतानय) पुष्ट कर।

२—अहं तनोमि ते पसो अधिज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इवरोहितमनवग्लायता सदा ॥ अथर्व ६।११। २

भावार्थः—(अहं ते पसः) मैं सद्वैद्य तेरे कामाङ्ग को (तनोमि) दोष रहित करके सुधारता हूं। (धन्वनि अधिज्याम् इव) जिस प्रकार शिकारी अपने धनुष पर डोरी चढ़ाता है। (अर्शः रोहित इव) और जिस प्रकार शिकारी प्रसन्न चित्त से मृग पर दौड़ता है उसी प्रकार (अनवग्लायता) सदा ग्लानि रहित चित्त से (क्रमस्व) अपनी स्त्री के पास जाओ।

व्याख्या—यह उपदेश, एक सद्वैद्य, मनुष्यों को दे रहा है। ज्ञान परमात्मा की ओर से है परन्तु कहलवाया वैद्य से है। विदित हो कि वेद विद्यारूप है। सृष्टि के आदि से है। अनन्त काल से है। उनमें सारी विद्यायें विद्यमान हैं। विद्या की रीति पर सारी बातों को बताना वेद का काम है। सन्तानोत्पत्ति की

भी एक विशेष शिक्षा है। बिना इस शिक्षा के सन्तान का बिगाड़ सम्भव है। अतः वेद ने इस विषय की पूर्ण शिक्षा देदी कि सन्तानोत्पत्ति सुचारूरूप से किस प्रकार की जाये। सन्तानोत्पत्ति की भी एक विद्या है। इसलिये किसी विद्या को बतलाते हुए गुप्त अङ्गों और क्रियाओं का बतलाना अश्लीलता नहीं कहाती। डाक्टरी, वैद्यक, हिकमत और धातू शिक्षा आदि की पुस्तकों में इन गुप्ताङ्गों और गुप्त रोगों का वर्णन आना अश्लीलता नहीं कहाती। कलाभवनों में स्त्री पुरुषों के गुप्ताङ्गों को चित्रण करना अश्लीलता में सम्मिलित नहीं। रेप केस—जिना बिल जब्र की व्याख्या पुलिस कोड में फोहश नहीं। हां इन्हीं बातों को चर्चा, यदि सर्व साधारण में पत्र, लेख अथवा व्याख्यानों द्वारा की जाय तो और वह निष्प्रयोजन हो तो, अश्लील औरसीन समझी जायेगी। ऐसा समाज और राज्य दोनों ही का प्रबन्ध है। क्या आक्षेपकर्त्ता को इस बात का पता नहीं कि इस विषय की पुत्री पुत्रियों को समुचित शिक्षा न होने के कारण संसार में कितनी हानि हो रही है? ब्रह्मचर्य का नाश और गार्हस्थ जीवन की बरबादी किस प्रकार हो रही है? क्या काम शास्त्र एक प्रकार की विद्या नहीं है? क्या तत् सम्बन्धी ग्रन्थ, काम सूत्र आदि, सामाजक रीत्या अथवा राज्य प्रबन्धकों की दृष्टि में अश्लील समझी जाती हैं? फिर जहां वेदों में और २ अन्य प्रकार की विद्यायें हैं वहां कामकला भी भले प्रकार

१—येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानयायसः अथर्व ६।१०१।३

भावार्थः — (येन) जिस उपाय से (कृश) कृश पुरुष को (वाजयन्ति) बलवान करते हैं। और (येन) जिस उपाय से आतुर रोगी निर्बल पुरुष को (हिन्वन्ति) समर्थ बनाते हैं, हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्म = अन्न को पालन करने वाले पुरुष (अस्य) निर्वाय पुरुष के (यसः) कामाङ्ग को भी उसी पौष्टिक उपाय से (धनुः इव) धनुष के समान (अतानय) पुष्ट कर।

२—अहं तनोमि ते पसो अधिज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इवरोहितमनवग्लायता सदा ॥ अथर्व ६।११। ३

भावार्थः—(अहं तेपसः) मैं सद्वैद्य तेरे कामाङ्ग को (तनोमि) दोष रहित करके सुधारता हूं। (धन्वनि अधिज्याम् इव) जिस प्रकार शिकारी अपने धनुष पर डोरी चढ़ाता है। (अर्शः रोहित इव) और जिस प्रकार शिकारी प्रसन्न चित्त से मृग पर दौड़ता है उसी प्रकार (अनवग्लायता) सदा ग्लानि रहित चित्त से (क्रमस्व) अपनी स्त्री के पास जाओ।

व्याख्या—यह उपदेश, एक सद्वैद्य, मनुष्यों को दे रहा है। ज्ञान परमात्मा की ओर से है परन्तु कहलवाया वैद्य से है। विदित हो कि वेद विद्यारूप है। सृष्टि के आदि से है। अनन्त काल से है। उनमें सारी विद्यायें विद्यमान हैं। विद्या की रीति पर सारी बातों को बताना वेद का काम है। सन्तानोत्पत्ति की

भी एक विशेष शिक्षा है। बिना इस शिक्षा के सन्तान का बिगाड़ सम्भव है। अतः वेद ने इस विषय की पूर्ण शिक्षा देदी कि सन्तानोत्पत्ति सुचारुरूप से किस प्रकार की जाये। सन्तानोत्पत्ति की भी एक विद्या है। इसलिये किसी विद्या को बतलाते हुए गुप्त अङ्गों और क्रियाओं का बतलाना अश्लीलता नहीं कहाती। डाक्टरी, वैद्यक, हिकमत और धातू शिक्षा आदि की पुस्तकों में इन गुप्तङ्गों और गुप्त रोगों का वर्णन आना अश्लीलता नहीं कहाती। कलाभवनों में स्त्री पुरुषों के गुप्ताङ्गों को चित्रण करना अश्लीलता में सम्मिलित नहीं। रेप केस— जिना बिल जब्र की व्याख्या पुलिस कोड में फोहश नहीं। हां इन्हीं बातों की चर्चा, यदि सर्व साधारण में पत्र, लेख अथवा व्याख्यानों द्वारा की जाय तो और वह निष्प्रयोजन हो तो, अश्लील औरसीन समझी जायेगी। ऐसा समाज और राज्य दोनों ही का प्रबन्ध है। क्या आक्षेपकर्त्ता को इस बात का पता नहीं कि इस विषय की पुत्री पुत्रियों को समुचित शिक्षा न होने के कारण संसार में कितनी हानि हो रही है? ब्रह्मचर्य का नाश और गार्हस्थ जीवन की बरबादी किस प्रकार हो रही है? क्या काम शास्त्र एक प्रकार की विद्या नहीं है? क्या तत् सम्बन्धी कुछ के, काम सूत्र आदि, सामाजक रीत्या अथवा राज्य प्रबन्धकों की दृष्टि में अश्लील समझी जाती हैं? फिर जहां वेदों में और २ अन्य प्रकार की विद्यायें हैं वहां कामकला भी भले प्रकार

बतलादी गई है, तो वहां पर अश्लीलता कैसी ? क्या विश्वकोष और अन्य कोषों में ऐसे गुप्ताङ्गों के लिये आये हुये शब्द और उनकी व्याख्या अश्लील समझी जाती है। कदापि नहीं। ताजीरातहिंद में बलात्कार—जिनाबिल जब्र की ३७५ धारा-दफा है। जो शब्द इसमें आये हैं यदि इन शब्दों का सर्व साधारण में वा समाचार पत्रों में मौखिक वा लेख द्वारा वर्णन किया जाय तो वह औबसीन घृणित जाना जायगा।

दफा ३७५—

Explanation:--To constitute penetration it must be prooved that some part of the virile member of the accused was with in the labia of the dendum of the woman, no matter how little. page 784.

यही शब्द अनावश्यक स्थलों पर अश्लील फ़ोहश होजासकते हैं। परन्तु एक कानूनी किताब का भूषण हैं। यथंत्र भूषण है।

वेदों में जारकर्म का आक्षेप और उसका उत्तर—

वेदों में जार कर्म बताया गया है। देखो यजु० ३।४० पर महीधरी टीका —"तदीयं जारं पृच्छेत् केन चरसीति" ? अर्थात् उस (पत्नीके) जार से पूछे कि किसके साथ जाती है ?

उत्तर—मन्त्र में जार की कोई चर्चा नहीं--मन्त्र में जार शब्द भी नहीं। यह कात्यायन की लीला है, जिसका अनुसरण महीधर ने अपनी अज्ञानता से किया है। मन्त्र का सत्यार्थ सुनिये—

मन्त्रः--प्रघासिनो हवामहे मरुत श्चरिशादसः। करम्भेण सजोषसः। यजुः ३। ४४

सत्यार्थः- हम लोग (करम्भेण) अविद्या रूपी दुःख होने से अलग होकर (सजोषसः) बराबर प्रीति के सेवन करने(रिषादनः) दोष वा शत्रुओं को नष्ट करने और (प्रघासिनः) पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और (मसतः) यज्ञ करने वाले विद्वान लोगों को (हवामहे) सत्कार पूर्वक नित्य प्रति बुलाते रहें। (महीधर और कात्यायन दोनोंही वामीहैं)

प्रश्न—यजुर्वेद अध्याय ३०। मन्त्र ८ में जार कर्म की शिक्षा है।

उत्तर--कदापि नहीं। इस अध्याय में २२ मन्त्र हैं और केवल ५ मन्त्रोंमें क्रिया आई है—१ में"प्रसुव, पुनातु, और स्वदन्तु"। २ में "धीमहि और प्रचोदयात"। ३ में "परासुवः और आसुव ४ में "हवामहे"। फिर अन्त में २२ वें में "आलभते" क्रिया है ५ वें से लेकर २१ वें मन्त्र तक कोई क्रिया नहीं है। १८ मन्त्रों में चतुर्थी और द्वितीयान्त पदों के साथ कोई क्रिया न होकर केवल क्रिया रहित पाठ है।

अब प्रश्न यह है कि इन १८ मन्त्रों में द्वितीयान्त पदों के साथ किस क्रिया का योग हो ? केवल "आलभते" क्रिया का अथवा किसी अन्य क्रिया का भी, अपनी ओर से प्रयोग होना चाहिये ? महीधर तो प्रत्येक द्वितियान्तकर्म-पद के साथ'नियु-नक्ति-;नियुक्त करता है ऐसी क्रिया लगाता है। उदाहरणार्थ देखिये ब्रह्मणे ब्राह्मणम् =ब्रह्म के लिये ब्राह्मण को नियुक्त करता है

अर्थात् मैं यजमान ब्रह्म के लिये ब्राह्मण को "युनज्मि" = नियुक्त करता हूं।

चतुर्थ्यन्त देवता है, द्वितीयान्त बलि के अर्थ खंभे से बंधा हुआ पुरुष अथवा पशु है! अन्त में "आलभेत्" क्रिया है, जिसके अर्थ महीधर हनन करना करता है। अब इस नवें मन्त्र पर विचार कीजिये --"सन्धये जारम्" यहां से यह आरम्भ होता है। महीधर अर्थ करते हैं कि —सन्धये जारमुपपतिम् सन्धि देवता के लिये जार अर्थात् उपपति को (नियुक्त करता) हूं "गोदाय उपपतिम्" = "गृह-पत्नी के संग के लिये उपपति अर्थात् व्यभिचारी को नियुक्त करता हूं आदि। महीधर 'सन्धि' और 'गेह' आदि को देवता मानता है और इनके लिये 'जार' और उपपति आदि को बलि का व्यक्ति मानता है। इन दोनों को मिलाकरयूप = खंभेसे बांधना चाहता है।

अब इसके सत्यार्थ सुनिये। स्वामी जी इन सबके साथ न तो केवल 'युनज्मि' अथवा 'नियुनक्ति' क्रियायें लगाते हैं और न 'आलभते' लगाते हैं। किन्तु राज प्रबन्ध बतलाते हुए किसको दूर करना चाहिये और किसकी रक्षा करनी चाहिये यह जतलाते हुए सारे अध्याय के अर्थों को समाप्त करते हैं। यथा—५ वें मन्त्र में वेद और ईश्वरीय ज्ञानके प्रचार के लिये ब्राह्मण को उत्पन्न कीजिये। ऐसा अर्थ करते हैं। इस प्रकार चारों वर्णों की रक्षा की आज्ञा राजा को देते हैं। अतः "ब्राह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं, तपसे शूद्रम्" के अर्थों में चारों वर्णों की रक्षा

का उपदेश दिया है। इसके आगे "तमोतस्करम् - अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए अन्धेरे में चोरी करने वाले चोर को, यहाँ से लेकर अतिकुत्सा मार्गरम अत्यन्त निन्दा करने में प्रवृत्त हुए भार-खुशामदी चाटुकार तक "दूर पहुंचाइये" ऐसी क्रियाका प्रयोग किया है। आशय यह है कि राज्य में जिनकी वृद्धि और रक्षा की उनके साथ आवश्यकता है। रक्षा परक क्रिया लगाई है। और जो २ व्यक्ति या वस्तुऐं राज्यके लिये हानिकारक हैं, उनके साथ दूर 'कीजिये' ऐसी क्रिया जोड़ी है। अतः इस मन्त्र में कहीं भी व्यभिचार की शिक्षा नहीं दीखती किन्तु व्यभिचारी और व्यभिचारिणी को दूर करने की शिक्षा है।

जार शब्द और निरुक्त—

"जार आभगः। जार इव भगम्। अदित्योऽत्रजार उच्यते। रात्रेर्जरयिता। निरुक्त ३। १६।

पं० जयदेव जी की सम्मति —

"सन्धये जारम्"० =व्यभिचार के लिये जाने वाले जार को रोके अथवा राजा से सन्धि के लिये चतुर पुरुष को लगावे।

इस काम के लिये प्रवृत्त होने वाले के लिये राजा को यह काम करना उचित है। यहां सारे अध्याय का आशय है। जहां रक्षा की आवश्यकता हो वहां रक्षा करे जहां दूर करने की आवश्यकता हो वहां दूर करे इत्यादि।

वेदों में पर स्त्री गमन और उसका उत्तर—

प्रश्न—अथर्व वेद के इन दो मन्त्रों में अर्थात् कां० १४। सू० २०१

मन्त्र ३५,३६ में वेश्या-गमन और व्यभिचार की शिक्षा है ?

उत्तर—वेदों में सदैव सदाचार की ही शिक्षा दीगई है। पाप निवृत्ति के लिये परमात्मा से ठौर २ पर प्रार्थना की गई है-

यथा—अपपापम् परिक्तिवं पुण्य भक्षी महिक्तवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यं गश्चाभिमेहताम्॥

भाषार्थः—(पापम्)पाप दूर करने (अथर्व १६।८।५॥) योग्य दोष से युक्त (परिक्तिवम) वर्जनीय अन्न को (अप) हम दूर करें। और (पुण्यम्) पुण्य पवित्र (क्तवम्)अन्न का हम (भक्षी-महि) भोग करें। हे (पाप) पाप ! पापी पुरुष (ते) तेरे (नासिकां-अभि) नाक पर (शिवा) कल्याणकारी जानना या स्त्री, और (पुण्यगः च) पुण्य मार्ग पर जाने वाले उत्तम स्त्री पुरुष दोनो (मेहताम्) मूत्र करें। जहां पर वेद भगवान् की ऐसी शिक्षा हो वहां व्यभिचार आदि की क्या कथा ? मनुष्य वेदोंके व्यर्थ द्वेषी बनकर यदि उनपर कलङ्क लगावें तो यह मनुष्यों की अपनी अज्ञानता वा अल्पज्ञता है। सत्यार्थ सुनिये —

मन्त्रः—यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायांचयदाहितम्
यद्गोष्वश्विना वर्चस्तेने मां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

भाषार्थ :—(यत् च,और जो (वर्च)तेज या बल चित्ताकर्षक बल (अक्षेष) अक्षो,-पासों में या प्रेमियों की आंखों में हैं (यत्च) और जो बल (सुरायां) चित्त को हरने वाली स्त्री या (सुरायाम्) सुरा पान में (आहितम्) भरा है और (यद् वर्चः गोषु) जो तेज

धन, समृद्धि और पुष्टिकारक दूध आदि सुस्वादु पदार्थों या गौओं में विद्यमान है (तेन) उन सब तीनों प्रकार के तेजों से हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! तुम सब (इमाम्) इस सौभाग्यवती नव वधू को (अवतम्) सुशोभित करो।

येन महानन्या जघन मिश्रया येन वा सुरा-
येनाक्षाअभिषिच्यन्ततेने मां वर्चसावतम् ॥३६॥

भाषार्थ :—(येन) जिस (वर्चसा) तेज या चित्ताकर्षक मनोहरता से (महानन्याः) बड़ी नंगी = महा वेश्या का (जघनम) भोग स्थान युक्त है और (येन वा) जिस चित्ताकर्षक गुण से (सुरा) सुरा, मद्य या स्त्री परिपूर्ण हैं और (येन) जिस चित्ताकर्षक गुण से 'अक्षा' जुए केपासे या इन्द्रियें 'अभिअसिच्यन्त' भरे पूरे रहते हैं 'तेन' उस वर्चसा चित्ताकर्षक गुणमय तेज से इमां इस स्त्री को हे अश्विनौ स्त्री पुरुषो ! या कन्या या वर के माता पिताओ तुम भी (अवतम्) सुशोभित करो।

आशय यह है कि स्त्री पुरुषों को व्यसनों से बचाने के लिये यह अत्युत्तम शिक्षा का प्रचार है कि जितने सुख इन दुःखदायी व्यसनों में विद्यमान हैं वे सब स्त्री = स्वपत्नी में मौजूद हैं। उन व्यसनों में फंसकर अपने जीवन को नष्ट न करें। स्त्रियों को उचित है अपने को पतियों के लिये ऐसा सिद्ध करें कि वे किसी व्यसन में न फंसकर अपनी ही स्त्री में रत रहें—सारे आनन्द वे अपनी स्त्री ही में पायें।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुरुषों को व्यसनों में एक प्रकार का आनन्द सा प्रतीत होता है। यदि उन सारे आनन्दों को एक ही स्थान पर अपनी स्त्री में ही पालें तो कितने सौभाग्य की बात है बस यह शिक्षा वेद भगवान ने दी है कि स्त्री अपने को इस योग्य बनावें कि उनके पति अपनी स्त्री के अतिरिक्त किसी अन्य व्यसन में आनन्द को न ढूंढें। पुरुषों को भी उचित है कि वे सारे आनन्द अपनी स्त्री ही में देखें मात पिता, गुरु आचार्य भी वर बधू को ऐसा ही उपदेश दें कि वे एक पत्नीव्रत और पतिव्रता को धारण करते हुये सारे ही दुर्व्यसनों से बचे रहें। भला इस सुशिक्षा में व्यभिचार आदि की गन्ध कहाँ है ? हाँ उनको गन्ध प्रतीत हो तो दूसरी बात है कि जिनकी नाक में पहले से ही हठ और पक्ष-पात की दुर्गन्ध लगी हो।

प्रश्न—ऋ० मण्डल १० सूक्त ३४ मन्त्र १ से चार तक में जुए की शिक्षा दी गई है—देखो—"प्रवेपा माबृहतो भादयन्ति०"

इस प्रथम मन्त्र में बताया गया है कि जुआ किस प्रकार मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करता है। प्रत्येक कार्य में आकर्षण शक्ति किस प्रकार की होती है यह वेद भगवान् बतलाते हैं। इस ही को 'चाट' कहते हैं। इस ही को मीठी नेस्ती कहते हैं। दूसरे मन्त्र में बताया है कि यद्यपि मुझको खेलते समय कोई

दुःख प्रतीत नहीं होता बड़ा अच्छा मालूम होता है, परन्तु अन्त इतना दुःखद होता है कि स्त्री का भी पालन नहीं कर सकता—बिलकुल कंगाल बन बैठता है। आशय यह है कि आरम्भ तो अच्छा लगता है परन्तु अन्त दुःखदायी है।

अब तीसरे मन्त्र में दुःखद परिणाम वर्णन किया है—

"द्वेष्टि श्वश्रूरप जायारुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।"

ऋ० १०। ३९। ३

अर्थात्—जुआरी से सास भी द्वेष करती हैं, स्त्री भी विरक्त है, दुःखी होने पर भी अपने पर किसी को कृपालु नहीं पाता, बूढ़े घोड़े और फटे वस्त्र के समान मारा मारा फिरता है।

चौथा मन्त्र—"अन्ये जायां परिमृशन्त्यस्य०" अर्थात्—इसकी स्त्री को दूसरे ही ले जाते हैं, माता पिता भी कहते हैं इसको नहीं जानते, इसको बांधकर ले जाओ ऐसा कहते हैं।

इन उपरोक्त मन्त्रों में कहीं भी जुए की आज्ञा नहीं है। हां ऋग्वेद में ही जुए के निषेध में बहुत से मन्त्र आये हैं सुनिये—

ऋ० मं० १० सू० ३। १३। अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमान्यमानः। तत्र गावः कितव तत्र जायातन्मे विचष्टे सवितायमर्यः॥ १३॥

इस मन्त्र, में जुए का निषेध विद्यमान स्पष्टयता है। जुआ

न खेलकर खेती करने की आज्ञा है। खेती के लाभ भी बतलाये हैं—पशु तेरे पास हो जायेंगे, विवाह हो जायगा, धनवान हो जायगा और सब ठौर आदर भी होगा, जिस सूक्त में आप जुए की विधि बता रहे हैं उस ही सूक्त में स्पष्ट निषेध है। वेद-भगवान् ने बतलाया है कि जुए को जुआरी लोग प्रथम तो कैसा अच्छा जानते हैं ? यह स्वाभाविक वर्णन है। फिर पीछे उनको कितनी हानि उठानी पड़ती है यह भी जुए का दुष्परिणाम वेद भगवान ने बता दिया। जिसके उदाहरण राजा नल और युधिष्ठरादि विद्यमान हैं। जुए में हार और जीत दोनों होती हैं। वेद भगवान दोनों का ही परिणाम बताते हैं—जीतने वाला जानता है कि मैं सुखी हूं, आनन्द में हूं। हारने वाले का सर्वनाश हो रहा है—स्त्री, माता, पिता, मित्र और बाँधव सब छूट रहे हैं। अन्त में हारने और जीतने वाले दोनों ही संकट में पड़ते है। अतः जुए से हटा कर खेती की तरफ भगवान लगाते हैं और खेती के लाभ बताते हैं।

परमात्मा को वेदों में गाली प्रदान और उसका उत्तर

प्रश्न—वेदोंमें परमात्मा को अपशब्द कहे गये हैं। यथा—देखो ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त ५५ मन्त्र ४ और ५।

उत्तर—वे ऋग्वेद के मन्त्रये हैं—

मन्त्र:४—पूषणंन्वजाश्वमुपस्तोषामवाजिनम्
स्वसुर्यो जार उच्यते । ४ ।

मन्त्र ५ मातुर्दिधिमब्रवं स्वसुर्जार श्रृणोतुनः ।
भ्रातेन्द्रस्य सखामम ॥ ५ ॥

हम इन दोनों मंत्रों पर मि० गिलकिथ साहब का ही भाष्य पेश करते हैं ।।

4—Pooshan, who drives goats for steeds. the strong and mighty. who is called. His sister's lover, will we loud.

5—His mother's suitor I address. may be who loves his sister, pear, Brother of Indra, and my friend. Pages 626.

Not—His sister's lovre. according to Sayan, Tooshan's sister is Ushas or Dawn.

आशय यह है कि—पूषाकी बहन, सायण के अनुसार, उषा है।

Net5—His Mother's Suitor: Sayar explains मातुर्धिषम् as ratreh patim, lord or husband of nignt. Probadbly Surya is intended. See Ber gaigne La Religion Vadique.

Compair also Book V -48-8.

Brother of Inder: as an Aditya or son of Aditi P. 626.

इन मन्त्रों में गिलकिथ महोदय के भाष्यानुसार न तो पूष

का नाम परमात्मा है न कोई परमात्मा या पूषा को गाली ही दी गई हैं। पूषा अपनी बहन का प्यारा है। या बहन को प्यार करने वाला है। आप यहां पर उसको बहन का माशूक समझ रहे हैं। फिर यह भी विचारिये पूषा की बहन है कौन ? सायण कहते हैं—पूषा की बहन उषा है। उसकी माता का पति—सायण कहते हैं कि—मातुर्विधि—"रात्रेः-पतिम्"। रात्रिका पति। कदाचित् सूय से तात्पर्य है।

पूषा शब्द के अनेक अर्थ—

१—इयं वै पूषा पृथिवी। श० प०-२। ५। ४। ७। १। २ ४। १६। तै० सं० १। ७। २५।

२—योऽयं (वातः) कृत ऽएषं दीद थं सर्वं पुष्पति। श० प० १४। २। १६।

३—पूष्णाः पोषेण मह्यं दीर्घायुत्वाय शत शारदाय शत शरद्भ्य आयुषे वर्चसे। तै० १। २। १। १६।

४—पूषा—पूषाऽयोषत् तै०। १६। २। २

५—पुष्टिर्वै पूषा। तै० २। ७। २। १

६—असौवं पूषा योऽसौ सूर्यः तपति। कौ० ५। २। गो० १। २०।

—(अग्ने) त्वं पूषा विधतः यासि नुत्मका। तै० ३। ११। २। १॥

८—अन्नं वै पूषा कौ० १२। ८

९—यशोवोहि पूषा। श० य० ५। १। ५। २॥ १। १। ६

—पूष्णो रेवतो (नक्षत्रम्) तै० १। ५। १। ५॥

ऋ० ६ । ५८ । ४ पर भी पूषा क्या है सो देखिये—
'पूषा सुबन्धुर्दिव आपृथिव्या': पर नोट—

The deities gave to Surya. But Pushan is the lover of his mother. VI—5515:Surya then migh be the spouse as well as the mother of Pushan. She is doubtlessly also the sister with whom Pushan is united. Rig–6–55-4-5 Bergaigne. La Religion Vedique II. 428.

ऋ० ६ । ५५ । ५ पर बरगेनीज महाशय—

His mother's suitor I address. May he who loves his sister here. Brother of Indra and my friend. P. 626.

इस पर नोट—

His mother's suitor: Sayan explains-Matur Diohishum : मातुर्दिधिषुम् as Ratrah patim रात्रेः पतिः' lord or husband of night. Probably Surya सूर्य intended. See Bergaigne.
La Religion Vedique II, 428.

Brother of Indra : as an Aditya or son of Aditi. P. 626.

पूषन् क्या है ?

Pushan then be' the son of return" the God

who brings travellers safely home, which is one of his especial function. P.625

ऋ० १। ४२। १ पर निरुक्त—

Pushan is usually a Synonym of the Sun. P. 54.

पुषा सूर्य का पर्याय वाची है।

ऋ० ६। ५५। ४ पर सायणाचार्य—

पूषणन्वजाश्वमुप० — "यः पूषा स्वसुरूषसो जार उपपतिरुच्यते तं पूषणम्"। = जो पूषा बहन =उषाका जार = उपपति कहाता है। उस पूषा को। असौवा पूषा योऽसौ सूर्यः तपति। कौषतकी।५।२। यह पूषा तपने वाला सूर्य है।

ऋ० ६। ५५। ४ पर विलसन साहब "स्वसुर्जारः—

The sister of pooshon is the dhwne with whome he as the sun my be eoul to associate amorouss by.

अर्थात्-बहन का जार :-पूषा की बहन उषा है जिसके साथ वह सूर्य के समान स्नेही होकर सम्मेलन करता है। यह जार सूर्य कहाता है और उषा बहन कहाती है। सांसारी पुरुष और स्त्री का वर्णन नहीं है। आकाशीय पदार्थों की चर्चा है। ऋ० ६।५५।५ पर भी विलसन की सम्मति देखिये—

Thu Lord or Husbond of the night.

अर्थात्—स्वामी या पति रात्रि का (पूषा है)

श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज की इसपर सम्मति निरुक्तानुसार—

स्वसूर्यो जारः- इसपर निरुक्त ३। १६-जार इव भगमादित्योऽत्र जार उच्यते,रात्रेर्जरयिता स एव निगमो भवति स्वसुर्जारः शृणोतु नः इत्युषस मस्य स्वसारमाह साहचर्याद् रसहर्णाद्वा अपित्वयं मनुष्य जार एव अभिप्रेतः स्यात्।

अर्थात—सूर्य यहां पर जार कहाता है। (इसलिये कि) रात्रि का जीर्ण करनेवाला है। वह (सूर्य) (चन्द्र आदिकी) प्रभाओंको जीर्ण करनेवाला है। वैसा भी निगम है। उषाका जीर्ण करनेवाला (सूर्य) हमें सुने (ऋ०४। ८। २१। ५) उषा को इस (सूर्य) की बहन कहता है। साथ विचरने से, अथवा रस खींचने से। "जार आभग ,, इसमें मनुष्य जार भी अभिप्रेत हो सकता है।

ऋ० ६। ५५।४ पर स्वामी जी —(यः) जो (स्वसुः) बहन के समान वर्तमान उषा का (जारः) जीर्ण करने वाला (उच्यते) कहा जाता है उस(वाजिनम्)उस ज्ञान और बल का देनेवाला अजाश्वम जिसमें बकरी और घोड़े विद्यमान (पूषणम्) जो पुष्टि करने वाला है उस आदित्य की हम (नु) शीघ्र (उप,स्तोषाम) प्रशंसा करें।

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यों! जैसे सूर्य रात्रि का निवारण करनेवाला है वैसे ही प्रजा जनों में जार कर्म में वर्तमान मनुष्यों का निवारण करो।

ऋ० ६। ५५। ५ का स्वामी भाष्य—(मातुः)जनन्याः आदि संस्कृत का भाषार्थः—

हे मनुष्यो! जो (इन्द्रस्य) बिजुली के [भ्राता) भ्राताके समान (मम) मेरा (सखा) मित्र (नः) हम लोगों के (दिधिषुम्) धारण करने वालेको (शृणोतु) सुने और जो (स्वसुः) भगिनी के समान उषा का (जारः) निवारण करने वाला (मातुः) माता का धारण करनेवाला है उसको मैं (अब्रवम्) कहूं और उसको सब जानें।

भावार्थः—जैसे अग्नि का मित्र वायु है, और रात्रिका निवारण करने वाला सूर्य भी है वैसे ही धार्मिक मेरे मित्र और

मैं भी उनका मित्र होकर रात्रि के समान वर्तमान अविद्याका हम सब निवारण करें।

वेद में पिता पुत्री का विवाह और उसका उत्तर—

शासद्वन्हिर्दुहितुर्नप्त्यंगाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्। पिता यत्र दुहितुः सेक मृञ्जन संशग्म्येन मनसा दधन्वे। ऋ० ३। ३१।१।

इस पर सायण भाष्य—

कुशिकः प्रसङ्गात् कञ्चिच्छास्त्रार्थं ब्रूते।

अपुत्रो यः पिता कन्यामन्यकुलं प्रापयति स वन्हिरुच्यते। स पिताशासत अभ्रातृकां प्रदास्यामितुभ्यं कन्यामङ्गलकृताम्। अस्यां यो जायते पुत्रःस मे पुत्रो भवेदिति। स्मृत्युक्त मनुशासनं कुर्वन् दुहितुः पुत्रिकायानप्त्यं नप्तृ भावं पिण्डदानादिकं कर्त्तव्यतयागात् गच्छति किं कुर्वन् विद्वानस्यां दुहितरि जातः पुत्रो मम स्वधाकारो भविष्यतीति जानन् ऋतस्य सत्यस्य पुत्रोत्पादन समर्थस्यरेतसः दीधिति धर्त्तारं जामातारंतत्पति सपर्यन् वस्त्रालङ्कारादिना पूजयन् पितानप्तृ भावं गच्छति यत्र यस्याः दुहितुः पिता पालकः पति र्जामाता सेकं तस्यां रेतः सेकं ऋजन् प्रसाधयन् स शग्म्येनकेवल सुख निमित्तेन मनसा तस्यां स्व शरीरं संदधन्वे संधत्ते नतु पु निकित्तेन मनसा एतमर्थं यास्कोप्याह।

आशय यह है कि—कुशिक के प्रसंग से कुछशास्त्र के को वर्णन करता है। वह बिना पुत्र वाला पिता जब अपनी को अन्य कुल में देता है तो वह 'वन्हि कहाता है। वह पिता

है—"इस विना भाई वाली कन्या को मैं तुमको अलङ्कार सहित देता हूं। इसमें जो सन्तान उत्पन्न होगी वह मेरा पुत्र होगा।"

इस प्रकार स्मृतिकी आज्ञा बताता हुआ वह कन्या जो अब पुत्रिका कहाती है, उसके पुत्र को पिण्ड देने वाला पोता समझता है। ऐसा समझ कर उस अपने जामाता—कन्या के पतिका सत्कार करता है। अब उस जामातासे उत्पन्न होने वाली सन्तान उस कन्या के पिताकी पोता होगी। जिस कन्या का पति—पिता का जामाता—वीर्यसंचक उसमें सन्तान उत्पन्न करके सुख को प्राप्त होता है—मन से प्रसन्न होता है।

इस ऋ० ३। ३१। १ पर स्वामी भाष्य—

हे विद्वान पुरुष! (यत्र) जिस व्यवहार में (पिता) उत्पन्न कर्ता (वह्नि) वाहन करने अर्थात् व्यवहार में चलाने वाला (दुहितुः) कन्या के (सेकम्) सेचन को (ऋञ्जन्) सिद्ध करता हुआ (गात्) प्राप्त होवे, उस व्यवहार में (विद्वान्) जानने योग्य व्यवहार का ज्ञाता (ऋतस्य) सत्यके (दिधितिम्) धारण कर्ता की (सपर्यन) सेवा करता हुआ (दुहितुः) दूर में हितकारिणी कन्या के (नप्तयम्) नाती में उत्पन्न हुये को (शासत्) शिक्षादेवे इससे (शाम्येन) सुखोमें वर्त्तमान (मनसा) अन्तः करण से (समदधन्वे) सम्मक् प्रसन्न होता है।

भावार्थः—हे मनुष्यों! जैसे पिता के समीप से कन्या उत्पन्न होती है वैसे ही सूर्य से प्रातः काल की वेला प्रगट होती है। और जैसे पति अपनी स्त्री में गर्भ को धारण करता है वैसे कन्या के सदृश वर्त्तमान प्रातः काल की वेला में सूर्य किरण रूप

वीय को धारण करता है (फिर) उससे दिवस रूप पुत्र उत्पन्न होता है।

इस मन्त्र पर पं० विद्यनिधि सिद्धेश्वर शास्त्री कृत मरहटी टीका—

शासद्वन्हि—ज्ञाता आणी शास्त्राला अनुसारणा पिता जावयाचा सत्कार करून मुलीच्या मुलाचा स्वीकार करतो। कारण पिता मुलीचें लग्न लावून देऊनत्या सुखानु भवाने समाधान मानतो।

इसकी भाषा—ज्ञानी और शास्त्र का अनुसरण करने वाला पिता जामाता का सत्कार करके (कन्या) वधू और वर को स्वीकार करता है। कारण कि पिता लड़की का विवाह करके उस सुखके अनुभव से समाधान=प्रसन्नता मानता है।

इस पर निरुक्त—प्रशास्ति वोढा सन्तान कर्मणे दुहृतुः पुत्र भावम् दुहिता दुर्हिता दूरेहिता दोग्धेर्वा । नप्तारमुपागमत् दौहित्र पौत्रमिति। विद्वान प्रजनन यज्ञस्य, रेतसोवा—अङ्गादङ्गा त्संभूतस्य हृदयादधिजातस्य मातरि पित्वृतस्य—विधानं पूजयन । अविशेषेण मिथुना: पुत्रा दयादा इति.....पिता यत्र दुहितुर प्रत्तायाः रेतः सेकं प्रर्जायति, सन्दधात्यात्मनं सङ्गमेन मनसेति।

निरुक्त की भाषा— (वन्हिः दुहितुः शासत्) विवाहने वाला पुरुष सन्तान कर्म के लिये अपनी पुत्री के पुत्र भाव को प्रख्यापित करता है (ऋतस्यदीधिति सपर्यन्) गर्भाधान के यज्ञ विधान को समान जानता हुआ (नपयंगात्) पौत्रको प्राप्त होता है। (यह मन्त्र के पूर्वार्द्ध का अर्थ हुआ) आगे निरुक्तार्थ है— विवाहने वाला, सन्तान के कर्त्तव्य को पूरा करने के लिये

(अपनी) कन्या का पुत्र भाव (कन्या पुत्र है) जतलाता है। दुहिता=जिसका हित कठिन होता है, अथवा दूरमें हुई हित-वाली होती है अथवा 'दुह'=प्रपूर्ण से है। पोते को प्राप्त होता है (अर्थात्) दोहिते को पोता (मानता हुआ) जानने वाला उत्पत्ति के यज्ञ का, वा वीर्य का, जो अङ्ग२ से निकला, हृदय से प्रगट हुआ, माता में पहुंचता है उसके विधान का आदर करता हुआ सो बिना भेद पुरुष स्त्री दोनों प्रकार के पुत्र दायभागी होते हैं।

मन्त्र के उत्तरार्द्ध पर निरुक्त

"पितायत्र दुहितुरप्रत्ताया रेतः सेकं प्रार्जयति सन्दधाति आत्मनं सङ्गमेन मनसेति"

भाषार्थ—पिता जब न दी हुई कन्या के युवापति को थापता है तो अपने आपको सुखी मन से धारता है।

अर्थात्—वह कन्या जिसका भाई नहीं, उसको यदि कोई वर लेता है तो पिता प्रसन्न होकर जामाता की स्थापना करता है। क्योंकि बिना भाई की कन्या को मनुष्य विवाहना नहीं चाहते। कारण कि घेवते को नाना अपने पास रखलेगा।

इस निरक्त पर दुर्गाचार्य का मत—

'शासद्वन्दिह, प्रशास्ति प्रख्यापयति प्रज्ञापयतीत्यर्थः। कःपुनरसौ प्रशास्ति? किवाप्रशास्ति इति ? "वोढा" य उद्वोढास्त्रिया भवति सः, तस्यां याजायते दुहिता, तस्याः पुत्रभावं प्रशास्ति, सन्तान कर्मणे अर्थाय। आह कथं पुनर्गम्यते प्रशास्ति वोढा सन्तान कर्मणे

दुहितुः पुत्र भावम्। इति। उच्यते-इतः यस्माद् "नप्तृयंगात्" "नप्तारमुपागमत्" उपागच्छतिसा दौहित्रम् दुहितपुत्रम्। "पौत्र-मिति" पौत्रो ममायमिति एवमुपागच्छति नचा पुत्रस्य पौत्रः स्यात् उपागच्छतिच दुहितुः पिता पौत्रो ममायमिति दौहित्रम्। तस्मात् दुहितापि पुत्र एव, यस्याः पुत्रः पौत्रो ममायमिति एवं चेतसा उपगम्यते॥

'विद्वानऋतस्य दीधितिम् सपर्यन' 'विद्वान'। कस्य? 'ऋतस्यं' 'प्रजनन यज्ञस्य"।ऋत इत्येतद् पठितं यज्ञनामा 'दीधितिम' विधान-मित्यर्थः। प्रजनन यज्ञस्विधानमविशेषेण 'सपर्यन' पूजयन्नित्यर्थः यथैव हि पुत्र जनने प्रजनन यसस्तन्यते तथैवहि दुहितृज-ननेऽपि,—यैरेव मन्त्रैर्यैनैवच विधानेन पुत्र गर्भ आधायते, तैरेव मन्त्रैस्तैनैव विधानेन दुहितृ गर्भोऽपि। अथवा ऋतशब्देन रेत उच्यते। पृ० १७७।

आशय यह है कि—यह कन्या का पिता जतलाता है। कौन जत-लाता है? और क्या जतलाता है? जो स्त्री से विवाह करने वाला है, उस से जो इस कन्या से पुत्र उत्पन्न होगा वह दौहित्र पिण्ड-दान के लिये होता है। वह कन्या पुत्र के समान होती है। वह कन्या पुत्र भाव को कैसे उत्पन्न होती है? इस पर कहते हैं क्यों कि वह (पिता) पोते को प्राप्त होता है। धेवते को पोता समझता है। यह अपुत्र का पुत्र है ऐसा नहीं समझना चाहिये। किन्तु पिता यह समझे कि यह मेरी कन्या से उत्पन्न हुआ धेवता नहीं किन्तु पोता है। ऐसा चित्त से जानता है। विद्वान पुरुष यह जानता है कि गर्भाधान यज्ञ—संस्कार कन्या और पुत्र का समान रीत्या होता है

जो मन्त्र और विधि पुत्रके संस्कार में काम में लाये जाते हैं वही मन्त्र और विधि पुत्री के संस्कार में बर्ते जातेहैं। ऋत शब्द के अर्थ यज्ञ अथवा रेतस् के हैं।

२ —दूसरा मन्त्र —

(अमूर्यापन्ति जामयः सर्वालोहितावाससः)

"अभ्रातर इव योषास्तिष्ठन्ति हतवर्त्तमनः"।

इस पर दुर्गाचार्य — "अस्यामृषि "आभ्रातृकायाः" कन्यायाः "अनिर्वाहः" अनिर्वहणं विवाह निषेधइत्यर्थः। हतवर्त्तमनः हतभर्तृवंशमार्गाः। "अभ्रातेवपुंस इति"

आशय यह है कि—इस उपयुक्त ऋचा में बिना भाई वाली कन्या से विवाह करने का निषेध है, ऐसा कहा गया है। (डर यह है कि) पति का वंश नष्ट होजायगा। (कारण यह है कि जब कि कन्या का कोई भाई नहीं है तो कन्या का पिता उस अपनी कन्या को पुत्रिका बना लेगा। अर्थात् अपने बेटे के स्थान पर उस को जान लेगा। उस से जो सन्तान उत्पन्न होगी वह नाना के पोते के समान होगी। उस पोते रूप धेवते का गोत्र, अपने पिता दादा का न होकर, अपने नाना का गोत्र होगा। इसलिये पितृ कुल न चलकर नाना का वंश चलेगा।)

"सन्तान कर्मणेपिण्डदानाय" पर दुर्गाचार्य—

"अभ्रातेव पुंसः" यथा अभ्रातृका कन्या दत्ताविसती पित्रा, ऊढाभर्त्रा, पुनः "प्रतीची" पुंसः "पितृन्" एव=पितृवंशमेव "अभिमुखो एति" "सन्तान कर्मणे पिण्डदानाय न पतिम्"

पतिवंशमित्यर्थः । साहि पितृवंशं पुत्रैः पौत्रैश्च वर्द्धयति, न भर्तृवंशमिति । तस्माद् अभ्रातृका पैतृकं दायाद्यमर्हतीत्युपपद्यते" ।

अर्थात्—जिस प्रकार बिना भाई वाली कन्या का यदि पिता विवाह भी कर दे, तो वह विवाह करने वाला पति अपने वंश को न बढायेगा । किंतु वह सुसर के कुल को ही बढाये गा । वह सुसराल के कुल की तरफ न जाकर अपने पिता की ओर ही जायगी क्योंकि उस से उत्पन्न हुई संतान पिण्ड दानादि क्रिया दादा की न करके नाना की करेगी । इस से यह सिद्ध हुआ कि कन्या को भी दाय भाग मिलना चाहिये ।

"पितायत्र दुहितुरप्रत्ताया रेतःसेकं पूजियति"

निरुक्त ६ । ५ पर दुर्गाचार्य— "पितायत्र"—यस्मिन् काले दुहितुः "अप्रत्तायाः"—प्राक प्रदानादित्यर्थः "रेतः सेकम्"—रेतःसेक्तारम् योदुहितरि रेतः सिञ्चति तं जामातारं "प्रार्जयति"—प्रसाधयति—प्रकल्पयति उपावर्त्तयतीत्यथः तदातस्मै तां दुहितरं ददत् किं करोति ?

'संशाम्येनमनसादधन्वे' "संदधाति" अभिसन्दधाति "आत्मवान्" यदत्रापत्यमुत्पत्स्यते तन्ममेति । कथं पुनरभि सन्दधाति? आत्मानमिति । सशाम्येन 'मनसा' "सङ्गमनेन" 'मनसा' विगता-पुत्र सन्तापेन चेतसा-नाहमपुत्रः, इयमेव पुत्रिकाममपुत्रः, योहि अत्यामुत्पत्स्यते, 'सपौत्रो ममभविष्यति इत्येवं सुखेन मनसा (सन्दधन्वे=) सन्दधात्यात्मानं तस्यापुत्रिकायाम् । तत्रैवं सति

यस्तस्यामेव कृत पुत्रिका धर्मिरायामुत्पद्यते दौहित्र, तमेव 'नप्तामममायम्' इत्येव मुपागच्छति मातामहः, नसर्वानेवदौहित्रान्।

अर्थात्—पिता, जिस समय कुमारी कन्या के विवाह से पहले कन्या के पति से वचन लेता है—"उसको कन्या देते हुए क्या कहता है ? मन से अपनी आत्मा से सन्तोष प्राप्त करता है। किस प्रकार सन्तुष्ट होता है ? मन से सन्तुष्ट होता है कि मैं पुत्र वाला नहीं था इसलिये सन्तप्तथा, अब मैं पुत्र वाला हो गया। यही मेरी पुत्री 'पुत्रिका' पुत्रस्थानी पुत्र की जगह होगी। इसलिये मन सन्तुष्ट होता है कि यह मेरी पुत्रिका होगई।ऐसा होने पर पुत्री के पुत्रिका बन जाने पर धर्मानुसार इसमें जो मेरा धेवता होगा वही मेरा पोता होगा इस ही प्रकार नाना प्रसन्न होता है यह नियम केवल उस ही पुत्रिका से उत्पन्न हुए धेवते के लिये है। नाकि सब धेवतों के लिये।

ऋ० "शासद्वन्हिः०' ३। ३१। १। पर निरुक्त—

Wise, teaching, following the thought of order, the son-less gained a grandson from his daughter Fain, as a sire, to see his child prolific he sped to meet her with eayer sprit.:3-31-1.

I am unable ts give a satisfactory or even an intelligible version or explanation of this first two stanzas which appears to attribute, in a very obscure manner, to Agni and the Gods in heaven the cnstoms or laws of succession to property

among men. In the first stanza Vanhih, which usually means an oblation bearer, a sacrificer, apriest, or one who is borne along as a God in a celestial car, is said by Sayan to mean sonless, the father of a daughter only, because he transfers his property through his married daughter into another family. The sonless father, according to Sayan stipulates that his daughter's son, his grandson, shall be his son a mode of affiliation recognized by low, and relay on a heir thus obtained, and, one who can perform his funeral rites, he is satisfied. This may be intelligible, but what it has to do with Agni or with the rest of the hymn is not clear.

Grassman, takes Vanih to mean the upper first stick, and the daughter to mean the lower piece of wood, P. 347.

इस मन्त्र पर विलसन साहब--

(A son) born of the body does not transfer (paternal) wealth to a sister.

लडविङ्ग साहब-

The bodily son of Dyaus or (of the heavenly waters) did not transmit his inheritance (that is

secrifice)to a mather. A home the plants which receiv and hold Agni. Who obtains in heritance perhaps the fire stick, one of which by agitation proceeds the flame in the other.

The good pair teirestriol offerer who performs the sacrifice, another celestial offerer who make it effectual.

See Bergaingne La Religion Vedique.

लड़विङ्ग साहब की विशेष सम्मति-:

Ludwing allows that the meaning after first two stanzas in problimatical, and Wilson says of his own translation.

These two verses, is rightly interpreted, are wholly unconnected with the subject of the Suka, and come in without any apparent object, they are very obssence, and are only made some what intelligible by interpretation and are very unusual, although not peculiar to Sayon bosed on those of Yosk.

विलसन महोदय की विशेष सम्मति--

The sonless father regulating(the contract)refers to his grandson (the son) of his daughter and relaying on the efficiency of the site,honours his

onlow with valuable gifts, the father, trusting to the unpragnation of the daughter supports himself with a tranquite mind.

Note:- The father is said to be a father only not of a son because he convays away (वहति प्राप यति) his property through his married doughter into another family. (शासद् शास्ति) he stipulates that his grandson, (द्रहितुर्नप्रयम्) shall be his son a mode of affiliation recognized by low and rely ing on an heir thus obtained on one who can performhis * funeral rites he is satisfied.

मिस्टर कीथ और मैकडानैलड अपनी "वैदिक इराडैक्स" में श्री स्वामी जी महाराज के अर्थों की पुष्टि करते हैं --

Mention further mode in Rigveda to the wedlock of Prajapati and his daughter which is how ever interpreted mythologically in the brahamans on interpretation which may be correct, but even though the mythological interpretation of the passages were not justified no connection could be drawn from the hymn.'

ये उपर्युक्त प्रमाण, हम ने अंग्रेजी पढे लिखों की संतुष्टि के लिये, उद्धत कर दिये हैं, इन का अनुवाद सायण, निरुक्त

(* पिन्डदान के अर्थ पश्चिमी विद्वान दाहक्रिया के करते हैं।)

और स्वामी जी के अनुकूल हैं। सब का यही आशय है कि नाना अपने धेवते को शास्त्र व्यवस्था के अनुसार अपना पुत्र बनाता है पोता समझता है। क्यों कि उसके कोई पुत्र नहीं है। इस लिये अपने धेवते को अपनी सम्पत्ति का अधिकारी बनाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार सूर्य अपनी उषा रूप पुत्री में किरण रूप वीर्य स्थापित करता है इस के लिये ऋग्वेद देखिये--

द्यौर्मेपिता जनिता नाभिस्तवन्धुर्मे माता पृथिवी महियम्।
उत्तानयोश्चम्वीयो र्निरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्
ऋ०१।१६४।३३

इस मन्त्र पर ग्रिफिथ साहब--

Dyaus is my father, my begetter:

Hinship is here. This great earthis my Hin and mother. Between the wide spread world bones is the birth place: the father loid the doughter's germ with in it.

इस पर नोट--

The firmament or space between these two is as the region of the rain, the womb of all beings. The father is Dyaus and the dougster is earth whose firtility depends upon the germ of rain loid in the firmament. P.225.

ऋ० १।१६८।३५ पर नोट-Dyaus or father heouen

ऋ० १।१८५।४ पर नोट-

Parents of gods:as with the Greeks. Heaven

and the earth are regarded as the father and mother of the gods.

ऋ० ३।१।७ पर ग्रिनक्रिथ- And the paired mighty mothers Heaven Earth.

ऋ० ५। ४२।१३ पर लडविग महोदय- Protector-Indra.- His daughter Earth. we have the germ of myth of Prajapati and his doughter.

ऋ० १।६१।५ पर ग्रिनक्रिथ -Maiden.: Apparentlty the daughters of Twashtra meaning perhaps as Ludwing suggests, the first down of the year.

ऋ० ६।१३।३ में बिजली को पानी का पुत्र कहा है। — देखो— Ehne, neer mythus nes yam P. 62.

ऋ० ६।१६।५५ पर विलसन महोदय — ३।१७। ७ पर Cent, mythologics. M.Reville Remarks, Sant Fondees Sur be marriage decciel cl de lo brre (और) Muir 6.5 Texts v. P. 24

ऋ० ६।३४। पर भी लडविग महोदय की सम्मति ।

ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाण—

१— प्रजापतिर्वै स्वां दुदित रमभ्य ध्याय द्विवमित्यत्य आदु रुषसमित्यन्ये! तामृश्योभूत्वा रोहित भूतामभ्यैत्।। तस्य यद् रेतस: प्रथम मुद दीप्यत तदसावादित्योऽभवत्।।

ऐतरेय पं० ३ का ३३-३४।

२—प्रजापतिर्वै सुपर्णोगरुत्मान एयसविता । शतपथ कां० १०, ५,२,४

३—तन्नयिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः । निरुक्त ४, २१,

पुत्रिका किस को कहते हैं ?—

१— अपभोऽनेन विधिता सुतां कुर्वीतपुत्रिकाम् ।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्ममस्यातचधाकरम् ॥

अर्थ--विना पुत्र वाला इस विधि से कन्या को "पुत्रिका बनावे कि" जो पुत्र इस से होगा वह मेरा जलादि दान करने वाला हो (ऐसा विवाह के समय जामाता से कहदे ।)

अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्या मलंकृताम् ।
अस्यां यो जायतेपुत्रः समे पुत्रो भविष्यति मनु० ६।१२८॥

अर्थ--बिना भाई वाली अलंकृत कन्या आप को दूंगा, परन्तु इस में जो पुत्र उत्पन्न हो वह मेरा पुत्र होवे ॥

३ —अपुत्रायांमृतायांत, पुत्रिकायांकथंचन
धनं तत्त्रिका भर्ती हरेतैवाऽविचारयन्॥६॥१३५॥

अर्थ--'पुत्रिका यदि पुत्र रहित ही मरजावे, तो उस धनको पुत्रिका का पति ही बिना बिचार किये ले लेवे ।

वकील और बैरिस्टरों के लिये

The daughter's Son occupies a peculier position in the Hindoo law. He is a bhinna gotra Sapinda or bandhoo, but he comes in before parents and other more remote gotroj Sapindas.

The reason is that according to the old practice it was competent to a Hindoo who had no son to appoint adaughter to rasist up issueto him such a daughter, no daughter was the lowful wife of her husband, but her son called Puttrica puttra, become the son of her father. Such a sun equal to an auras or legilimate son, and he took his rank, according to several authorities as the, highest among the secondary sons.Although the practice of appointing a daughter to raise up issue for her father become absolute, the daugh ter's son continued to ocupy the place that wa assigned to him in the order of inheritance an even now he takes a place practically next afte the male issue, the widow and(except in Bomba the daughter being simply interposed durin their respective lives. The difference in h possition under the old low and the present lo is that under the former he became by a ficti of low a member of his maternal grand fathe family, while under the present law he a member of his own father's family, but is a regarded as a son's son to his maternal gra

iather for purpuse of in heritance.
D.F.Mulla Hindu law Page 36.

उपर्युक्त लेख का आशय यह है कि जिसके पुत्र न हो और पुत्री हीं हो, उसको उचित है कि अपनी पुत्री को ही पुत्र बनाले। शास्त्र इस पुत्रीका नाम पुत्रिका धरता है, इससे जो पुत्र होगा वह उस नाना का पोता ही होगा और जायदाद का वारिस भी होगी। इस ही के जिम्मे उस बूढ़े बाबा-नाना की सेवा करना भी होगी।

"शासद् वन्हि०" पर गोपथ ब्राह्मण—

१—शासद् वन्हिर्दुहितुर्नप्तयंगादित्यच्छावाकः। तदाहुः कस्माद * च्छावाको वन्हि वदेतत् सूक्तमुभयत्र शंसति, सपराचु चैवाह सर्वाचु चेति।

गोपथ ब्राह्मण उत्तर भाग प्रपाठक ५। १५। पृ० १३४॥

२—इमा मूपूप्रभृतिं सातयेधा इच्छन्तीत्वा सोम्यासः सखायः। शासद वन्हिर्दुहितु र्नप्तयङ्गादिति भारद्वाजः।

गोपथ ब्राह्मण उत्तर भाग छठा प्रपाठक १। प्र०१३५

३—त्रीनेव सम्यातान च्छावाको विपर्यास मेकैकमहरहः शंसति, मामूपूप्रभृतिं सातयेधा इति प्रथमेऽहनि, इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखाय इतिद्वितीये, शासद् वन्हिर्दुहितुर्नप्तयङ्गादिति तृतीये। गो० ब्रा० उत्तर भाग प्रपाठक ६। १। पृ० १३५।

पुत्रिका के विषय में आप्टे जी की शुभ सम्मति-

A daughter, a dall, puppet.

A daughter appointed to raise male issue for a father who has no sons.

अपुत्रोऽनेन विधिनासुतां कुर्वीत पुत्रिकाम्। यदपत्यं भवेत्तस्य तन्ममस्यात् स्वधाकरम्। मनु० ६।१२७

---

* अच्छा वाक निर्मल वाणी।

A daughter who being regurded as a son returns to her father 's house.

पुत्रोकेव पुत्रः अथवा पुत्रिकेव सुतः पुत्रिका सुतः। सो ष्यौरस सम एव। याज्ञवल्क्य स्मृति पर मिताक्षरा २। १२८।

अर्थात्-एक कन्या, जिसको पिताका वंश चलाने के लिये नियत कर लिया जाय वह पिता जिसके कोई पुत्र न हो शास्त्रकी आज्ञा है कि—बिना पुत्र वाला (पिता) इस प्रकार अपनी कन्या को पुत्रिका बनाले। जो उस (पुत्रिका में) में सन्तान उत्पन्न होगी वह मेरी स्वाधाकार=वृद्धावस्था में सेवा करने वाली होगी। एक पुत्री जो कि पुत्र बनाली गई है अपने पितृ-वंश की ओर को लौटती है—वह घेवता दादा का वंश=गोत्र न चला कर नाना का वंश चलाती है।

पुत्रिका के समान पुत्र अथवा पुत्रिका के समान सुत= पुत्रिका सुत। यह (पुत्र) भी औरस के समान ही है।

अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलङ् कृताम्।
अस्यां योजायते पुत्रः समेपुत्रो भविष्यति॥ मनु० ६।१२८।

अनेनतु विधानेन पुराचक्रेऽथ पुत्रिकाः।
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः
ददौस दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश,
सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्त विंशतिम्॥ २६।

अर्थात्—बिना भाई वाली अलङ् कृत कन्याको मैं तेरे लिये दूंगा। (इस शर्त पर) कि जो इसमें सन्तान पैदा होगी वह मेरा

पुत्र होगी। दक्ष प्रजापति ने, पहले इस ही विधि से, अपने वंश की वृद्धि के लिये, पुत्रिका की थीं।

दस कन्यायें (पुत्रिका बना कर) तो धर्म को दीं, तेरह कश्यप को दीं और सत्कार पूर्वक प्रसन्नता से सत्ताईस सोमराजा को दीं। १२६।

कहिये ? जब इतनी कन्याय पुत्रिका धर्म से ५० पुरुषों को दीं तो यह कैसे सिद्ध हो गया कि पिता स्वयं ही अपनी कन्या को स्त्री बनाले ?

इस विषय में जो कोई अन्य शङ्कायें उठाई जाती हैं उनका उत्तर निम्न प्रकार है—

प्रश्न—"रेतः सेकम्" के अर्थ जामाता के कैसे हो गये ?

उत्तर—१—"रेतः सेकः" के अर्थ वीर्यसींचने वाले के हैं। यदि यह वीर्य सेचक पिता की कन्या का है तो इसके अर्थ जामाता के होंगे। यथा—रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासुच सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरु तल्प समं विदुः ॥मनु० ११। ५८।

अर्थः—सहोदर भगिनी, कुमारी, चण्डाली, सखा और पुत्र की स्त्री, इनमें वीर्य सिंचन करने वाला गुरु भार्या के संग गमन के समान (महापातकी) है। ५८।

२—रेतः सेकः—उपांशु तूष्णीं शंसं शंसत्युपांश्विव वै रेतसः सिक्तिः। ऐतरेय ब्राह्मण—१०। ७। पृ० २७६।

सायण भाष्य—"रेतः सेको ऽप्युपांशु सदृशो रहसि क्रियमाणत्वात्।

अर्थात्—वीर्य सेचक चुपचाप रहता हुआ एकान्त में क्रिया करने से।

आशय यह है कि गर्भाधान चुपचाप करता है। यहां पर भी "रेतः सेकः" कर्ता है।

३—दश मध्यन्दिने ऽन्वाह न्यूने वै रेतःसिक्तम्॥ ऐतरेचय ब्रा० ६। २८। १।

सायण भाष्य—अतो रेतः सेकस्थानीयाया अत्र गर्भस्थानीय संख्याधिक्यं युक्तम्॥ ६। २८। १ पृष्ठ ७०२।

४—रेतः सिग् योगोऽथ॥ वेदान्त दर्शन ३। १। २६।

विषय वाक्य—योयो ह्यन्न यत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति। छा० ५। १०। ६।

यहां सर्वत्र 'रेतः सेकः' कर्त्ता के अर्थ में वीर्य सेचन करने वाले के हैं।

प्रश्न—स्वामीजी ने "रेतः सेकम्" का "वीर्य सेचना" ऐसा भाव में अर्थ किया है?

उत्तर—स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में इस प्रकार अर्थ किये हैं-वन्हि शब्देन सूर्यो, दुहिता अस्य पूर्वोक्तैव। सपिता स्वस्या उषसो दुहितुः, सेकं किरणाख्य वीर्य स्थापनेन गर्भाधानं कृत्वा, दिवस पुत्रमजन यदिति।

अर्थात्—वन्हि शब्द से यहां सूर्य का ग्रहण है, दुहिता पूर्वोक्त उषा है,—वह पिता-सूय अपनी कन्या उषा में किरण रूप वीर्य की स्थापना करता है जिससे दिवस रूप पुत्र उत्पन्न होता है।

इस मन्त्र के अर्थ, जो स्वामी जी ने ऋग्वेद के भाष्य में किये हैं—हे विद्वान पुरुष! (यत्र) जिस व्यवहार में (पिता) उत्पन्न करता (वन्हि) वहन करने अर्थात् व्यहार में चलाने वाला (दुहितुः) कन्या के (सेकम्) सेचन को (ऋञ्जन्) सिद्ध करता हुआ (गात्) प्राप्त होवे उस व्यवहार में (विद्वान्) जानने योग्य व्यवहार का ज्ञाता (ऋतस्य) सत्य के (दीधितिम्) धारण कर्त्ता की (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (दुहितुः) दूर में हितकारिणी कन्या के (नप्त्यम) नाती में उत्पन्न हुए को (शासन्) शिक्षा देवे इस से (शग्म्येन) सुख में वर्तमान (मनसा) अन्तः करण से (सम, दधन्वे) सम्यक प्रसन्न होता है।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जसे पिता के समीप से कन्या उत्पन्न होती है वैसे ही सूर्य से प्रातःकाल की वेला प्रगट होती है और जैसे पति अपनी स्त्री में गर्भ को धारण करता है वैसे कन्या के सदृश वर्तमान प्रातःकाल की वेला में सूर्य किरण रूप वीर्य को धारण करता है उससे दिवस रूप पुत्र उत्पन्न होता है। (पति-जैसे स्त्री में गर्भ धारण करता है, यह दृष्टान्त है)

प्रश्न—इसमें क्या प्रमाण है कि यह पिता पुत्री का सम्बन्ध अकाशीय पदार्थों का है नकि पृथ्वी के मनुष्यों का ?

उत्तर—द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। उत्तानयोश्चम्वोर्यो निरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भं माधात्। ऋ० १। १६४। ३३ ॥

इस मन्त्र में बतलाया है कि—द्यौः पिता है, नाभिः बन्धु और यह विस्तृत भूमि माता है और इस पृथिवी में सूर्य गर्भ धारण करके वनस्पति आदि उत्पन्न करता है।

ऐसे स्थलों पर मानवी नाता=सम्बन्ध न समझ कर केवल कार्य कारण रूप ही समझना चाहिये।

प्रश्न—उषा सूर्यकी कन्या है, इसमें क्या प्रमाण है?

उत्तर—१—सरेतो मिश्रो भवति त्मयारेतः संजग्मानो निषश्चदिति रेतः समृद्ध्या एव। ऐतरेय ब्रा० ६।३०। १।

सायण भाष्य—प्रजापतिर्यदा स्वां दुहितरं दिवमुषसि चाधिष्कृन्नध्यस्कन्दत्तदानीमेव त्मया भूम्या स्वदुहित्ता संजग्मानः सङ्गप्राप्तोऽस्मिल्लोके। पृष्ठ ७६५।

इस स्थल पर स्पष्ट है कि प्रजापति सूर्य की दुहिता=पुत्री उषा हैं।

मीमांसा पर वर्त्तिककार की सम्मति—

प्रजापतिस्तावत् प्रजापालनाधिकारादित्य एवोच्यते सचारुणोदय वेलायामुषसमुद्यन्नभ्यैत्। सा तदा गमनादेवोपजायते इति तद्दहितृत्वेन व्यपदिश्यते तस्यां चारुण किरणाख्य वीज निक्षेपात् स्त्री पुरुषयोगवदुपचार इति।

इसका भी यही आशय है कि प्रजापति सूर्य है, प्रातः काल की लाली, जो सूर्य के उदयकाल में पूर्व की ओर दिखाती है। वह उषा सूर्य की दुहिता है—सूर्य से उत्पन्न होती है। उस उषा रूप दुहिता में पिता रूप सूर्य किरणरूप वीर्य को डालता है। इसको उपचार से स्त्री पुरुषका संयोग कहा गया है।

३—पुनातुते परिस्तुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता। वारेण शश्वतातन ॥ यजु० १९ । ४ ।

अर्थात—तेरे परिसुत सोमको सूर्य की दुहिता—उषा पवित्र करे।

महीधरार्थः—सूर्यस्य दुहिता पुत्री श्रद्धा ते तव परिस्तृतं सुरां सोमश्च पुनाति शोधयति। (यहां सूर्य की दुहिता श्रद्धा कही है।)

४—तेर्भिर्नो अद्यपायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः । अथर्व १९ । ४७ । ५ ।

अर्थात्—द्यौः=आदित्य की पुत्री उषा पालन करे।

५—देवी दिवो दुहितरा सुशील्ये उषासा नक्ता सदतां नियोनौ। आवां देवास उशती उशंत उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे। ऋ० १० । ७० । ६ ।

इसमन्त्र में भी उषा को सूर्य की दुहिता कहा है।

६—अरममाणो अत्येति गा अभिः सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरोरवम्। ऋ० ९ । ७२ । ३ ।

अर्थ—(अरममाणः) जो जितेन्द्रिय कर्म योगी (गाः) इन्द्रियों को (अत्येति) अति क्रमणा करता है (सूर्यस्य प्रियं दुहितु) सूर्य की प्रिय दुहिता उषाके (अभि) सम्मुख (तिरोरवम्) शब्दायमान होकर स्थिर होता है।

स्मरण रहे कि इस तीन प्रकार के जगत् में परस्पर सम्बन्ध

समान रूप से बताया गया है। आकाशगत तारागण आदि में पिता पुत्र आदिका सम्बन्ध वेद वर्णन करता है, जैसे—सूर्य, भौम, सौर्य आदि। इसी प्रकार वनस्पति आदि में भी जानना।

सूर्य की पुत्री उषा और विदेशी

१—त्रिनाँरयि.....दुहिता रुद्र प्रथम्। ऋ० १। ३४। ५

For the suns daughter: Surya, who is called the consort of the Asui. Grifith

अर्थात्—सूर्या जो कि अश्वी की रानी कहाती है, सूर्य की कन्या है।

२—हनामैनां.....कन्या नामभि: स्वरत्। ऋ० १। १६१। ५

Maiden: Apparentty the daughter of Twashtra meaning perhaps, as Ludwing suggosts, the first down of the year. Grifith.

अर्थात्—त्वष्टा की कन्यायें, जैसे लडविग का विचार है, वर्ष के आरम्भ की प्रथम ऊषा को कहते हैं।

३—द्यौर्मेपिता जनिता ऋ०१। १६४। ३३ पर निकिथ—

Dyans is my father, my begetter. Kinship is here. This great earth is my kin and mother. Between the wide spread world haves is the birth place: the father laid the daughter's germ within it. P,225. Grifith.

इस पर नोट—

The permament is space between there two is, as the region of the rain, the womb of all beings. The father is Dyaus and the daughter is earth whose firtility depends upon the germ of rain lived in the firmament.

त्वष्टा=सूर्य प्रजापति की दस कन्यायें ऋ0 १। ६५। २ पर ग्निकिथ-

४---Swashtra's ten dsughters. The fingers called daughters of the artist of the Gods.

अर्थात्—दस उंगलियां=वा किरणें सूर्य अथवा प्रजापति की दस कन्यायें हैं। पृ० १२४।

५—जलों को माता कहा है ऋ० १। ६५। ७ पृ० १२४।

His (son's) mother are the waters.

३—यूनानियों ने भी वेदों से ऐसा सम्बन्ध माना है

ऋ० १। १८५। ५ पर ग्निकिथ—

Parents of Gods, as with the Greeks, Heaven and Earth are regarded as the father and mother of the Gods. P. 248.

अर्थात्—यूनानी लोग द्यौः और पृथवी को देवताओं के माता पिता मानते हैं।

७—ऋ० १। १६१। ६—Heaven or Dyaus is here said to be the father of the snakes.

अर्थात्--द्यौः यहां पर सांपों का पिता कहा गया है। पृ० २५६

८—ऋ० ३। १। ७-६ पर ग्निकिथ—

And the qaired mighty mothers are Heaven and Earth.

अर्थात—यह बलवान जोड़ा द्यौः और पृथवी है पृ० ३१६।

६—ऋ० ३। ५। ७ पर

His mother: or his parents, Heaven and Earth. P. 324.

१०—ऋ० ३। ८। १ पर नोट—

The pair of mother or mothers and father Heaven and Earth. P. 326.

११—ऋ० ३। २६। ६ पर

Parents bosom inclose connetion with Heaven and Earth.

१२—ऋ० ३। २६। १३ पर

The sisters ten; the fingers used in producin fire.

अर्थात्—दस बहनें अग्नि उत्पन्न करने की दस उंगलियां

१३—ऋ० ३। ३१। २ नजामये तान्वो पर निरुक्थ आ

The son left not his portion to the brothe he mode a home to hold him parents gave Priest his being, of this good pair one actu one promoted. P. 348.

इस पर नोटः—

The son left not his portion to the brothe

इस पर विवसन:—

(a son) born often body does not transfer (paternal)wealth to a sister.

इस पर लड़विग:—The bodily son (Dyaus or of the heovenly waters) did not trousmit his inheritance (what is secrifice) to a brother.

A home: the plonts which receive and hold Agni, who obtains the in heritance of sacrifice. His parents: perhaps the fire stick, one of which by agitation prodecces the flame in the other.

The good pair: the terestrial offerer who performs the sacrifice, and the celestial offerer who makes it effectual. See Bergaingne, La Religion Vaidique. I.

इस विषय में लडविग साहब विशेष सम्मति देते हैं कि—

Ludwing allows that the meaning of the first two stanzas is problematical, and Wilson says of this own translation; These two verses, if rightly interpreted, are wholly un connected with the subject of the Sukta, and oome in without any apparent abject:

They are very obscure, and are only

mode some what intelligible by interpretation which seem to be arbitrary, and are very unusual, although not peculiar to Suyana, his explanation being based on those of Yoska. P. 348.

इस सारे लेख का आशय यही है कि ये सारी घटनायें आकाशीय पदार्थों की हैं। इनका पृथिवी सम्बन्धी मनुष्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह बात दूसरी है कि वे इस सूक्त के पदार्थ आशय को न समझपायें अथवा मन्त्रों की परस्पर संगति नहीं लगा सकें। किसी मन्त्र वा सूक्त के आशय को न समझना और बात है, और अश्लील होना और बात है। इन विदेशियों की सम्मति में जो जो मन्त्र अश्लील हैं। उनका भाष्य या तो उन्होंने किया ही नहीं है या लेटिन आदि दूसरी भाषाओं में किये हैं। देखो (गणानांत्वां) आदि पर महीधरी टीका और निम्नलिखित साहब का लेटिन में अनुवाद।

१४—ऋ० ५।४२।१३—प्रसूमहे.....दुहितुर्वक्षणासु पा मिनानो० पर निम्नलिखित साहब—

The great Sure Protector: Indra: His daughter: Earth. Here as Ludwing observes, we have the germ of the myth of Prajapati ,and his daughter. P. 506.

सूर्य—इन्द्रकी कन्या पृथिवी, जैसे कि लडविंग का विचार है। हमको प्रजापति और उसकी कन्या की आख्या मालूम हो

है। यही मन्त्र इस कथा का मूल प्रतीत होता है।

१५—ऋ० ५,४७,१ पर—

The Primitive Father: Dyaus or Heaven. P, 543.

१६—Heaven is Daughter Ushas or Dawn.

अर्थात्—द्यौः पिता है और उषा कन्या है।

१७—ऋ० १।७६।५। पृष्ठ ५४० .सूर्या–The daughter of the Sun, सूर्यपुत्री।

१८—ऋ० १।११६।१७

१६—ऋ० १।११६।२ प्रजापति--सूर्य। गषा उसकी कन्या।

२०—ऋ ६।१३।३ पर।

The child of waters: here said to mean the lightning born often watery clouId. P, 567.

अर्थात--जल के पुत्र से, यहां पर,विद्युत...से है वा जो जलीय बादलों से उत्पन्न होती है ,"

२१—ऋ० ६।१६।३५ पर विलसन साहब—

"गर्भे मातुः पितुपिंता०"

His father's father–here, as before, the mother of Agni is the earth, the father is heaven; Agni is said to be the father or fasterer of his parent heaven by transmittiny to it in flame and smoke of burnt offerings. P, 573.

यहां पर अग्नि की माता पृथिवी को कहा गया है। पिता द्यौः है अग्नि अपने माता पिता आकाश का पिता अथवा पालक है क्यों कि आहुति द्वारा (यह अग्नि द्रव्य को प्रज्वलित कर देता है।

२२—ऋ० ६।१७।७—"पप्राथ द्यां महि .....मातरा यही ऋतस्य।" पर ग्रिनक्रिथ—

Whose sons are Gods: Heaven and earth are friquently called the parents of the Gods. So in Greek mythology the Gods sprong from the union of Uraus and Gaia.

See Cent mythologies. M. Reville Remarks, Sonr fondees Sur le mariage du ciel et de la terri.

See Muir O. S. Texts V, P. 24.

अर्थात्—ग्रिनक्रिथ—यूनानी लोग भी देवताओं की उत्पत्ति पूरैनस और जिया के संयोग से मानते हैं। (पूरैनस= सूर्य, जिया=ज्या=पृथिवी है।)

२३—ऋ० ६। ३४। ४ पर लडविग साहब—

Surya the daughter of the sun, that is, the moon's light which is borrowed from the sun is an earlier conception. Ludwing. P. 595.

अर्थात्—सूर्या सूर्य की पुत्री है, अर्थात् चन्द्रमा की चादनी=ज्योति: सूर्य से ही ऋण में ली है, यह प्राचीन विचार हैं

२४—ऋ० ६ । ३७ । ३ पर निम्नलिखित नोट—

Vayu's Amrit Vayu is passessor of the Amrit probably is being Twashtra's son-in-law. Ludwing P,597. Vlll 26-21

अर्थात्—वायु अमृत का धारण करने वाला है सम्भवतः त्वष्ट्रा का जामाता है।

२५—ऋ० ६ । ४६ । ३ पर—

Two daughters are,Day and night.

दो कन्यायें दिन और रात । पृ० ६१५ ।

कार्य कारण भाव जताने के लिये ऐसे आलङ्कारिक वर्णन वेद में अनेक स्थलों पर आये हैं इन के संयोगादि में मनुष्यवत्, पाप पुण्य की आशङ्का करना नितान्त अज्ञानता है। पाप पुण्य की व्यवस्था केवल मनुष्यों में ही है। पशु, पक्षी, वनस्पति और तारागण इससे पृथक हैं।

देवताओं का पाप—

तद्देवाना भाग आस । य इत्थं स्वां दुहितरमस्माकं स्वसारं करोतीति । श० प० १ । ४ । ७ । २ ।

अर्थात्—वह देवताओं का पाप था। जो इस प्रकार अपनी पुत्री और हमारी बहन से करता है।

२—तं देवा अपश्यन्न कृतं वै प्रजापति करोतीति । तं देवा अब्रुवन अयं वै प्रजापति रकृतम् कस्मिन विध्येति सत्येत्यब्रवीत् । तमभ्यामह या विध्यत्स विद्धु ऊर्ध्व उद प्रयत तमेतंमृगं इत्याचक्षते । ऐतरेय ब्राह्मण ३ । ३३

किरणें बहने हैं—

ऋ० १ । १६४ । ६ ।—सप्तस्वसारो अभिसंनवन्ते यत्र गवां निहिताः सप्तसप्त ॥ अर्थात्—ये सात बहनें सात किरणों में निहित हैं।

प्रश्न—"सन्तान कर्मठो" के अर्थ हैं—सन्तान पैदा करने के लिये ?

उत्तर—निरुक्त के जितने भी टीकाकार हैं सबही ने इस वाक्य के अर्थ पिण्डदान के किये हैं। यथा—

यथा अभ्रातृका कन्या दत्तापि सति पित्रा, स्वीकृतापि भर्त्रा पुनः प्रतीची पितृन् एव पितृवंशमेव अभिमुखी एति सन्तान कर्मणे *पिण्डदानाय नपतिम्"। दुर्गाचार्यः।

अर्थात्—जिस प्रकार भाई रहित बहन पिता से देदी भी गई हो और भर्ता ने स्वीकार भी करली हो, (भाई रहित होने से) उलटी पिता के वंश की ओर ही आती है पिण्डदानादि के लिये नाना को नकि पतिको। आशय यह है कि वह पुत्रिका का पुत्र होने से नाना के गोत्र का होता है नकि दादा या पिता के गोत्र का। पित्रा दत्तापिसती, भर्त्रा स्वीकृतापि=पिताद्वारा दी गई हुई भी, भर्ता से ग्रहण की गई हुई भी"। क्या ये वाक्य य नहीं बतलाते हैं कि पिता और है और भर्ता और है ? यदि पि ही अपनी कन्या को स्वयं व्याह ले तो ग्रहण करने वाला भ

---

* पिण्डके अर्थ ग्रास के हैं।—देखो मनु०
स्वधा के अर्थ अन्न हैं—देखो निघंटु—

कौन ? भला इस हठधर्मी का भी कोई ठिकाना है।

प्रश्न—बिना भाई वाली कन्या से विवाह का निषेध है। यथानाभ्रातृं मुपयच्छेत तोकं यस्य तद् भवति।" निरुक्ते।

अर्थात्—बिना भाई वाली कन्या से विवाह न करे क्योंकि वह अपने पिता की सन्तान होती है"।

मनु भी निषेध करती हैं

यस्यास्तु न भवेद् भ्राता न विज्ञायेतवा पिता।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिका धर्म शङ्कया। ३।११।

अर्थात्—जिस कन्या का भाई न हो, जिसके पिता का कोई पता न हो, विद्वान् पुरुष उसको न ब्याहे—पुत्रिका धर्म की शङ्का से।

उत्तर—इस प्रकार की कन्या से विवाह कर लेने में कोई पाप नहीं है किन्तु निरुक्तकार और मनु स्वयं ही बताते हैं कि—उस कन्या के उत्पन्न हुई सन्तान दादा वा पिता का गोत्र न चला कर नाना का वंश चलायेगी।

क्या "पुत्रिका धर्म शङ्कया= पुत्रिका धर्म की शङ्का से; क्या इस पर ध्यान नहीं दिया ? यही तो हेतु दिया है कि कन्या का पिता उस बिना भाई वाली कन्या को धर्मानुसार "पुत्रिका" बना लेगा। पुत्रिका बनाना उस कन्या से विवाह कर लेना नहीं कहाता। हां जिसके कई पुत्र हों, और इस बात की चिन्ता न हो कि मेरा एक पुत्र यदि नाना के गोत्र का हो जायगा तो कोई सन्देह नहीं—अन्य पुत्र तो मेरे वंश की वृद्धि करेंगे, वह ऐसी कन्या से विवाह करले, कोई पाप नहीं। मन्त्र में बतलाया है

कि ऐसी कन्या का विवाह हो जाने से पिता इसही लिये प्रसन्न होता है कि—अब मेरा वंश चलेगा—मैं इस कन्या को 'पुत्रिका' बनालूंगा। विवाह से पहले उसको सन्देह था कि—यह कन्या बिना भाई वाली है, इससे कोई विवाह करेगा वा नहीं। मन्त्र में—"शग्म्येन मनसा संदधन्वे"—पिता मन से अपने आपको सुखी मानता है, आया है। इस पिता की खुशी का कारण यही है कि इस कन्या का विवाह हो गया।

"रेतः सेकम्" के अर्थ पूर्व ही बता दिये कि वीर्य सेचने वाले के हैं। वादी का यह कहना कि—पिता अपनी कन्या में वीर्य सिचन करके प्रसन्न होता है, नितान्त पक्षपात और हठ धर्मी है। सारे ही भाष्यकार "रेतः सेकम्" के अर्थ 'जामाता' करते हैं।

प्रश्न—स्वामी जी ऋ० भा० भू० में सिचन कर्म के ऐसे अर्थ करते हैं?

उत्तर—वहां पर पृथिवी, आकाश और उषा आदि का प्रसंग है। 'सेकम्' शब्द भाव और कर्त्ता दोनों अर्थों में आता है।

प्रश्न—मन्त्र में 'उषती, सुवासा, हस्नेव और अप्सः' शब्द बतलाते हैं कि वह कन्या कान्तवती, सुन्दर वस्त्र पहने हुए, हंसती हुई और दांत दिखाती हुई अपने पिता के पास जाती है।

उत्तर—ये सारे ही विशेषण उषा के हैं। यह उषा प्रातः वेला में प्रकाश करती हुई, सुन्दर वस्त्र पहने हुए, हंसती हुई और दांतों को प्रकाशित करती हुई सी प्रगट होती है। यह पुत्रीवत

उषा सूर्य रूप पिता की ओर को जाती है। ऐसे ही यह उषा जाती है जैसे पति की ओर रजोदर्शन के उपरान्त, स्त्री जाती है। इस पर भी दुर्गाचार्य का भाष्य देखिये—"यथा जाया पत्ये भर्त्रे सुवासा भूत्वा ऋतुकाले आत्मानं दर्शयति एवमुषा आत्मानं दर्शयति जनानाम्"।

अर्थात्—जिस प्रकार स्त्री सुन्दर वस्त्र पहन कर ऋतुकाल के समय अपने पति को अपना रूप दिखाती है वैसे ही उषा अपने आपको मनुष्यों को दिखाती है।

ज़रा वैदिक साहित्य पर भी दृष्टि डालिये कि यह उषा और सूर्य का विषय है—"प्रजापति स्वां दुहितरम भिदध्यौदिवंवोपंसवा मिथुन्यनेया स्या मितितां संबभूव तद्दै देवानामाग आस स इत्थं स्वां दुहितरं स्वां स्वसारं करोति"

इसके अतिरिक्त भ्राता और पिता आदि से विवाह करने का निषेध वेद स्पष्ट रूप से कर रहा है—

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेवच।
वज्रास्तान्त्स हता मितः क्लीवरूपां वस्तिरीटिनः।
अथर्व-८।६।७॥

अर्थः— (यः) जो पुरुष (भ्राता) तेरे भाई (पिता इवच) और जो पिता के समान हो (वह) (स्वप्ने) निद्रा के समय (निपद्यते) नीच भाव से तेरे पास आता है (तान्) ऐसे दुष्टोंको (क्लीवरूपान्) नपुसंक और (तिरीटिनः) टेढ़े रास्ते पर जाने वाले पुरुषों को वह (वज्रः) उत्तम तेजस्वी पुरुष (सहताम्) पराजित करे।

इस मन्त्र में बताया है कि पिता क्या जो पिता के समान हो वह भी यदि कुचेष्टा करे तो पापी है। उसको दण्ड देना चाहिये।

प्रश्न—स्वामीजी ने शिष्य की गुदा साफ़ करनी लिखी है ?

उत्तर—क्यों अनर्थ ढाते हो ? तुमको कुछ लोक और परलोक का भी भय हैवानहीं ? अच्छा अपने महीधर और श्री स्वामी जी महाराज इन दोनों के मन्त्रार्थ आपके सामने प्रस्तुत किये जाते हैं—

मन्त्रः—वाचंते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि ६ । १४

स्वामी जी के अर्थ-

हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओं से (ते) तेरी (वाच्यम्) वाणीको (शुन्धामि) शुद्ध अर्थात् सद्धर्मानु कूल करता हूं (ते) तेरे (चक्षुः) नेत्र को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (ते) तेरी (मेढ्रम्) लिङ्ग को पवित्र करता हूं (ते) तेरे (पायुम्) गुदेन्द्रिय को (शुन्धामि) शुद्ध करता हूं (चरित्रान्) समस्त व्यवहारों को (शुन्धामि) पवित्र अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूं। गुरुपत्नी पक्षमें "करती हूं" ऐसी योजना करनी चाहिये।

भावार्थः—गुरू और गुरू पत्नियों को चाहिये कि वेद और उपवेद तथा वेद के अङ्ग और उपाङ्गों की शिक्षा से देह इन्द्रिय अन्तःकरण और मन की शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा

प्राण की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियां को अच्छे २ गुणों में प्रवृत्त करावें।

इस मन्त्र में बतलाया है कि गुरू और गुरू पत्नियों को उचित है कि वे अपने शिष्य और शिष्याओं को अच्छे आचरण सिखावें।

वाणी की शुद्धता—"वाचंवदतुशान्तिमान्"=वाणी शान्तियुक्त बोलना यह वेद वाक्य है। ओं वाक् वाक् भी यही शिक्षा देता है।

प्राणों की शुद्धता—प्रणायामादुशुद्धि क्षय ज्ञानदीप्तिरा-विवेकरव्याते:-योगसूत्र।

प्राणायामसे अशुद्धिका क्षय ज्ञानकी दीप्ति पूर्णज्ञान प्राप्त होने तक। ओं प्राण: प्राण: देखो सन्ध्या में प्राणों की शुद्धि।

आंखों की शुद्धि—"भद्रंपश्यमाक्षिभि:=आंखोंसे कल्याण को देखें। यह वेद का वाक्य है। ओं चक्षु: चक्षु: का सन्ध्या में यही तात्पर्य है।

कानों की शुद्धि—"भंद्रकर्णेभि:शृणुयाम"=कान से कल्याणकारी शब्द सुनें—निन्दा कुचर्चा आदि न सुनें। ओं श्रोत्रं श्रोत्रसे सन्ध्या में यही शिक्षा दी गई है।

ओं नाभि:—सध्यामें नाभि की शुद्धि बताई गई है।

लिङ्गकी शुद्धि—"तल्परोहणम्" (पातकम्) निरुक्त ६-२७।

पायु=गुदा की शुद्धि--

"रिस्कृत्योच्चरेत्काष्ठ लोष्ठ पत्र तृणादिना।
नियम्य प्रयतोवाचं संवीताङ्गोगडव गुण्ठित:॥

मूत्रोच्चार समुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ् मुखः।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्यायाश्च यथा दिवा।
मनु० अ० ४। श्लो० ४६। ५०।

अर्थ—लकड़ी, ढेला, पत्ता, घास, आदि से छिपकर कर दिशा फिरे। बोले नहीं, शरीर पर कपड़ा ओढलेवे, और गठकर बैठे॥ ४६।

दिन और दोनों सन्ध्याओं में उत्तर की ओर मुखकर के और रात को दक्षिण मुख होकर मलमूत्र त्याग किया करे॥ ५०

ये हैं लिङ्ग, और गुदा की शुद्धि।

मनु जी कहते हैं कि—"शिक्षयेच्छौच मादितः"

प्रथम ही शिष्यको शौचविधि सिखावे।

इस ही लिये शिक्षाध्याय में लिखाकि "धर्मंचर" इत्यादि।

आशय यह है कि प्रत्येक इन्द्रीसे, ब्रह्मचारी, शुद्ध व्यवहार करे यही इन्द्रियों की शुद्धता है। मन, चित्त,, अन्तःकरण और आत्मा आदि की शुद्धि, उनकी पवित्रता और पुष्टि जलादि द्वारा वा हाथ पांओं से न होकर, उनके शुद्ध और उचित व्यवहार से ही होती है। देखिये वेद भगवान क्या शिक्षा देते हैं—

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरोऽगात्।
आयेहि स्कम्भ उपमस्य नीडे यथां विसर्गेधरुणेषु तस्थौ। ऋग्वेद १०। ५। ६। इसपर निरुक्त—

"सप्तैव मर्यादाः कवयश्चक्रुः, तासामेकामप्यभिगच्छन्नंहस्वान् भवति—स्तेयं, तल्पारोहणं, ब्रह्महत्यां, भ्रूण हत्यां

सुरापानं, दुष्कृतस्यकर्मणः पुनः पुनः सेवां, पातकेऽनृतोद्यमिति ६।२७।

अर्थात्— बुद्धिमानों ने सात मर्यादाएं निश्चत की हैं, उनमें से जो कोई किसी एक भी मर्यादा को प्राप्त करता है वह पापी कहाता है। जो मनुष्य सातों मर्यादाओं से बचता हुआ पापका भागी नहीं बनता वह निश्चय से जीवन के स्तम्भ, उच्चतम शान्ति के धाम, और जहां अनेक मार्गों की विसृष्टि नहीं, ऐसे सर्वाधार परमेश्वर में तथा धारक शक्तियों में स्थित होता है।

सात मर्यादायें–१-चोरी, २-परस्त्री गमन, ३-ब्राह्मण की हत्या, ४-गर्भपात, ५,मद्यपान, ६-किसी बुरे काम को जानकर भी पुनः २ करना और ७-किसी पाप के छुपाने में झूंट बोलना ॥ कोई २ सात मर्यादाये इनको कहते हैं—

"पान भक्षाः स्त्रियो मृग्या दण्ड पारुष्य मत्यदूषणम्" ॥

१—मद्यपीना, २-जुआ खेलना, ३-व्यभिचार, ४-शिकार, ५-अकारण दण्ड देना, ६-अकारण किसी को कठोर बोलना, ७-पराये दूषणों का बखान करना।

परमात्मा ने यह गुरुमुख से शिष्य के प्रति कहलवाया है। इसको कहा है—"चरित्रान्स्ते शुंद्धामि"=तेरे चरित्रों को पवित्र करता हूं।

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र मुरादाबादी "चरित्रांस्ते शुद्धामि" का अर्थ "तेरे चरित्रों को शुद्ध करता हूं ऐसा भी करते हैं। परन्तु जब महीधर के अर्थानुसार इस मन्त्र को मरे हुए घोड़े के अङ्ग प्रत्यङ्ग यजमानकी स्त्री से धुलवाने में किये हैं तो फिर मरे

हुए घोड़े के चरित्र क्या सुधारे जायेंगे ? चरित्र तो जीवित के ही सुधारे जाने सम्भव हैं। अतः स्वामिकृत अर्थ गुरुशिष्य पर कहीं शुद्ध और निर्दोष है।

अब महीधर जी के अर्थ सुनिये—

यशोः प्राणाञ्छुन्धति पत्नी मुखं नासिके चक्षुषी कर्णौ नाभि मेढ्रं पायु पादान् संहृत्य वाचंते शुन्धामीति प्रतिमन्त्रंमिति पत्नी प शुसमीप उपविश्य मृतस्यपशोः प्राणान्मुखादीन्यष्टौ प्राणायतनानि प्रति- मन्त्रं शुन्धति शोधयति अद्भिः स्पृशतीति सूत्रार्थः॥ पशुदेव तानि हे पशो ! अहंते तववाचं वागिन्द्रियं शुन्धामि शोधयामि । एव मग्नेऽपि प्राणां प्राणवायुं प्राणेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रियं श्रोत्रेन्द्रियं नाभं नाभिछिद्रं मेढ्रं लिङ्गम् पायुं गुदम् चरन्ति गच्छन्त्ये भिरिति चरित्राःपादाः एवन्स्वदीयानिसर्वेन्द्रियाणि शुन्धामि।

भाषार्थः—यजमान की स्त्री मरे हुए पशु के प्राणों को, मुख को, नाक को,आंखों को, कानों को नाभि को लिङ्ग को, गुदा को, पैरों को धोती हूं ऐसा प्रत्येक मन्त्र को बोलकर कार्य आरम्भ करे। पत्नी मरे हुए पशु के समीप बैठ कर मुख आदि आठ प्राणायतनों को प्रत्येक मन्त्र से शुद्ध करती है धोती है। अर्थात् जल से धो २ कर पात्र में रखती जाती है और कहती है—पशु देवता के निमित्त—हे पशो। तेरी वाक् इन्द्रिय को-जिह्वा को धोती हूं, इसही प्रकार प्राणवायु को, आंखों को, कानों को, नाभि को, लिङ्गको, गुदा को और पैरों को अर्थात् सारी इन्द्रियों को धोती हूं।

पाठक गण ! विचारिये क्या अच्छा दृश्य है ? यज्ञशाला में मरा हुआ पशु—घोड़ा पड़ा है। यजमना की स्त्री

छुरी लिये उस मुर्दे के समीप बैठी है। मुख, नाक, कान, आंखे, नाभि, लिङ्ग,गुदा, और पांवों को काट रही है और एक यज्ञपात्र में धरती जाती है। सनातनी पण्डित घोड़े की प्रजनेन्द्रिय यजमान की स्त्री से कटवा और धुलवा रहा है। यह दृश्य सनातनियों को बड़ा सुहावना प्रतीत होता है। महीधर—सनातनी पण्डित यह लीला करा रहा है और श्री स्वामी जी महाराज शिष्य को, प्रत्येक इन्द्रिय से अच्छे कार्य करने को, शिक्षा दे रहे हैं। पाठक जिन अर्थों को भला समझें ग्रहण करलें। हमने दोनों अर्थ रख दिये हैं। पं०ज्वाला प्रसाद जी मिश्र अपने "मिश्र भाष्य में और गिरिधर जी अपने भाषा भाष्य में भी महीधर का अनुसरण करते हैं। ग्रिफिथ और एजर्लिंग साहिब भी अपनी अंगरेज़ी टीका में ऐसा ही अर्थ महीधरानुकूल, करते हैं। इन सब ही विद्वानों ने कात्यायन का अनुसरण किया है। शतपथ ऐसा नहीं कहता।

शोक तो इस बात का है कि इन नामधारियों को ऐसे घृणित अर्थ अत्यन्त ही प्रिय हैं। इनको उचित तो यह था कि श्री स्वामी जी कृत अर्थों को सहर्ष स्वीकार के इन विदेशियों को मुंह तोड़ उत्तर देते। परन्तु ऐसा न करके उलटे और उनके आक्षेपों की पुष्टि करने में सारी ही विद्या समाप्त करना आरम्भ कर देते हैं। यह है इनके वैदिक होने का प्रमाण !!

प्रश्न—ऐसे अश्लील अलङ्कार वेदों ने क्यों रक्खे ?

उत्तर—जहां पर जन्यजनक, कार्यकारण और सन्तति का वर्णन होगा वहां पर यही शैली उपयुक्त है। इसही वैदिक शैली

का सारे ही विद्वानों ने अनुसरण किया है। विचारिये प्रजापति किसको कहते हैं ? निम्नलिखित साहब कहते हैं।"Prajapati, the progeniter of Gods as well as of men."

ऋ० १।४५।१।पृ० ६२।

अर्थात्—प्रजापति देवता और मनुष्यों को उत्पन्न करने वाला है। इसी प्रकार और कई स्थलों पर इन पश्चिमी विद्वानों ने प्रजापति के अर्थ—creative power, nature, Pra krite आदि किये हैं। 'अप्' के अर्थ सृष्टि के आदि में जो इस जगत्' की द्रव अवस्था थी उसके हैं जिसको Primary lipuid state कहते हैं। इस द्रव=तरल=रक्कीक़ पदार्थ में ही सारी जीवन शक्तियां रहती हैं। स्मरण रहे वेदों और अन्य विद्वानों ने भी सारे जगत् की उत्पत्ति क्रम को तीन स्थानों में विभक्त किया है—

आकाश, पृथिवी और मनुष्यों के शरीर। मनुष्यों के शरीरों के अतिरिक्त, इस पृथिवी पर भी कई भाग किये हैं—Animal Kingdom, Vegitable Kingdom and Human Kingdom. पशुपक्षीजगत, वनस्पतिजगत् और मानुषी जगत्।

आकाशीय जगत्में जो Heavenly bodies—आन्तरिक्ष्य तारागण आदि कहाते हैं उनमें भी जन्यजनक=कार्य कारण—माता पिता आदि का सम्बन्ध रहता है। इस ही प्रकार मनुष्य समाज और वनस्पति अथवा पशु जगत् में भी रहता है। आन्तरिक्ष्य पदार्थ जड़ होने से उनमें पाप पुण्य की व्यवस्था नहीं। पशु पक्षी आदि भोगयोनि हैं इनमें धर्माधर्म का व्यवहार नहीं होता

अब रह गया केवल मनुष्य की, बस इसही में सारी शास्त्र मर्यादायें विद्यमान हैं। इसही में धर्माधर्म की व्यवस्था रहती है। यही वर्ग कर्म और भोगयोनि होनेसे पाप पुण्य का भागी कर्मानुसार बनता है।

यह प्रजापति Creative power ही Femalslife unit रयि शक्ति को उत्पन्न करता है। इस अपने से उत्पन्न की हुई रयि—स्त्री शक्ति में Life seed—जीवन तत्व डालना ही पुत्री को उत्पन्न करके उसमें बीज डालना कहाता है। यह स्त्री-शक्ति पशु, पक्षी, वनस्पति, तारागण, मनुष्य और कीट पतङ्गादि तक में व्यापक हो गई। वह प्रजापति Praginiter अथवा Creative power उत्पन्न करने वाली शक्ति भी तद्रूप होती हुई उन से व्याप्यव्यापक सम्बन्ध जोड़ती रही।

जरा आजकल के ही Cosmology सृष्टि विज्ञान पर दृष्टि डालिये। यह Primary life unit—आदि मूल जीवन तत्व अपने को दो जगह विभक्त करता है—स्त्री शक्ति और पुरुष शक्ति=रयि और प्राण। फिर उसमें (स्त्री शक्ति पार्थिव में) अपने Phermवीर्य अथवा रेतस्, जिसको Seed कहते हैं, अर्थात् Fertizal ovum में धारण करता है देखिये मनु—

"अपएव ससर्जादौ तासुवीर्यं मवासृजत्" ॥ मनु० १। ८।

तदुपरान्त Parent-बीजमूल Primary life unit—अपने से एक Daughter life unit—पुत्री को पैदा करता है फिर उसमें बीज धारण करता है—इस प्रकार सृष्टि की वृद्धि होती है इस ही नियम से पशुसृष्टि के वर्णन में वही daughter

life unit—गाय, घोड़ी, गधी आदि अनेक रूपों के Fertized ovum को ग्रहण करती है और Parenl life unit उन्हीं के नरों के रूपो के Sperm वीर्य को उसमें डालकर Animal Kingdom पशुसृष्टि की वृद्धि करते हैं। इस विषयको जानने के लिये R. H. Lock M.A.S.C.D. की रचित पुस्तक Varia tion Haridity and Evolution देखिये।

प्रश्न—स्वामीजी ने गुदा से अन्धे सांपों को पकड़ना लिखा है।

उत्तर—आप लोगों ने सदैव ऋषि महर्षियों और माह-त्माओं को दोष ही लगाया है या कभी उनके विषय में पूज्यबुद्धि भी रक्खी है या जिस दिन परमात्मा ने संसार को बुद्धि बांटी थी उस दिन आप अनुपस्थित थे ? सत्यार्थ सुनिये—

मन्त्र—पूषणं वनिष्ठुनान्धादीन् स्थूल गुदाया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमण्डाभ्यां वाजिन थं शेपेन प्रजा थं रेतसा चापन् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छक पिण्डैः। यजु० २५।७॥

भाषार्थः-हेमनुष्यों! तुम (वनिष्ठुना) मांगने से (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को (स्थूलगुदया) स्थूल गुदेन्द्रिय के साथ वर्त्तमान (अन्धादीन्) अन्धे सांपों को (गुदाभिः) गुदेन्द्रियों के साथ वर्त्तमान (विह्रुत) विशेष कुटिल (सर्पान्) सांपों को (आन्त्रैः) आंतों से (अपः) जलों को (वस्तिना) नाभि के नीचे के भाग से (वृषणम्) अण्डकोषको (अण्डाभ्याम)

आंडों से (वाजिनम्) घोड़े को (शेपेन) लिङ्ग और (रेतसा) वीर्यसे (प्रजाम्) सन्तान को (पित्तेन) पित्तसे (वासान्) भोजनों को (प्रदरान्) पेटके अङ्गो को (पायुना) गुदेन्द्रिय से और (शक्वरिपण्डैः) शक्तियोंसे (कृष्मान्) शिखावटों को निरन्तर लेओ।

इस अध्याय के आरम्भ से ही शरीर के अङ्गों का वर्णन किया गया है--यथा—"शादंदद्भिः०"=दांतों से छेदन किया जाता है। इसप्रकार मुख, ग्रीवा आदिका वर्णन करते हुए पेट की आंतों का वर्णन किया है। इसमें बतलाया गया है कि पुष्टि= बलकी वृद्धि इच्छा शक्ति Will power से होती है अर्थात् यदि पुष्ट होना चाहते हो तो सबसे प्रथम इच्छा शक्ति को लो—ग्रहण करो अथवा बलकी वृद्धि इच्छा शक्ति से जानो। स्थूलगुदा से सम्बन्धित अन्धे सांपों के समान आंत को जानो। गुदा से ऊपर भाग में वर्तमान आंतों को कुटिल सांपों के समान जानो। इससे ऊपर की आंत को कुछ सांपों के समान जानो। नाभि के नीचे जो मसाना है, उसका सम्बन्ध जलीय भाग=मूत्रसे जानो। वीर्य का कोष आंडो को समझो। घोड़े के समान वेगको लिङ्ग से सम्बन्धित जानों। वीर्य से सन्तानोत्पत्ति समझो। पित्तसे भोजन पचता है यह जानो। पेटकी अन्य आंतों का भी गुदा से ही सम्बन्ध है ऐसी धारणा करो। शरीर में जो नवसंसिष्टम शाकपिण्ड है उसको बल का हेतु जानो।

यह स्मरण रहे कि यहां पर क्रिया कोई नहीं है। "ग्रहण करना" इस उपयुक्त क्रिया को स्वामी जी ने इसमें जोड़ा है। इस

ग्रहण करने के अथ पकड़ने के नहीं किन्तु जानना समझना आदि हैं। जैसे "इस शब्द के यह भी अर्थ समझने चाहियें।" यहां ग्रहण करना हाथ आदि से पकड़ने के अर्थ में नहीं है किन्तु समझने के अर्थ में है। *

१—वाजीकरण नाम इस हीं लिये उन औषधियों का है जो इस कार्य में आती हैं। इसही लिये उनका नाम अश्व गन्धा= अश्वगन्ध आदि है। "वाजीकरण" शब्द ही बताते हैं मनुष्य के भीतर अश्वकी सी शक्ति—काम उत्पन्न हो।

नोट—"निगृह्णीति" शब्द के सायण जी कृत अर्थ= क्रोधेन आददे स्वीकारोमि निगृह्णामीत्यर्थः।

अर्थात्—क्रोधसे ग्रहण करता हूं अर्थात् स्वीकार करता हूं।

ग्रहण शब्द के अर्थ—

ग्रहण—न० ग्रह भावादौल्युट्। स्वीकारे, आदाने, करे, ज्ञाने बन्धेने, चन्द्र, सूर्ययोः ग्रासे, इन्द्रियेच॥ शब्दस्तोम महानिधि।

---

* शरीर में कौन २ वस्तु कहां २ रहती है, यह बात इस मन्त्र में बतलाई गई है।

१—स्थूल आंत गुदा से सम्बन्ध रखती हैं। २—कुटिल लच्छेदार आंतें उस गुदावाली आंत से सम्बन्धित हैं। ३—पित्त भोजन पाचने वाली वस्तु, जिगर में रहती है। ४—मूत्र मासने में रहता है। ५—वीर्य अण्डकोषों में रहता है। ६—वेग लिङ्ग में रहता है। ७—सन्तान वीर्य से होती है। लिङ्ग के वेग का दृष्टान्त अश्व से दिया है।

अर्थात्—नपुंसक लिङ्ग में ग्रह धातु से भावादि में 'ल्युट्' प्रत्यय होता है। स्वीकार करने, लेने, कर, ज्ञान, बांधने, चन्द्र सूर्यके ग्रहण और इन्द्रिय के अर्थ में है।

इसी लिये उनका नाम अश्वगंधा—असगंध—आदि है। "वाजीकरण" शब्द ही बताता है कि मनुष्य के भीतर अश्व की निःशक्ति—काम उत्पन्न होता है।

इस विषय पर डाक्टरों की सम्मति...

Intestine = पेट की आंतों का वर्णन —

1—The small intestine--छोटी आंत की व्याख्या--

The small intestine is about twenty five feet long. It begins at the right hand end of the stomach, just under the liver, and ends down near the right groin.

It is divided into three parts:-the duodenum the jejunum and the ileum.

अर्थात्—यह छोटी आंत जो कि लग भग २५ फीट लम्बी है, यह (मेदे) पेट के दाईं ओर के सिरे से आरम्भ होती है, ठीक जिगर के नीचे से और दाहने जंघासे के अंत में नीचे की ओर जाकर समाप्त होती है यह आंत तीन भागों में विभाजित है—१—ड्यूडिनम, २—जेजुनम, ३—इलीयन।

1—Duodenum—

The duodenum is the first part, that which is joined to the stomach, is about eight or ten inches long.

अर्थात्—ड्यूडिनम पहला भाग है जो कि मेदे से सम्बन्धित

है और लग भग आठ या दस इञ्च लम्बी है।

2--Jejunum—

The jejunum (from a word which means empty because it is generaly found empty after death) comes next, and is about eight feet long.

अर्थात्—जेजुनम (यह शब्द खाली अर्थ में है क्यों कि मरने के बाद इसको खाली ही पाया गया) यह दूसरी है और लग भग आठ फीट लम्बी है।

3—Ileum

The ileum (from a word which signifies to twist and so called from its numerous coils in cludes the remaining ten or twelve feet of the small intestine.

अर्थात्—इलियम (यह उस शब्द से निकला है जो मरोड़ ने के अर्थ में है, और इस लिये यह इसका नाम पड़ा कि इस के बहुत से लच्छे या कुंडलियाँ होती हैं।) यह उस छोटी आंत से संबन्ध रखती है जो कि दस या बारह फीट लम्बी है।

The large intestine=लम्बी आंत—

The large intestine extends from the end of the small intestine near the right groin, to the bowels or the anus. It is about five feet in length, and has the following course:—

अर्थात्—यह बड़ी आंत छोटी आंत के सिरे से फैलती है—

आरंभ होती है और दाहने जंघासे तक पहुंचती है। यह आंत आंतड़ियों या गुदा से संबन्ध रखती है। यह लग भग ५ फीट के लंबी है और निम्न प्रकार से इसकी गति है—

First it mounts upward from the place of begining to the underside of the liver, passes directly across to the left side abdominal cavity where it takes a sudden turn, known as the Sigmoid Flexer, and there becomes the rectum, or straight intestine, which is the last portion, and ends in the anus.

अर्थात्—सब से प्रथम जिगर के भीतरी भाग के आरंभ से यह ऊपर को चढ़ती है और पेट के गढ़े के बांई ओर को पार करती हुई गुजरती है, जहां पर वह एक दम लौट पड़ती है और जिसको सिगमोइडकज कहते हैं, वहां पर यह रैक्टम या सीधी आंत बन जाती है जोकि अन्तिम भाग है और गुदा तक जाकर समाप्त होजाता है।

Mounting upwards in the right side of the abdomen, passing across the upper part and then turning on the left side the large intestine folds itself around them. The large intestine is divided into three parts :— the caecum the colon, and the rectum, derived from the

word which means blind, is the first part of the large intestine, and extends downwards from the point where the small intestine enters the large pouch, generaly about two and half inches long and wide.

अर्थात्—पेट के दाहनी ओर से ऊपर को चढती हुई ऊपर के भाग में को गुजरती हुई, और बाईं ओर को लौटती हुई, बड़ी आंत इनके चारों ओर लिपट जाती है। यह बड़ी आंत तीन भागों में विभक्त है:—सीकम, कोलन और रैक्टम। यह रैक्टम शब्द उस शब्द से निकला है जो *अन्धे के अर्थ में है। यह बड़ी आंत का पहला हिस्सा है और नीचे की ओर को फैला हुवा है उस स्थान तक जहां पर छोटी आंत बड़ी थैली तक जाकर पहुंचती है। यह विशेष कर लग भग ढाई इंच लंबी चौड़ी है।

The Colon is all that part of the large intestine which ascends from the caecum to the abdominal cavity, runs cross the left of the abdomen, and descends on the left side to the pelvis, where it terminates in the rectum. These three devisions of the Colon are known as ascend ing colon, the transverse colon and the de scending colon. The rectum, the last six or eight inches of the intestine, is so called from a

* वेद ने इसही आंत को "अन्धा दोन" = अन्धा सांप कहा है

word which means straight because it is less flexous than any other part of the intestinal conal. It begins at the upper part of the O S Sacreem, where the colon ends and going down obliquely, it is tied to the extremeties of the Coccyx by arcolar tissue behind, and is connected with the neck of the bladder in men, but in women with the Vagina before: whence arises the Sympathy between those parts.

देखो—पुस्तक Human Body. P. 52—54.

उपर्युक्त अंग्रेजी लेख का वही आशय है जो वेद भगवान ने बताया है। "रैकटम" वह आंत है जो अन्धे सांप के समान है यह सारे नाम वेदों से ही लेकर रक्खे गये हैं। कहिये, डाक्टरी पुस्तक से भी, इस गुदा से सम्बन्ध रखने वाली, आंत का नाम रैक्टम = अन्धी आंत सिद्ध है। तो क्या डाक्टरी भी स्थूल गुदासे अन्धे सांपों को पकड़ना बताते हैं।

अब एक और दूसरी डाक्टरी पुस्तक का प्रमाण लिखिये।

The caecum, the commencement of the large intestine, is the large *blindpouch* situated between the colic valve. Its **blindend** is directed downward, and its open end upwards communicating directly with the colon, of

which this **blindpouch** appears to be the beginning or head and hence the old name of Caput Caccumeoli was applied to it.

देखो पुस्तक

"Anatomy" Edited by—

Robert Hauden M. A., D. Sc., M. B. C. M., Professor of Anatomy in the University of Durham. P. 1092.

मन्त्रमें "स्थूल गुदया" यह एक वचन है और "गुदाभिः" यह बहु वचन है। स्थूल गुदा उस आंत को कहते हैं जिसका सिरा मलको बाहर निकालता है। इस अंतिम सिरे को ही कांच कहते हैं। डाक्टरी में इसका नाम Blind pouch अंधी आंत रक्खा हुआ है। वेदने इसको अन्धाहीन् कहा। इस आंत से कई छोटी २ आँतें सम्बन्धित हैं इसलिये "अन्धाहीन्" बहु वचन कहा है। "गुदाभिः" यह बहुवचन है। कुटिल सर्प और केवल सर्प का इससे सम्बन्ध है। डाक्टरी, कुटिल सर्प को, Coilae = लच्छा या इंडली बांधे हुए सांप कहती है। वेद विद्वत अन्त्रैः कहता है। डाक्टरी straight intestine सीधी आंत कहती है। वेद 'सर्पान्' ऐसा कहता है। अब पाठक गण सोचें कि यहां पर गुदा से अन्धे सांप पकड़ने का विषय है अथवा शारीरिक विद्या सम्बन्धी आंतों का वर्णन है? जिन वेद मन्त्रों से अनादि शारीरिक विद्या सिद्ध होती है उनमें इन हठी सनातनियों को अश्लीलता दीख पड़ती है !!!

परमात्मन्! इन सनातनियों की बुद्धि को शुद्ध करो जिससे

यह लोग आपके अखण्ड, सर्वोपरि और पूर्णज्ञानमय वेद भण्डार की महिमा को जान सकें।

अब इसही मन्त्र की 'महीधरी टीका भी सुन लीजिये। इस टीका को देखकर भी यदि इन नामधारी सनातनियों का सिर नीचा न हुआ तो देश और जाति का दौर्भाग्य ही है

"पूषणं वनिष्ठुना०" यजु० २५। ७। पर महीधर—

इस अध्याय के आरम्भ में ही महीधर जी कहते हैं कि—"तत्र शादं दद्भिरित्यादि—पृथिवीं त्वथे त्यन्तः संहिता भागो ब्राह्मणं न मन्त्राः। शादादयोदेवाः दन्ताद्यङ्गानि"।

अर्थात्—यहां पर "शाद दद्भिः" से लेकर "पृथिवीं त्वचा०" मन्त्र ६ तक संहिता भाग है न कि मन्त्र भाग। शाद आदि देवता हैं औ. दन्त आदि अङ्ग हैं।"

महीधर जी के लिखने का आशय यह है कि—इस २५ वें अध्याय के एक मन्त्र से ६ मन्त्र तक पशुओं के विशेष २ अङ्गों से विशेष २ देवताओं के निमित्त स्वाहान्त शब्दों से आहुतियाँ देनी चाहियें। "शाद" कोई देवता है, इसके लिये घोड़े के दांतों की आहुति दे। "अवका" देवता है, उसके निमित्त दांतों की जड़ मसूड़ों की आहुतिदे। इसही प्रकार इन नौ मन्त्रों में घोड़े के अङ्गों को काट २ कर विशेष देवताओं का नाम लेकर आहुतियां डाले।

इस प्रकार ७ वें मन्त्र में भी, वह कहता है कि,—

"वनति सम्भजति वनिष्ठुः स्थूलान्त्रं तेन पूषणं देवं प्रीणामि

गुदं त्वपानं पायुर्नेत्यमरः (२, ६ । ७२) स्त्रीत्वं छान्दसम्
चासौगुदा च स्थूल गुदा तया गुदस्य स्थूल भागेन
प्रीणामि । अन्धाश्चते अहयश्च सर्पास्तान् । सर्पान्
स्थूल गुदातिरिक्तै गुंद भागैः सर्पान् प्रीणामि.....
वृषणः कोशः (अमर २, ६, ७६) अण्ड एवाण्डः
लिङ्गोमय पार्श्व स्थाभ्यां मांस पिण्डाभ्यां वृषणं
प्रीणामि ।

शेयोलिङ्गम् तेन वाजिनं देवं प्रीणामि .....

रेतों वीर्यं तेन प्रजां देवतां प्रीणामि ।.....

अर्थात्—मोटी २ आंतों से पूषा देवता को प्रसन्न
हूं । घोड़े की मोटी २ गुदा से अन्धे सापों को प्रसन्न
अण्ड कोशों से वृषण देवता को प्रसन्न करता हूं!

घोड़े के लिङ्ग=प्रजननेन्द्रिय से वाजी देवता को
हूं। सहृदय और वेद भगवान् के प्यारे पाठक गण
क्या वेदों का महत्व ऐसी ही अनर्गल बातों से रहेगा!
अशुद्ध और भ्रष्ट अर्थों ने करोड़ों सूत्रधारी आर्य
हमसे पृथक् करदी। फिर भी अभी इन सनातनियों को
नहीं पड़ता। क्या आर्यजाति की अभी और दुर्दशा देखने
इच्छा है? ऐसे अशुद्ध भ्रष्ट वाममार्ग प्रतिपादक और
वेदार्थ को देखकर ही महर्षि श्री स्वा० दयानन्द जी
चार्य ने वेदों के सरल, सुबोध और सत्यार्थ करने
किये। परन्तु गन्दगी का कीड़ा तो गन्दगी ही में
रहता है। अतः इन नामधारी सनातनियों क

विज्ञान युक्त अर्थ नहीं भाये; लगे कोलाहल मचाने कि स्वामी जी ने "गुदा से सांप पकड़ना लिख दिये; आदि २। अब पाठक गण स्वयं ही विचारें कि शारीरिक विद्या के अनुकूल, महर्षिकृत अर्थ, वेदों का गौरव बढ़ाने वाले हैं अथवा इन वामियों के अर्थ ठीक हैं जो घोड़े की गुदा, लिङ्ग और अण्डकोष आदि देवताओं को खिला रहे हैं। इसका निर्णय पाठक स्वयं करलें।

प्रश्न— घोड़े की लीद से स्वामीजी ने तपाना लिखा है ?

उत्तर—हां लिखा है। फिर इसमें क्या ताज्जब होगया।

देखिये वेद मन्त्र—

अश्वस्यत्वा वृष्णः शवना धूपयामि.....

मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णो ॥ यजु० ३७। ६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य रोगादि क्लेश की निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का संप्रयोग करते हैं वे सुखी होते हैं।

इस पर वैद्यक ग्रन्थ—

१—कूर्म मत्स्याषु महिषः गोश्वृगालाश्व वानराः।
विडाल वहिर्काकाश्चवराहोलूक कुक्कुटाः ॥
हंस एषांच विरामूत्रं मासं वा रोम शोणितम्।
धूपं दद्यात् ज्वरार्तस्य उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये ॥

देखो शब्दकल्पद्रुम में गरुड पुराण अध्याय १६३ से उद्धृत किये हुए श्लोक।

२—दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वात चेतो*विकार नुत्।
अश्वं कफहरं मन्त्रं कृमि दद्रुषु शस्यते ॥ ६ ॥

सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान अध्याय ४५ पृ० ३६७।

३—युक्तं वामधु सर्पिभ्यां लिह्याद् गोऽश्व शकृद् रसम्।

चरक संहिता चिकित्सास्थान अध्याय ४ पृ० ५४।

हिकमत की किताबें—

४--थोड़ी सी घोड़े की लीद कबूतर की बीट के साथ पानी में घोलकर औरत को खिलाना विलादत=(बच्चा पैदा हो जाना,) का फ़ायदा देता है। इलाजुल गुर्बा सुफ़ा १६८

५— घोड़े की लीद औरत अपने आगे जलादे और वायुले।

क़रावादीन का उर्दू तर्जुमा सु० १७१।

६—चरक संहिता अग्निरोग प्रकरण चिकित्सा स्थान अध्यया १४ श्लोक ४२। अथवा ४६ में घोड़े की लीद से अर्श बवासीर रोग दूर होता है।

७—"उपयोगी चिकित्सा पुस्तक कविराज धर्मानन्द जी लिखित मूत्र रोग प्रकरण औषधि नं० ५ में है कि—

"घोड़े की लीद से तपाने से रुका हुआ मूत्र उतर आता है"

८—वैद्य हरिदास जी ने अपने "चिकित्सा चन्द्रोदय" पुस्तक के भाग ५ पृष्ट ४७६ स्त्री रोग की चिकित्सा में लिखा है कि लीद और कबूतर की बीट को पानी में घोलकर पिलाने से बालक उत्पन्न हो जाता है।

---

* चेता विकारनुत--उन्मादादि हरने वाला।

६—"रसरत्न व सिद्ध प्रयोग संग्रह" नामक पुस्तक के पृष्ठ ४४६ पर लीद के रस को गुनगुना करके पिलाने से "डव्वा" रोग जाता रहता है। इसही पुस्तक के पृष्ठ ४६६ पर है कि इससे "लचक" रोग भी जाता रहता है।

यजु० ३७।६ पर महीधर—

"अश्व पुरीषेण त्रिभिर्मन्त्रै स्त्रीन्महावीरान *धूपयेत ।" घोड़े की लीद से तीन मन्त्रों द्वारा महावीरो को धूप देता है।

लीद और ग्रिफिथ—

He fumigates the pan with the smoke of seven lumps of horse dung, reciting seven formulas, one for each Diety or class of Dieties mentioned. यजु० ११।६०।

इस पर महिधर—

हे उखे ! अष्टौवसवः गायत्रेण छन्दसा अंगिरस इव त्वां धूपयन्तु अश्व शकृच्जन्येन धूपेन संस्कुर्वन्तु ।

अर्थात्—हे उखे ! बटलोई ! आठवसु गायत्री छन्द से अङ्गिरा के समान तुझको धूप दें...घोड़े की लीद से उत्पन्न हुए धूप से तुम्हें संस्कृत करें = सुगन्धित करें।

---

* महावीर के अर्थ यहां पर देवता के हैं वा पात्र के ? सनातनी देवता के मानते हैं। तब तो यह सिद्ध हुआ कि देवता भी लीद की धूप सूंघते हैं।

कहिये पंडितजी कैसा विचित्र विज्ञान है ? घोड़े की लीद से बटलोई तपाई जारही है। यह बटलोई क्या बला है ? इसको आठ वसु क्यों पकाते हैं ? कुछ है खबर ? चाहे इनको खबर हो या नहो, परन्तु दूसरों पर आक्षेप करना तो सनातनी खूब जानते हैं !!! मौत आई हुई है नकली सनातन धर्म की, परन्तु सुख स्वप्न देख रहे हैं आर्य समाज की मौत के !!! किमाश्चय मतः परम् ?

प्रश्न—स्वामी जी ने नीलगाय मारना लिख दिया है।

उत्तर— जो २ हानि कारक पशु हैं उन को मारना लिख दिया तो क्या सनातनधर्म पर बज्रांघात होगया ?

दुष्ट हानिकारक मनुष्य तक को राजा वा राज पुरुष बधकर डालते हैं, फिर पशु की तो गणना ही क्या है ?

देखिये मनु—

गुरुंवा बाल वृद्धौवाब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिन मायान्तं हन्यादेवा विचारयन् ॥

छै प्रकार के आततायी—

अग्निदोगरदश्चैव शस्त्र पाणिर्धनपदः ।
क्षेत्रदारापहरश्चैव षडेते आततायिकैः वाशिष्टः ॥

जब कि—राजपुरुष वा राजा इन छैः प्रकार के आततायियों को बिना विचारे मार दें तो स्वामी जी ने कौनसी गजब की गोली मार दी जबकि गुरू, बालक, वृद्ध, ब्राह्मण, बहुत वेद पढ़ा लिखा तक मारने के योग्य है तो पशुओं की क्या गणना ?

मन्त्र—

इमꣳसाहास्रꣳ शतधारमुत्सं व्यचमानꣳ सरिरस्य मध्ये। घृतं पुहानामदितिं जनायाग्ने माहिꣳसीःपरमे व्योमन्। गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेनचिन्वानस्तन्वो निषीद। यजु० १३।४९।

मन्त्रार्थः—हे (अग्ने) दया को प्राप्त हुये परोपकारिन् राजन् तू (जनाय) मनुष्यादि प्राणी के लिये (इमम्) इस (साहस्रम्) असंख्य सुखों का साधन (शतधारम्) असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त (व्यच्यमानम्) अनेक प्रकार से पालने के योग्य (उत्सम्) कुए के समान रक्षा करने हारे वीर्य सेचक बैल और (घृतम्) घी को (दुहानाम्) पूर्ण करती हुई (अदितिम्) नहीं मारने योग्य गौ को (माहिंसिः) मत मार और (ते) तेरे राज्य में जिस गाय से खेती की हानि हो तो उसको [गवयम्] गौ के समान नील गाय से खेती की हानि हो तो उसको (अनुदिशामि) उपदेश करता हूं (तेन) उस के मारने से सुरक्षित अन्न से (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन) सर्वत्र व्यापक परमात्मा और (सरिरस्य) विस्तृत व्यापक आकाश के (मध्ये) मध्य में (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुआ तू (तन्वः) शरीर मध्य में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक) शोक (तम्) उस (गवयम) रोग को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम) जिस (ते) तेरे शत्रु का (द्विष्मः) हम लोग द्वेष करें उसको भी (शुक) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे।

भावार्थः—हे राज पुरुषो तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओंके प्रभाव से खेती आदि कर्म, जिन गौ आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिन के दूध आदि से सब प्रजा की रक्षा होती है उनको भी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें उनको राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें और जो जङ्गल में रहने वाली नील गाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं। ४६।

इस मन्त्रार्थ में निम्नलिखित वाक्य विचारणीय हैं।

१—नहीं मारने योग्य गौ को मत मार।

२—खेती की हानि हो तो।

३—उनके मारने से सुरक्षित अन्न से।

४—जो उपकारक पशुओं को मारे उसको राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड दें।

५—प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं।

इस मन्त्रार्थ और भावार्थ से भली भांति प्रगट और सिद्ध है कि श्री स्वामी जी महाराज पूर्ण अहिन्मक थे। वे गौ बैल क्या प्रत्येक प्राणी की रक्षा चाहते थे। हां हानिकारक मनुष्य और पशुओं को दण्ड-प्राणादन्ड देने के पक्ष में न्यायानुकूल थे।

इस मन्त्र पर महीधर जी—

"तेतवारण्यं गवयं गोसदृशं पशु विशेष मनुदिशामि"=रेते जंगल में रहने वाले गवय=गौ के समान पशु विशेष का आज्ञा देता हूं।

("मारने की आज्ञा देता हूं")

कहिये स्वामी जी तो कहते हैं कि "यदि हानि करें तो मारो

परन्तु यहां तो महीधर जी बिना किसी शर्त के ही मारने की आज्ञा दे रहे हैं। "शिष्टमुक्तम्"—उसके "गवयस्यमिषं तृप्तिं करोति दश मासिकम" मर्कण्डेय पुराण अ० ३२। ५ पृ० २८६। (गवय के) भक्षण से शरीर को पाल। यहां तो खाना भी लिखा है।

देखिये इसी अध्याय के ४७ वें मन्त्र के भाष्य में महीधर जी क्या वाममार्ग फैलाते हैं:—

"यदिवादनेच्छा तर्हि मेधं शुद्धं गयंपशुं तुरङ्गवदनं किंपुरुषं पशुं जुषस्व सेवस्व भक्षयेत्यर्थ":—यदि तेरी इच्छा खाने की है तो शुद्ध मयपशु, जो घोड़े का सा मुख वाला है, ऐसे किम्पुरुष को खाले।

४८ वें मन्त्र पर भी वामियों की करतूत देखिये—

तेत्तुभ्यं मारण्यं वनस्थं गौरं गौर वर्णं मृगं दिशामि ददामि तेन तनवः चिन्वानो निषीदेति पूर्ववत।

अर्थात्—तेरे लिये जङ्गल का गौर मृग देता हूं इस से अपना शरीर पुष्ट करके विराजमान हो।

कहिये आक्षेप करता जी आप का महीधर हिरण, नीलगाय और किंपुरुष तक खाना बता रहा है फिर भी दूसरों पर वृथा दोषारोपण ?

प्रश्न--बहुत पशु वाला होम करके यज्ञ शेष खाना लिखा है।

उत्तर—वेदभाष्य को समझने वाला हो तो सनातनियों जैसा हो, धन्य है इनकी बुद्धि को !! "अष्ट वर्षा भवेद गौरी"

पशु वाला यज्ञ नहीं हैं किन्तु यजमान के लिये आया है। क्या संसार के विज्ञों की आंखों में धूल झोंक कर सनातनी बनना चाहते हो ?

इस पर महीधर जी क्या टीका करते हैं—

पशुभिः कृत्वा पशुनाप्नोति पुरोडाशैः पुरोडाशानाप्नोति हविर्भिरन्यै र्वोषि नाप्नोति छन्दोभिश्छन्दांसि आप्नोति सामिधेनि सादिधेनीभिः साभिधेनी राप्नोति याज्याभिर्याज्या आप्नोति वषट् कारैर्वषट् कारानाप्नोति। पशवादीनामुभयत्र सद्भावात् अत्राप्युत राधलापः पूर्ववत्। २०।

इस मन्त्रार्थ में "पशुभिः कृत्वा" = पशुओं से करके। क्या करके ? यह महीधर जाने या सनातनी ? यहां पर "पशुभिः" यह तृतीयांत छांदस बहुवचन है। इस के अर्थ हुये पशुओं से वा पशुओं के साथ करके। "गणानान्त्वां०" का बीजार्थ है।

महीधर की = सनातनी पण्डित की ऐसी सम्मति सुन कर ही यजमान की स्त्री "गणानांन्त्वां० "कह कर घोड़े से प्रार्थना करती है।

प्रश्न—बकरेका घी दूध स्वामीजी ने लिख दिया है।

उत्तर—हां साहब लिख दिया है। फिर आपका मतलब ?

यदि कुछ पढ़े लिखे होते तो जानते कि चिकना भाग क्या वस्तु है ? बकरे के दूध होता है वा नहीं।

सुनिये—

१—"Cehauveon" साहब अपने "Comparative Analogy" पुस्तकमें जिसका अनुवाद, Fleming साहबने

किया है, उसके पृष्ठ १६७६ पर लिखते हैं कि—"जुगाली करने वाले पशुओं में नाभिके पीछे छोटे २ स्तन होते हैं, यह बकरे में दूध के ऐसा पदार्थ बनाते हैं।

Smith in his Manual of Veterinary Physiology fifth edition P. :790 on the authority of Mumford and Marshal.

"The rudimentary of the goat, sheep and even bull have been known to produce mil

अर्थात्—यह बात सिद्धान्त रूप से जानी गई है, कि बकरा, भेड़ और बैल तक के दूध देते पाया है।

अब रही यह बात कि मेदा अथवा वपा को घृत क्यों लिख दिया ? सो सुनिये—

"घृतवन्तः पावक ते स्तोका श्चोतन्ति मेदस इति मेदसश्च ह्येवहि घृतस्य च भवन्ति। ऐतरेय ब्र० ७। २।

भाष्य—हे पावक शोधकाग्ने। ते त्वदर्थं मेदसो वपायाः संबन्धिनो घृतवन्तो घृतसहिताः स्तोका बिन्दवः श्चोतन्ति। अत्र मेदः सम्बन्धे घृत सम्बन्धेच पृथक् प्रसिद्ध वक्तुं मेदसश्च ह्येव हि घृतस्य चेति शब्द द्वयम्। पृष्ठ—१६२।

यह सायण भाष्य है इसमें बताया है कि मेदा ही घृत है।

इस यजु० २१। ४३ मन्त्र का भावार्थ भी सुनलीजिये—

भावार्थः—जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर उनके दूध आदि का अच्छा अच्छा संस्कार और भोजन कर, वर भाव युक्त पुरुषों को निवारण कर और अच्छे वैद्यों का संग करके

उत्तम खाना पहरना करते हैं वे प्रत्येक अंग से रोगों को दूर कर सुखी होते हैं। ४१।

इस भावार्थ से सिद्ध है कि "छाग" कहने से बकरी बकरा दोनों अभिप्रेत हैं। छाग जातिवाचक शब्द है।

महीधरार्थः—

इस २१।४८ वें मन्त्र का अर्थ करते हुए महीधर कहते हैं "किन्च अद्य अस्मिन्दिने मध्यतः उदरमध्यात् उद्भृत मुद्धृतं मेदो वया रूपं चांत्ताम्"।

और आज के दिन पेट के बीच में से निकली हुई चरबी को लो--खाओ।

अब आपको इच्छा है--चाहे श्री स्वामी दयानन्द जी की दी हुई चिकनी चीज=दूध घी खाइये, या अपने सनातनी महीधर जी की दी हुई चरबी आप खाइये और अपने देवताओं को भी खिलाइये।

बकरी के दूध के गुण—

छागं कषाय मधुरं शीतं ग्राह्य पयो लघुः।
रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकास ज्वरापहम्॥
चरक सूत्रस्थान अध्याय २७ श्लो० २६।

व्याकरण की सम्मति—

अजायाक्षीरम्=अजक्षीरम् =बकरी का दूध।
ङ्याप्पाः संज्ञा छन्दसि बहुलम्। अष्टाध्यायी ६।३।६३
स्वेच ६।३।६४। त्वे प्रत्यये परे ङ्यापोर्ह्रस्वः। अजत्वम।
अजात्वम्।

अर्थात्—ङ्यान्त और आवन्त पदों को वेद में बहुल करके ह्रस्व हो। 'ङ्' परे होने पर भी।

प्रश्न—स्वामी जी ने बैल से भोग करना लिख दिया है?

उत्तर—यजु० २१। ६० में, "अश्विभ्यां छागेन, सरस्वत्यै मेषेण, इन्द्राय ऋषभेण, अक्षन्०", ऐसा पाठ है। यह पर—छागेन, मेषेण, ऋषभेण, सर्वत्र तृतीया विभक्ति विद्यमान है जिसके 'से' वा 'साथ' अथवा 'सहित' के होते हैं। विभक्ति व्यत्यय हो तो दूसरी बात है। फिर यही तो अर्थ होंगे कि छाग के साथ, मेषके साथ और बैल के साथ। अब रहा शब्द "अक्षन्"=भोग करे। तो इस के समाधान के लिये भोगके अर्थ कोष्ट में "उपयोग लें" कर दिया गया है अर्थात् इन २ पशुओं से काम लें=काम में लावें या इनका उचित प्रयोग करें।

अब भोग के अर्थ भी सुन लीजिये—

भोग—१-प्र० भुज्—कर्मणि घञ्। सुखे, सुखयुः खाद्यनुभवे, परायत्त्रीणां भाटकादि रूपे वेतने, सर्वस्वफणायां, तत्काये, धने, पालने, आहारेच।

अशीद्यच्। सर्वे। आधारे घञ्। दहे, माने, ज्योतिषोक्त ग्रहाणां तत्तद्राशि स्थितौ, भूम्यादिषु उत्पन्न द्रव्य विनियोगे, यथेष्ठ विनियोगेच "बन्धूना मविभक्तानां भोगं नैव प्रदापयेत्" ॥ इतिस्मृतौ ॥ शब्दस्तोममहानिधि पृष्ठ ३८८ छापा सरस्वती यन्त्रालय कलकत्ता।

२—भोगः सुखे स्त्र्यादि भृता वहेश्च फण कायोः।
अमर कोष कांड ३। नानार्थवर्ग ३ व्याख्या सुधा पृ० ४००।
सुख, स्त्री, नौकर आदि का पालन, सांप का फण और शरीर के अर्थ में हैं।

सनातनियों को तो भोग से रात दिन पाला पड़ता है। अच्छे बुरे कर्मों को भोगें, देवी देवताओं को भोग लगायें, मन्दिरों में जाकर भोग उड़ायें, सुख भोगें, आनन्द भोगें, दुःख भोगें, पृथवी को भोगें, लक्ष्मी को भोगें, पशुओं को भोगें और सब कुछ भोगें।

गीर्वाण लघु कोश में संपादक जनार्दन विनायक M. A. भोग के अर्थ निम्नलिखित करते हैं—

भोगः—खाणों, उप भोग*वापरणों, अमल, पालन, राज्य मालकी, सोसणे, अनुभव, सुख, रतिसुख, सुखोपभोग, भोग्य-पदार्थ, भेजवानी, नैवेद्य, अन्न, नफा, उत्पन्न, द्रव्य, धन आदि।

भोगः—सुखे सत्यादि भृतावहेश्च फणकाययोः। अमर कोष।

सिद्धि—आत्मन विश्वजन भोगोत्तर पदात खः। ५। १। ६ अष्टाध्यायी इस पर वार्तिक—महाजनाटठञ्।

उदाहरण—मातृभोगीणः, पितृभोगीणः, राजभोगीनः।
तत्वबोधिनी—मातुर्भोगः, शरीरम्। तस्मैहित इति विग्रहः।

---

*मन्त्र में 'अत्तन्' को अर्थ भोग = उपभोग के हैं। यही अर्थ स्वामी जी ने किये हैं।

महीधर की सम्मति—

महीधर जी कहते हैं कि—"तत्कथं ज्ञायते तत्र ह अश्वादयो मेदस्तः मेदो वया मारभ्य तान् छागादीन् अत्तन् अभक्षयन"

अर्थात्—यह कैसे जाना जाय ? इस लिये कहा कि—अश्व इत्यादि की चरबी से आरम्भ करके उन बकरों आदि को खाता हुआ स्वामी जी "अत्तन्" के अर्थ करते हैं उपयोग करना, भोग करना=जायज़ इस्तैमाल करना और महीधर कहते हैं--इन घोड़े और बकरे आदि को खाते। कहां उपयोग में लाना और कहां खाना ? बोलो घोड़े और बकरों से जायज़ काम लेना चाहते हो या उनको मार कर अग्नि में डालना या खाना चाहते हो ? यह आपकी इच्छा पर है।

श्लोकः—शिवलोक मयं ह्यद्य गतास्माभि स्सहैवतु।
किंचित्कालं महा भोगान् करिष्यति शिवानुगः ॥ ३८

शिवपुराण रुद्रसंहिता अध्याय १८॥ पृ० ५७।

अर्थात्—यह निश्चय करके आज हमारे साथ शिवलोक को गया। किंचित्काल तक महा भोगों को करेगा और शिवका अनुगामी भी होगा।

और भी "भोगकारी" विद्यः आदि शब्दों के क्या अर्थ करोगे ?

भोग शब्द पर आप्टे जी—

भोगः--Eating, consuming, enjoyment, frui tion, possession, utility, advantage reeling

govrnering, government, use application. स्वामी जी ने utility और advantage. के अर्थ किये हैं।

प्रश्न—स्वामीजी ने वैश्यों को ऊंट लिख दिया?

उत्तर—यजु० १४।६ में स्वामी जी ने व्याघ्र के समान राजा को लिखा है सिंह के समान लिखा है। वैश्यों को "पष्ठ वाट" पीठ के द्वारा बोझ ढोने वाला ऊंट, उसके समान लिखा है। शूद्रो को सींचने हारे बैल के तुल्य लिखा है। इसमें हानि ही क्या है। काली दास ने दिलीप आदि राजाओं को "वृषस्कन्ध"=बैल के से कन्धे वाला लिखा है, तो क्या इससे दिलीप आदि की निन्दा होगई। इस प्रकार के अलङ्कार बहुधा काव्यादि में आते हैं। ऊंट तो फिर भी पशु है शालका वृक्ष तो उससे भी अधम है। फिर "शाल प्रांशुः"=शाल के वृक्ष के समान लंबा क्यों कहागया। यदि कहो कि यह विशेषण तो स्तुति परक हैं परन्तु 'पीठ से ढोने वाला' यह निन्दा परक है। वह विशेषण निन्दा परक है वा स्तुतिपरक, यह बात तो, उन रेगिस्तानी प्रदेशों में रहने वालों से पूंछो जो सारे कार्य बोझाढोने के ऊंटों द्वारा ही करते हैं—ऊंट पर ही सवार होते हैं, ऊंट पर ही बोझा लेजाकर व्यापार करते हैं, ऊंट परही सारी यात्रायें करते हैं। जिस प्रकार पहाड़ी प्रदेशों में बकरे अत्यन्त ही इस कार्य के लिये उपयुक्त हैं वैसे ही उन रेगीस्तानी प्रदेशों में ऊंट अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुये हैं। बरफ़ीले मैदानों में, बरफ के ऊपर गाड़ी खेंचने के लिये, वहां के पहाड़ी कुत्ते विचित्र पराक्रम दिखाने वाले सिद्ध हुये हैं। यदि इन उपर्युक्त पशुओं का दृष्टान्त किसी के

पराक्रम अथवा उपयोगिता के साथ दिया जाय तो क्या वह असङ्गत वा निन्दा परक होगा। कदापि नहीं। हम काव्यों के सहस्रों प्रमाण इस विषय की पुष्टि में देसकते हैं। परन्तु अधिक न लिख कर इसका निर्णय सहृदय पाठकों परही छोड़ते हैं।

प्रश्न—स्वामीजी ने अध्याय १५ मन्त्र ५३ यजु० के भाषार्थ में कन्याओं की परिक्षा पुरुष और पुरुषों की कन्या परिक्षा कर अत्यन्त प्रीतिके साथ चित्तसे परस्पर आकर्षित होकर अपनी इच्छा से विवाह करें, ऐसा लिख दिया।

उत्तर—बड़ाराजब लिख दिया जो श्री स्वामी जी महाराज ने पुरानी वेदोक्त रीति का पुनः प्रचारार्थ ऐसा लिख दिया। इससे कट्टर सनातनी जी तो उस समय अत्यन्त ही प्रसन्न होते कि स्वामी जी यह लिख देते कि—माता पिता अबोध बालिका को दसहजार रुपये लेकर, किसी वृद्ध, अयोग्य, रोगी मरणासन्न और नीच के साथ विवाह करदें। अथवा कोई अपनी काली लूली लंगडी कन्याको, कुछ लोभ देकर किसी योग्य कुलीन और युवा के गले चपेकदे! अथवा "अष्ट वर्षा भवेदगौरी" वाक्य के परमदास होकर, गुड़िया गुड्डों की तरह रात्री के दो बजे, नन्हे २ ओंगते हुये वरकन्या का विवाह करदे। सारे संबन्धी वर कन्या सहित ओंगते हों और श्री पंडितजी महाराज 'सुमुखश्चैक दन्तश्च'० की गड़ी लगाये हुए पैसों से लोटे भरते हैं। यातो "बड़ी बहू घर छोटे लाल" की कहावत चरितार्थ होती हो अथवा "बड़ी बहु बड़े भाग" की सराहना की जाती हो! भला इन पौराणिकों को प्राचीन वेदोक्त रीति कब पसन्द आने

लगी है ? इनको महाराणी सीता और मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी के प्रेमाकर्षण से क्या प्रयोजन ? श्री रुक्मिणीजी और योगिराज श्री कृष्ण जी के प्रेमाकर्षण से इनको क्या मतलब ? शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रेमाकर्षण युक्त गान्धर्व विवाह से इनके पुराणों का क्या सम्बन्ध ? अज और इन्दुमती के स्वयंवर को भुलादेना इनके बांये हाथका काम है। अर्जुन और द्रौपदी के स्वयंवर की कथा को रद्दी की टोकरी में डालदेने के ये अभ्यासी बन चुके हैं। कलियुग में जयचन्द की सुपुत्री संयोगिता और पृथ्वीराज के प्रेमाकर्षण की कथाको, भाषामें समझकर, ये उसे ठुकरा चुके हैं। यजुर्वेदका मन्त्रार्थ और भाषार्थ इस प्रकार है—

सम्प्रच्य वध्वमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम्। पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाता शं सात् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ यजु० १५। ५३

मन्त्रार्थ—हे मनुष्यो तुमलोग विद्याओं को (उपसंप्रयात) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (देवयानम्) धार्मिकों के (पथः) मार्गों से (संप्रच्यध्वम्) सम्यक् चलोधर्म, को (कृणुध्व) करो हे (अग्ने) विद्वान् पिता मह ! (त्वयि) तुम्हारे बने रहते ही (पितरा) रक्षा करने वाले माता पिता तुम्हारे पुत्र आदि ब्रह्मचर्य को (कृण्वाना) करते हुए (युवाना) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त और स्वयंवर विवाह कर (पुनः) पश्चात् (एतम्) गर्भाधानादि

रीति से यथोक्त (तन्तुम्) सन्तान को (अन्वातांसीत्) अनुकूल उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

भावार्थः—कुमार स्त्री पुरुष धर्मयुक्त सेवन किये ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ आप धार्मिक हो पूर्ण युवा वस्था की प्राप्ति में कन्याओं को पुरुष और पुरुषों की कन्या परीक्षा कर अत्यन्त प्रीति के साथ चित्त से परस्पर आकर्षित होके अपनी इच्छा से विवाह कर धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से अपने माता पिता का सन्तोष करके आप्त विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चलें और जैसे धर्म के मार्गों को सरल करें वैसे ही भूमि जल और अन्तरिक्ष के मार्गों को भी बनावें। २३।

आक्षेप कर्त्ता जी ने "दयानन्द का हृदय" नामक ट्रैक्ट में, अपनी दासता दिखाने के लिये, भावार्थ का अगला पिछला छोड़ कर, बीच का भाग ही उधृत कर दिया है। यह सनातनी माया है !!!

स्वयंवर और वेद—

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जनेचित्।
ऋ० १०। ९७। १२॥

अर्थात्—कितनी ही स्त्रियां हैं जो वधू की इच्छा रखने वाले मनुष्य के मीठे वचन, धन से ही खूब सन्तुष्ट हो जाती है; परन्तु कल्याणकारी और सुख सौभाग्य वती तो वही होती है जो—"स्वयं सा मित्रं वनुते जनेचित्=" मनुष्यों के बीच अपने

मित्र रूप पति को स्वयं चुन लेती है—स्वयंवर की रीति से अपना पति स्वयं ही स्वीकार कर लेती है। (कहिये इसमे अधिक स्वयंवर की और क्या आज्ञा होगी ?

प्रश्न—स्वामीजी ने राजा की निन्दा की है—सूअर लिख दिया है ?

उत्तर—इस प्रकार के आक्षेपों का हम पूर्व ही उत्तर दे चुके हैं।

मन्त्रः—विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः।
यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्य मस्मन्नि वपन्तु ताः।

यजु० १६। ५२

मन्त्रार्थः—हे (विकिरिद्र) विशेष कर सूअर के समान सोने वा उत्तम सूअर की निन्दा करने वाले (विलोहित) विविध पदार्थों को आरूढ़ (भगवः) ऐश्वर्ययुक्त सभापते राजन् (ते) आपको (नमः) सत्कार प्राप्त (अस्तु) हो जिससे (ते) आप के (याः) जो (सहस्रम्) असंख्यात प्रकार की (हेतयः) उन्नति वा वज्रादि शस्त्र हैं (साः) वे (अस्मत) हमसे (अन्यम्) भिन्न दूसरे शत्रु को (नवपन्तु) निरन्तर छेदन करें। ५२।

भावार्थः—प्रजा के लोग राजपुरुषों से ऐसे कहें कि जो आप लोगों की उन्नति और शस्त्र अस्त्र हैं वे हम लोगों को सुख में स्थिर करें और इधर हमारे शत्रुओं का निवारण करें। (ईश्वर को सूअर बनाते समय सनातनियों को संकोच नहीं हुआ न ईश्वर की निन्दा हुई)

किसी के किसी एक गुण को लेकर उस गुण का, किसी विद्वान्, बलवान्, धनवान्, पराक्रमी, राजा, रानी और किसी उत्कृष्ट व्यक्ति में आरोपण करना काव्य की रीति से लालित्य कहाता है। क्या मृगनयनी, चन्द्रमुखी, गजगामिनी, केहरिकटि, नरव्याघ्र, नर सिंह, पिकवयनी, हंसगामिनी, वृकोदर, वृषस्कंध, शाल प्रांशु, कमलाक्ष, घनश्याम, आदि सैकड़ों ऐसे शब्द हैं जो स्त्री पुरुषों दोनों के लिये व्यवहृत होते हैं। काय सब निन्दापरक हैं? "किरिः कहते हैं सूअर को। देखो—अमरकोष सिंहादिवर्ग ५ 'वि' उपसर्ग लगा देने से "विकिरः" [कांड २ श्लोक २।

शब्द बन जाता है। 'द्रा' धातु को अन्त में लगा कर "विकिरिद्रः" पूरा शब्द बनता है। जिसके अर्थ महीधरानुसार—विविधंकिरि घाताद्य पद्रवं द्रावयति नाशयति—विकिरिद्रः।

मन्त्र में 'रुद्र' शब्द न होने पर भी महीधर 'हे रुद्र'। सम्बोधन करके, इस मन्त्र में, रुद्र की प्रार्थना करता है। श्री स्वामी जी महाराज राजा की प्रशंसा बताते हैं। फिर इसमें क्या दोष आगया?

प्रश्न—यजु० १७। ४४ में भावार्थ लिखते हुए, स्त्रियों की सेना भी स्वीकार करें, ऐसा लिख दिया है?

उत्तर—वीर क्षत्राणियां सदैव युद्ध में लड़ती आई हैं। राजपूताने का इतिहास उच्चतम स्वर से साक्षी देरहा है। प्राचीन काल में केकैयी ने युद्ध में, राजा दशरथ जी को सहायता दी थी। लक्ष्मी बाई, महामाया, दुर्गावती और पद्मावती आदि के असंख्य उदाहरण विद्यमान हैं। इस हमारी वेदोक्त आज्ञा का

पालन औरंगजेब ने किया। और इस समय जर्मन, फ्रांस, रूस, और तुर्किस्तान आदि देश भी पालन कर रहे हैं।

हा हठ ! तेरा सत्यानाश हो !! तू मनुस्यों से क्या कुछ अनर्थ नहीं करा डालती ? आँखें होते हुए भी अन्धा बना देना तेरा ही काम है !!!

इसमन्त्र का भावार्थ इसप्रकार है-सुनिये—

सभापति आदिको योग्य है कि जैस अति प्रशंसित हृष्टपुष्ट अङ्ग उपङ्गादि युक्त शूरवीर पुरुषों की सेना को स्वीकार करें वैसे शूरवीर स्त्रियों की भी सेना स्वीकार करें और जिस स्त्री सेना में अव्यभिचारिणी स्त्री रहें और उस सेना से शत्रुओं को वशमें स्थापन करे। ४४।

स्वामी जी अर्थ करते हैं कि—"हे (अघे) शत्रुओं के प्राणों को दूर करने हारी राणी क्षत्रियां वीर स्त्री"।

महीधर जी कहते हैं—"अप्वा" देवता" "इयमपि इन्द्र सेना संबन्धिनी" (श्रुतिः) 'अप्वा' देवता है। यह श्रुति सेना सम्बन्धिनी है। अब विचारिये कि महीधर तो एक अपरिचित 'अप्वा' देवता गढ़कर रखता है, जिसका कोई पता नहीं कि क्या बला है ? श्री स्वामी जी महाराज 'अप्वा' शत्रुओं को दुःख देने वाली क्षत्राणी वर्णन करते हैं। महीधर भी यही कहते हैं कि—"हे अप्वे" अमीषां शत्रूणां चित्तं चित्तानि प्रतिलोभयन्ती मोहयन्ती अङ्गानि शत्रुगात्राणि गृह्णाना"।

अर्थात्—हे अप्वा देवता शत्रुओं के चित्तों को मोहने वाली शत्रुओं के अङ्गों को गृहण करने वाली।

अब विचारिये कि संसार का काम, युद्ध के समय, महीधर जी की बताई हुई एक अपरिचिता देवी से काम चलेगा, या वीर क्षत्राणियों की सेना से ? स्मरण रहे कि इन मनगढन्त देवी देवताओं के भरोसे पर बैठे रहने से ही भारतवर्ष पराधीन हुआ है।

स्त्रियों का युद्ध में लड़ना—

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्योजङ्घामायसीं विश्पलायैधने हिते सर्त्तवे प्रत्यधत्तम्॥
ऋ० १। ११६। १५॥ और १०। ३९। ८ पर भी देखो

अर्थ—(परितक्म्यायाम्) रात्रि के समय (आजा) युद्ध के घमासान में (खेलस्य) खेलते हुए योद्धा की (चरित्रम्) चलने में सहायक टांग (अच्छेदि) कट गई है (इव) जैसे (वेः) किसी पक्षी का (हि) निश्चय (पर्णम्) पंख कट गया हो (सद्यः) तत्काल तुमने (आयसीं जङ्घाम्) लोहे की अति दृढ़ जांघ को (प्रतिअधत्तम्) अपने उसके स्थान पर जोड़ दिया है ताकि वह (हिते) हितकारी (धने) धन की प्राप्ति के लिये विश्पलायै) जनता के मध्य में गतिशील होकर (सर्त्तवे) चल फिर सके।

इस मन्त्र का अर्थ करते हुए सायणाचार्य लिखते हैं कि "विश्पला' नाम की कोई स्त्री थी उसकी जांघ युद्ध में टूट गई। इन्द्र ने आकर लोहे की जांघ लगा दी। क्या इससे सिद्ध नहीं है कि स्त्रियां युद्ध में लड़ती थीं ?

ऋग्वेद—१०। ३९। ७ पर सायणाचार्य—

वध्रिमत्या संग्रामें शत्रुभिः छिन्नहस्ताया हवमाह्वान मगच्छतम् । आगत्यतस्यैहिरण्ययं हस्तं प्रयच्छतम् ॥

अर्थात—वध्रिमती का संग्राम में हाथ कटगया था, उसने इन्द्र का आवाहन किया। इन्द्रने सोने का हाथ लगादिया।

अबला नहीं सबला

अबला नहीं प्रबल सबल हैं माता हैं हम वीरोंकी।
शूरोंकी हम शक्ति रही हैं, बहने हैं हम रणधीरों की।
मा दुर्गा की प्रतिमा हैं हम, लक्ष्मी की हैं ज्योति-कली।
दीप्तिमान हम अग्नि शिखा हैं, स्नेह सुधाकी शुभ स्थली।
हम जाग उठीं सब समझगई, अब करके कुछ दिखलावेगीं।
हां विश्वक्षेत्र मे' शुद्धि-शस्त्र,* फिर एकबार चमकादेंगी।

यद्यपि हम वैदिक आदि वेदों में इतिहास नहीं मानते; परन्तु यह नामधारी सनातनी इतिहास मानते हैं अतः उनकी तुष्टि के अर्थ हमने सायण कृत अर्थ लिखदिये हैं। परन्तु अभाग्यवश इन नामधारियों का मस्तिष्क तो इतना विकृत हो चुका है कि इसमें न अपनों की सत्यबात समाती है न अन्यों की। परमात्मन! इन आर्यों की सन्तान की रक्षाकरो !!

स्त्रीयोंका प्रण—

केवल न कोमल कमल रहती है सदा,
काम पड़ता तो वज्ररूप बनजाती हैं।
रसिकेन्द्र हाथ दिखलाती काटछांट वाले,

---

*अथवा युद्ध-शस्त्र

भूतल में वैरियों के बदन बिछाती हैं।
क्रोध करतीं तो जल उठती कराल ज्वाल,
पल में प्रबल खलमण्डल जलाती हैं॥
शक्ति है अशेष देश भारत की देवियों की,
वीर वेश धारतीं तो प्रलय मचाती हैं॥ १॥

सौख्य की तुला में तुलतीं जो सुमनों से सदा,
डुलती समीर लगने से सुकुमारियां।
खींचती हैं चित्तमें पवित्र पति भक्ति चित्र,
सींचती हैं प्रेमवाटिका की नित्त क्यारियां।
वेही जब वीरता की मूर्ती बनती हैं तब,
धर्मपर आहुती की करती तैयारियां।
अमरों को प्यारियां भीलेतीं बलिहारियां हैं,
होतीं पूज्य भारत में ऐसी वीर नारियां॥ २॥

बरच्छी बरौनियों से बंधती विमूढ़बल,
कुटिलों की काटतीं कटाच्छ की कटारी से।
लंपटों की लालसा ललचातीं लाल लोचनों से,
अन्त अधर्मों का करती हैं ओज आदि से॥
देख दीप्ति दंभियों का दंभ देह दूर होता,
पातकी परास्त होते पति प्रेम प्यारी से।
तरणीसा तेज तचता है तरुणीका तब,
वैरीवन कौन बचताहै वीर नारी से?॥ ३॥

"परिजात" नाम खण्डकाव्य से॥

प्रश्न—यजु० अध्याय १६ मन्त्र७६ के भावार्थ में अश्लील भाषण है।

उत्तर—वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है, इसमें किसी सत्य विद्याओं का प्रकाशन अश्लील नहीं कहाता। यह बात उदाहरण सहित पूर्व ही बताई जा चुकी है।

जिन संप्रदायों में इस सत्य विद्या का प्रचार नहीं वहां पर ही अधिकतर इस प्रकार के अप्राकृतिक मैथुन होते हैं। उन्हीं के दुष्ट संग से हिन्दुओं में भी ऐसी २ बातें प्रचलित हो गई हैं। ऋषि दयानन्द जी ने वैदिक शिक्षा से ऐसे २ कुकृत्य केवल हिन्दुओं में से ही नहीं प्रत्युत संसार से हटाने का भगीरथ प्रयत्न किया है, जिसको आप एक आंख नहीं देख सकते !! आपकी आंखों में यह वैदिक सुशिक्षा कांटे की भांति खटकती है, यह देश का दौर्भाग्य है !!! अब मन्त्रार्थ सुनिये—रेतो-मूत्रंविजहातियोनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भोजरायुणावृत उल्वं जहातिजन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानऽशुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रिय मिदं पयोऽमृतंमधु ॥७६॥

मन्त्रार्थः—(इन्द्रियम्) पुरुष का लिङ्गेन्द्रिय (योनिम्) स्त्री की योनि में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ (रेतः) वीर्य को (वि, जहाति) विशेष कर छोड़ता है इससे अलग (मूत्रम्) प्रस्राव को छोड़ता है वह वीर्य (जरायुणा) जरायु से (आवृतः) ढका हुआ (गर्भः) गर्भरूप होकर जन्मता है (जन्मना) जन्म से (उल्वम्) आवरण को (जहाति) छोड़ता है (वह ऋतेन) बाहर के वायु से

प्रश्न—यजु० अध्याय १६ मन्त्र७६ के भावार्थ में अश्लील भाषण है।

उत्तर—वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है, इसमें किसी सत्य विद्याओं का प्रकाशन अश्लील नहीं कहाता। यह बात उदाहरण सहित पूर्व ही बताई जा चुकी है।

जिन संप्रदायों में इस सत्य विद्या का प्रचार नहीं वहां पर ही अधिकतर इस प्रकार के अप्राकृतिक मैथुन होते हैं। उन्हीं के दुष्ट संग से हिन्दुओं में भी ऐसी २ बातें प्रचलित हो गई हैं। ऋषि दयानन्द जी ने वैदिक शिक्षा से ऐसे २ कुकृत्य केवल हिन्दुओं में से ही नहीं प्रत्युत संसार से हटाने का भगीरथ प्रयत्न किया है, जिसको आप एक आंख नहीं देख सकते !! आपकी आंखों में यह वैदिक सुशिक्षा कांटे की भांति खटकती है, यह देश का दौर्भाग्य है !!! अब मन्त्रार्थ सुनिये—रेतो-मूत्रंविजहातियोनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भोजरायुणावृत उल्वं जहातिजन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानऽशुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रिय मिदं पयोऽमृतंमधु ॥ ७६ ॥

मन्त्रार्थः—(इन्द्रियम्) पुरुष का लिङ्गेन्द्रिय (योनिम्) स्त्री की योनि में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ (रेतः) वीर्य को (वि, जहाति) विशेष कर छोड़ता है इससे अलग (मूत्रम्) प्रस्राव को छोड़ता है वह वीर्य (जरायुणा) जरायु से (आवृतः) ढका हुआ (गर्भः) गर्भरूप होकर जन्मता है (जन्मना) जन्म से (उल्वम्) आवरण को (जहाति) छोड़ता है (वह ऋतेन) बाहर के वायु से

(अन्धसः) आवरण को निवृत करनेहारे (वियानम्) विविध पान के साधन (शुक्रम्) पवित्र (सत्यम्) वर्तमान में उत्तम (इन्द्रस्य) जीव के संबंधी (इन्द्रियम) धन को और (इदम) इस (पयः) रस के तुल्य (अमृतम् नानारहित (मधु) प्रत्यक्षादि ज्ञान के साधन (इन्द्रियम्) चक्षुरादि इंद्रियों को प्राप्त होता हैं।

भावार्थः—प्राणी जो कुछ खाता पीता है परंपरा से वीर्य होकर शरीर का कारण होता है। पुरुष का लिङ्गेंद्रिय स्त्री के संयोग से वीर्य छोड़ता है और इससे पृथक् मूत्र को छोड़ता है इससे जाना जाता है कि शरीर में मूत्र के स्थान से पृथक् स्थान में वीर्य रहता है। वह वीर्य जिस कारण सब अङ्गों से उत्पन्न होता है इससे सब अङ्गों की आकृति उसमें आती है इसी से जिसके शरीर से वीर्य उत्पन्न होता है उसकी आकृति वाला सन्तान होता है॥ ७६॥

इस मन्त्रार्थ और भावार्थ में कितनी विधी बता दी गई हैं यह बात पाठकगण स्वयं विचारें। किसी विद्या की पुस्तक में, और वह भी सृष्टि की आदि में, किसी गूढ़ रहस्य को जतलाना अश्लीलता नहीं। डाक्टरी और वैद्यक में सब यहीं से लिया गया है।

महीधर जी भी यही लिखते हैं—

"इंद्रियं पुम्प्रजननं शिश्नं योनिं स्त्री प्रजननं प्रविशत्शत रेतोवीय विजहाति त्यजति योनिप्रवेशादन्यत्र मूत्रं विजहाति समान द्वारयोरसि रेतोमूत्रयो मूत्रस्थानादन्यत्र रेतोऽवष्ठिते"।

कहिये स्वामी जी ने कौनसा अनर्थ कर दिया ? जो महीधर जी लिखते हैं वही स्वामी जी ने लिखा। महीधर सनातनी हैं अतः माननीय हैं; स्वामी जी वैदिक हैं अतः निंदनीय हैं!!

प्रश्न—स्वामी जी ने यजु० १६। ८८ के भावार्थ में स्त्री पुरुष गर्भाधान के समय मुख के आगे मुखादि रक्खें ऐसा लिखा है ?

उत्तर—वेदशास्त्रों पर आक्षेप करना आप जैसे कट्टर सनातनियों का ही काम है। दास जो ! यह आक्षेप आप किस पर कर रहें हैं ? वेद पर या स्वामी जी पर ? यदि वेद पर आक्षेप है तो आप नास्तिकों की कोटि में आते हैं। यदि स्वामी जी पर आक्षेप है तो स्वामी जी तो वेद के अनुकूल ही अर्थ करते हैं, फिर भी आप नास्तिकता की कीचड़ से नहीं निकल सकते—क्यों कि जो कुछ स्वामीजी ने लिखा है वह वेदों से लेकर लिखा है। यथा—

मन्त्रः—मुखꣳ सदस्य शिरऽइत सतेन जिह्वापवित्र मीश्वना सन्त्सरस्वती । चक्षुन्नपायु भिषगस्य वालो वस्तिर्नशेपोहरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥ यजु० १६ । ८८ ।

मन्त्रार्थः—हे मनुष्यों जैसे (जिह्वा) जिससे रस ग्रहण किया जाता है वह (सरस्वती) वह वाणी के समान स्त्री (अस्य) इस पति के (सतेन) सुन्दर अवयवों से विभक्त शिर के साथ (शिरः) शिर को करे तथा (आसन्) मुख के समीप

(पवित्रम्) पवित्र (मुखम्) मुख करे इसी प्रकार (आश्विना) गृहाश्रम के व्यवहार में आप्त स्त्री पुरुष दोनों (इत) ही वर्त्तें, तथा जो (अस्थ) इस रोग से (पायुः) रक्षक (भिषक्) वैद्य (बालः) और बालक के (न) समान (वात्तिः) वास करने का हेतु पुरुषां(शेयः) उपस्थेन्द्रिय को (हरसा) बल से (तरस्वी) करने हारा होता है वह (चप्यम) शान्ति करने के (न) समान (सित्) वर्त्तमान में सन्तानोत्पति का हेतु होवे उस सब को यथा-वत् करे । ८८ ।

भावार्थः—स्त्री पुरुष गर्भाधान के समय परस्पर मिलकर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख आंख के साथ आंख मन के साथ मन शरीर के साथ शरीर का अनुसन्धान करके गर्भ का धारण करें जिससे कुरूप वा वक्राङ्ग सन्तान न हो ॥ ८८ ॥

सयामिच्छेत् कामयेतमेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुख सधाया पस्थमस्या अभिमृश्य जपेद् । वृहदारण्यक उपनिषद् अ० ६ ब्राह्मण ४--६ ।

ब्राह्मणग्रन्थ भी वेद का अनुसरण करता है कि मुख के आगे मुख करे ।

यजु० १६ । ८८ पर महीधर—.....“वालो सुरागलन वस्त्र मस्येन्द्रस्य भिषग्वैद्यो वात्ति गुदं शेयोलिङ्गम् चाभूत” ॥ ८८ । आपका महीधर तो इन्द्र का वैद्य.....को बना रहा है !!!

प्रश्न—यजु० २० । ६ में अत्यन्त अश्लीलता भर दी है ?

उत्तर—हम पहले ही बता चुके हैं कि सन्तानोत्पत्ति और प्रजननेन्द्रिय आदि का वर्णन आजाने से अश्लीलता नहीं होती ।

यदि ऐसा होतो इस विषय के सारे ही ,विद्या-ग्रन्थ त्याज्य हो जावें। सुनिये इस मन्त्र में नीरोग रहने की प्रार्थना और उपाय हैं।

मन्त्रः—नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मे ऽपचितिर्भसत्।
आनन्दनन्दा वाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः।
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशिराजा प्रतिष्ठितः। ६।

मन्त्रार्थः—हे मनुष्यो! (मे) मेरी (चित्तम्) स्मरण करने हारीवृत्ति (नाभिः) मध्यप्रदेश, (विज्ञानम्) विशेष वा अनेक ज्ञान (पायुः) मूलेन्द्रिय, (मे) मेरी (अपचितिः) प्रजाजनक (भसत्) योनि, (अण्डौ) अण्ड के आकार वृषणावयव (आनन्द नन्दौ) संभोग के सुख के आनन्द कारक, (मे) मेरा (भगः) ऐश्वर्य (पसः) लिङ्ग, और (सौभाग्यम्) पुत्र-पौत्रादि युक्त होवे इसी प्रकार मैं (जङ्घाभ्याम्) जंघा और (पद्भ्याम्) पगों के साथ (विशि) प्रजा में (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठा को प्राप्त (धर्मः) पक्षपात रहित न्याय धर्म के समान (राजा) राजा (अस्मि) हूं जिससे तुम लोग मेरे अनुकूल रहो।

भावार्थः—जो सब अङ्गों से शुभ कर्म करता है सो धर्मात्मा होकर प्रजा में सत्कार के योग्य उत्तम प्रतिष्ठित राजा होवे। ६।

इस मन्त्र में क्रिया कोई नहीं है। अतः प्रत्येक अङ्ग की पुष्टि की प्रार्थना करते हुए क्रिया लगाना होगी। यथा—

मेरी नाभिः ज्ञान रूप हो, मेरी मूलेन्द्रिय विज्ञान वाली हो, मेरी योनि=स्त्री प्रजाजनक हो, मेरे वृषण आनन्ददायक हों,

मेरा लिङ्ग सौभाग्य वाला=पुत्रोत्पन्न करने में समर्थ हों, जंघा और पैर प्रजा में प्रवेश करने योग्य हों, मैं इस प्रकार का प्रतिष्ठित राजा होऊं।

राजा के लिये उसके पुत्रादि उत्तराधिकारी की बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना यह बड़ा भारी राष्ट्र सङ्कट में पड़कर छिन्नभिन्न हो जाता है। एक राष्ट्र के छिन्न होते ही ब्राह्मणादि चारों वर्ण संकट में पड़ जाते हैं अतः राजा का उत्तराधिकारी युवराज अवश्य ही होना चाहिये। परन्तु देखा जाता है कि राजाओं में प्रायः युवराज के लिये ही रोना रहता है। दिलीप इस ही संकट में पड़े, दशरथ भी इसी संकट में पड़े और इस समय के राजागण उदयपुर, जयपुर आदि भी इसही संकटमय मार्ग में होकर गुजरे हैं। ऐश्वर्य पाकर अत्यन्त भोगी होने से, पाण्डु के समान, निर्वीर्य न हो जायें, इस लिये विशेष कर प्रजननेन्द्रिय और स्त्री के गर्भधारण करने के स्थान की रक्षा पर वेद भगवान ने बल दिया है। पैर और जंघाओं से भी पुष्ट हो जिससे प्रजा में प्रवेश करके उसके सुख दुःखको जानते रहें। परन्तु सनातनियों को तो न जाने क्या रोग है। जहां प्रजननेन्द्रिय आदि शब्द कहीं वेदादि सत्य शास्त्रों में आये और इनके मुखसे अश्लीलता २ की ध्वनि निकलने लगी! क्यों न हो पीलिया रोग वाले को पीला ही दिखाई देता है। नेक महीधर की भी सुनिये, वे क्या कहते हैं?—

"मेनाभिः चितं ज्ञानरूपमस्तु पायुर्मे गुदेन्द्रियं विज्ञान ज्ञानं जनित संस्काराधारमस्तु। भसत् स्त्री प्रजननमपचितिः प्रजारूप-

मस्तु यजमानपत्नी विषयमेतत्। मे आण्ढौ वृषणौ आनन्दनन्दौ स्तामानन्देन सम्भोगजनित सुखेन नन्दतस्तौ तत् सुखभोक्तारौ भवतामित्यर्थः। पसः पसतेः स्पृशति कर्मण इति यास्कोक्तेः यसोलिङ्ग भगः सौभाग्यं चास्तु भग ऐश्वर्य सौभाग्यं संपत्तिः सर्वदा भोगासक्तमस्त्वित्यर्थः।..... ॥ २० । ६ ॥

कहिये, यदि इसकी भाषा करदी जाय तो क्या संसार में सनातनियों को मुख दिखाने को कहीं स्थान शेष रहेगा ?

प्रश्न—यजु० २१ । ५२ में शरीर में स्तनों की जो ग्रहण करने योग्य क्रिया है उसको धारण करो, ऐसा स्वामीजी ने लिख दिया है ?

उत्तर—स्तनों की रक्षाकरना क्या पाप है ? यदि किसी की स्त्री के थंदैला=स्तन पकजाना, होजाय तो पता चलजाय कि कितना कष्ट हो जाता है। बालक बिना दूध के किस प्रकार कष्ट पाता है। स्तन का नाम आते ही दासजी अकड़ गये।

महीधर भी यह कहते हैं—"कथंतदहा ज्योतिः तेजः इन्द्रे धत्तः दधति तनयो शुक्रमिन्द्रियंच धत्तः वचन व्यत्ययः नश्वार्थं" स्वामीजी और महीधर दोनों ही एक से अर्थ करते हैं फिर आक्षेप कैसा।

प्रश्न—यजु० २४ । २३ में मुर्गे उल्लू पालना लिखा है।

उत्तर—भावार्थ में श्री स्वामीजी ने लिखा है कि—"जो मुर्गा आदि पक्षियों के गुणोंको जानते हैं वे सदा इनको बढ़ाते हैं।

भला कोई इन सनातनियों से पूछे कि पक्षियों को पालना

starling family. The bird was said to die instead of the patient.

अर्थात्—इसही प्रकार की रोमन लोगों में कमलवाओ के विषय में धारणा है कि इस (कमलवाओं) को "इक्टैरिसी" कहते हैं। डा० प्लिनी के कथनानुसार, यह एक बड़ा अच्छा चिन्ह है कि यह बीमारी इस पक्षी की ओर को देखने से दूर हो जाती है। यह पक्षी मर जाता है और रोगी चंगा हो जाता है। इस पक्षी का नाम कमलवाओ परक—'इक्टैरस' ही रख लिया है

आशय यह है कि रोपणाका और शुक एक तरह के पक्षी हैं। इनकी ओर देखने से कमल वाओ का पीलापन जाता रहता है। रोगी टकटकी लगाकर पीछे इस पक्षी की ओर देखता रहे तो यह पक्षी तो मर जाता है, परन्तु रोगी का कमल-वाओ रोग दूर हो जाता है। यह शिक्षा सबसे प्रथम ऋग्वेद ने दी, पुनः धीरे २ सारे संसार में फैल गई। यहां तक कि रोमनलोगों ने इस पक्षी का नाम भी कमलवाओ परक ही रख लिया। रोमन भाषा में कमलवाओ को "Icterici" इक्टैरिसी कहते हैं अतः इस पक्षी का नाम भी 'Icteras' रख लिया। अङ्गरेजी में इस पीलिया रोग को jaundice कहते हैं। अरबी में यरक़ां कहते हैं।

यह है वेद की पक्षी विद्या जिसको सीखना चाहिये।

३—त्रिःसप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः। तास्ते विषं विजभ्रिर उदकं कुम्भिनी रिव ॥ ऋ० १।१६१। १४॥

starling family. The bird was said to die instead of the patient.

अर्थात्—इसही प्रकार की रोमन लोगों में कमलबाओ के विषय में धारणा है कि इस (कमलबाओं) को "इक्टैरिसी" कहते हैं। डा० प्लिनी के कथनानुसार, यह एक बड़ा अच्छा चिन्ह है कि यह बीमारी इस पक्षी की ओर को देखने से दूर हो जाती है। यह पक्षी मर जाता है और रोगी चंगा हो जाता है। इस पक्षी का नाम कमलबाओ परक—'इक्टैरस' ही रख लिया है

आशय यह है कि रोपणाका और शुक एक तरह के पक्षी हैं। इनकी ओर देखने से कमल बाओ का पीलापन जाता रहता है। रोगी टकटकी लगाकर पीछे इस पक्षी की ओर देखता रहे तो यह पक्षी तो मर जाता है, परन्तु रोगी का कमल-बाओ रोग दूर हो जाता है। यह शिक्षा सबसे प्रथम ऋग्वेद ने दी, पुनः धीरे २ सारे संसार में फैल गई। यहां तक कि रोमनलोगों ने इस पक्षी का नाम भी कमलबाओ परक ही रख लिया। रोमन भाषा में कमलबाओ को "Icterici" इक्टैरिसी कहते हैं अतः इस पक्षी का नाम भी 'Icteras' रख लिया। अङ्गरेजी में इस पीलिया रोग को jaundice कहते हैं। अरबी में यरक़ां कहते हैं।

यह है वेद की पक्षी विद्या जिसको सीखना चाहिये।

३—त्रिःसप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः। तास्ते विषं विजभ्रिर उदकं कुम्भिनी रिव ॥ ऋ० १।१६१। १४॥

ग्रिफिथ साहब कृत अर्थः-

So have the peahens three times seven. so have the maiden sisters seven. Carried thy venum: far away, as girls bear water in their jars. 14.

The peahens three times seven: pea fowls are regarded as the great enemies of snakes. P. 257.

डाक्टरों का कथन है कि यदि सर्प के काटे हुए स्थान पर मुर्गी की गुदा के समीप के पर उखाड़ कर, उस गुदाको लगा दिया जाय तो वह मुर्गी उसके विष को गुदाकी ओर से खैंच लेती है। वह मुर्गी मर जाती है और सर्प का काटा हुआ अच्छा हो जाता है। इस प्रकार २१ मुरगियां तक काम में लाई जा सकती हैं।

४—बहुत जल्द एक मुरगी लेकर भिक्अद=गुदा के चारों तरफ के पर उखाड़कर सांप काटे हुए पर बर्मिसहू लगाकर मुर्ग को चस्पां कर दिया जाय और जहर उसमें सरायत करके खुद गिर जाये और मुर्ग मर जाये, और मरीज़ शफ़ा पाये॥ देखो—पुस्तक "अकसीर आजम" अमराज़ समूम इलाज मार गजीदन तर्जुमा फारसी॥

५—पक्षियों को राजा रक्षार्थ पाले—

चकोरस्याक्षि वैराग्यं जायते क्षिप्र मेवतु।
दृष्टवान्नं विषसंसृष्टं म्रियन्ते जीव जीविकाः। २६।

कोकिलः स्वर वैकृत्यं क्रोञ्चस्तु मद मृच्छति ।
हृष्यन्मयूर उद्विग्नः क्रोशतः शुक सारके ॥ ३०॥
हंसः क्वेति चात्यर्थं भृङ्गराजस्तु कूजाति ।
पृषतो विसृजत्यश्रु विष्टां मुंचति मर्कटः ॥ ३१ ॥
सन्निकृष्टास्ततः कुर्याद् राजस्तान् मृगपक्षिणः ।
वेश्मनोऽथ भूषार्थं रक्षार्थञ्चात्मानः सदा ॥ ३२ ॥

देखो सुश्रुत कल्पस्थान अध्याय २ पृष्ट १२२५ छापा बम्बई

अर्थात्— विष को या विषयुक्त भोजन को देखकर चकोर की आंखों में वैराग्य (आंखों की रङ्गत बदल जाती है) उत्पन्न शीघ्र हो जाता है, कोकिला के स्वर में भेद पड़ जाता है, क्रौंच पक्षी मद में भर जाता है, मोर उद्विग्न हो जाता है शुक और मैना चिल्लाने लगते हैं, हंस विशेष शब्द करने लगता है, भौंरा गूंजने लगता है, सांवर हिरन आँसू टपकाने लगता है, बन्दर मल त्यागने लगताहै, इसलिये राजा मृग और पक्षियों को अपने घर पर रक्षार्थ और शोभा के लिए रक्खें। आशय यह है कि राजाओं के अनेक शत्रु होते हैं । प्रायः भोजनादि में विष मिलाकर राजाओं को देना चाहा करते हैं। इसलिए राजाओं को अपने समीप ऐसे पक्षी रखने चाहियें कि विषयुक्त भोजन को देखकर या उसकी गंध सूङ्घ कर ऐसी चेष्टायें करें जिससे पक्षि-विद्याओं के जानने वाले यह जान लें कि इस पक्षि वा पशु का विष की ओर संकेत करने का आशय है। परंतु यह बात उसी समय हो सकती है जब इस पक्षि-विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लें। इस ही ज्ञान के लिये वेद भगवान् ने शिक्षा

दी है कि पशु पक्षियों की विद्या सीखो। सनातनियों को तो सत्यनारायण की कथा की चिंता है; यह क्या जानें कि वेद विद्या की महिमा क्या है? इस ही प्रकार के व्यर्थ आक्षेप कर करके इन नाम धारियों ने सारी वेद विद्याओं का लोप कर डाला। भारतवर्ष को मूर्ख बना कर भी इनको अभी चैन नहीं।

प्रश्न—स्वामी जी ने लवा और बटेर आदि को ऐश्वर्य के लिये, प्राप्त होना लिख दिया है। देखो यजु० २४।२४

उत्तर—मन्त्र यह है—सोमाय लवानां लभते त्वष्ट्रे कौलीकान गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान। २४।

मन्त्रार्थः—हे मनुष्यो! जैसे पक्षियों का काम जानने वाला जब (सोमाय) ऐश्वर्य के लिए (लवान) बटेरों (त्वष्ट्रे) प्रकाश के लिये (कौलीकान) कौलीक नाम के पक्षियों को (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (गोसादीः) जो गौओं को मारती हैं उनपर खेरियां (देवजामिभ्यः) विद्वानों की बहिनियों के लिये (कुलीकाः) कुलीक नामक पखेरियों और (अग्नये) जो अग्निके समान वर्त्तमान (गृहपतये) गृहपालन करने वाला उसके लिये (पारुष्णान्) पारुष्ण पक्षियों को (आ, लभते) प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पक्षियों के स्वभावज कामों को जानकर उनकी अनुहारि (नक़ल) किया करते हैं वे बहुश्रुत के समान होते हैं। २४।

विशेष २ विज्ञान पक्षियों से भी ग्रहण किया जा सकता है। जैसे क्या यह बात सिखाता है कि गृहनिर्माण कैसे किया जाता है ? बटेर अपने को शत्रुओं से कैसे छुपाती है ? सारस, जोड़ा बिछुड़ जाने पर, किसी प्रकार का अन्य मादीन से सम्बन्ध नहीं करता। हंस क्षीर नीर विवेक में कैसा निपुण है ? मयूरनाचने में कैसा चतुर है ? बगुला ध्यान लगाने में कैसा विख्यात है ? बलाक पक्षी पङ्क्तिबद्ध होकर आकाश में कैसे उड़ते हैं ? इस ही प्रकार अन्य पक्षियों के भी विशेष २ गुण जानने चाहियें। यह बात सत्य है कि हम सारे ही पक्षियों के गुण नहीं जानते। परन्तु वेद भगवान् भी नहीं जानते यह असत्य है। इसलिये बटेर, त्वष्ट्रा, कौली, गोसादी और कुलीक आदि पक्षियों तक को भी हम नहीं जानते हों, उनके गुण, कर्म स्वभाव जानना तो दूर रहा, तो क्या इससे यह सिद्ध हो जाता है कि इन पक्षियों में कोई अनुकरणीय गुण हैं ही नहीं ? प्राचीनकाल में अथवा इस समय भी यदि कहीं अन्य प्रदेशों में इनके गुण कर्म स्वभाव जानकर इनसे लाभ उठाते हों तो क्या आश्चर्य है ? क्या कबूतर के गुण कर्म-स्वभाव जानकर एतद्देशीय और विदेशीय, जर्मन आदि, उनसे पत्रवाहक दूत = चिट्ठीरसां का कार्य नहीं लेते रहे हैं ?

परन्तु इन सनातनियों को इन बातों से क्या मतलब ? उनको तो महात्माओं पर आक्षेप करना। परमात्मन् ? कौनसा

ऐसा समय आएगा जब इन नामधारी सनातनियों को बुद्धि प्रदान करोगे ? भगवन् ! आर्य जाति बहुत कुछ नष्ट भृष्ट हो चुकी है।

इन पौराणिकों की बुद्धि पर से अज्ञान का परदा उठा दो।

इस यजु० २४। २४। मन्त्र का महीधर भाष्य भी देखलीजिये।

महीधर—त्रयाणं लचानां मध्ये द्वौसोमाय ॥ अथषष्ठेऽवशिष्टे एकंलवं सोमाय। कौलीकान् पक्षिणः त्वष्ट्र । तिस्रो गोपादीः गवां सादयित्रीः पक्षिणीः देवानां पत्नीभ्यः। तिस्रः कुलीकाः पक्षिणीः देवजामिभ्यः; देवबधूभ्यः जामिः वष्ट कुल स्त्रियोः। त्रीन् पारुष्ण संज्ञान् गृहपतयेऽग्ये। २४।

भावार्थ—तीनों लवों में दो सोम के लिये, कौलीक पक्षि त्वष्ट्रा के लिये, तीन गोपादि-गायोंको कष्ट देने वाली पक्षी देवताओं की पत्नी के लिये, तीन कुलीक पक्षी देवताओं की बधुओं के लिये, तीन पाषाण नामके पक्षी गृहपति अग्नीके लिये।

इस २४ वें अध्याय के आरम्भ में प्रथम मन्त्रमें महीधर जी कहते हैं कि यह अध्याय अश्वमेध परक मन्त्रोंका है। इस अश्वमेध यज्ञ में २१ खंभे बनाये जाते हैं। इनमें पशु बांधे जाते हैं।

दूसरे मन्त्रमें महीधरजी बताते हैं कि कौन २ से यूप= खंभे से कौन २ का किस २ प्रकार का पशु बांधा जाय ? यही बात तीसरे और चौथे मन्त्रमें बताई गई है। ५, ६, ७, ८, ९, १० इन मन्त्रोंमें किस २ देवता के निमित्त कौन २ सा पशु किस २

यूप में बांधा जाय यह बताया है । ११ वें में किस वर्णके बकरे आदिको किस देवता के लिये आलंभन किया जाय यह बताते हैं। १२ वें में, १३ वें में, १४ वें में, १५ वें में, भी कौन २ सा पशु आदि किस देवता के निमित्त है, यह महीधर जी बतलाते हैं। इसही प्रकार आगेभी किसी मन्त्र में यूप से पशु आदि को बांधने की संख्या और किसी मन्त्रमें देवताओं के निमित्त पशु आदि का आलम्भन बतलाया है। इसही प्रकार ४० वें मन्त्र तक कहीं आलम्भन किया है और कहीं कहीं नहीं भी है। अन्त में बताया है कि ये सब मिलकर ६०६ पशु होते हैं। इन सबको जंगलों में छोड़ दे मारे नहीं।

पशुओं का देवताओं के साथ सम्बन्ध क्या हैं? यह जान लेना चाहिये। जिस प्रकार तिथि और नक्षत्रों के देवता उन २ तिथि और नक्षत्रों के देव कहाते हैं, वैसे ही प्रत्येक पशु पक्षी का गुण उसका देवता कहाता है। इन्ही देवताओं गुणों को वेद ने बताया है। वैदिक ज्ञान की वृद्धि के साथ २ इन सबका ज्ञान हो जायगा।

प्रश्न—यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र १ में स्वामी जीं ने अत्यन्त अश्लील लेख, लिखा है?

उत्तर—इस मंत्र में दास जी ने केवल एक शब्द पर ठोकर खाई है, वह शब्द है—"(आण्डभ्याम्) वीर्य को अच्छे प्रकार धारण करनेहारे है आंडों से (वृषणम्) वीर्य वर्षाने वाले अङ्ग को"।

क्या अण्डकोष वीर्य धारण करने के अङ्ग नहीं हैं? यदि नही हैं तो किसी वैद्य, हकीम डाक्टर से पूछ लीजिये। यदि है तो इस विद्या को बतलाने वाला मंत्र अश्लील कैसे? क्या मंत्र में="वृषण मण्डाभ्याम्" शब्द नहीं है? यदि हैं तो इनके अर्थ कृपया आप ही कर दीजिये? यदि यही अर्थ है तो क्या वेद पर नहीं आपका आक्षेप है? यदि उत्तर हां में है तो आप नास्तिक क्यों नहीं?

समझ में नहीं आता कि जो रात दिन मेढ़ की पूजा करें उसको चूमें, उस पर का चढ़ा हुआ जल आंखों से लगावें, उस पर श्रद्धा-भक्ति से हाथ फेरें, अपनी बहू बेटियों को उसके प्रसन्नता से दर्शन स्पर्शन करायें, वे वेद में ऐसे शब्द आते ही अश्लीलता की २ ध्वनि मुख से निकालने लगें? रात दिन जलाधारी=योनि का जल पवित्र समझ कर सिर पर चढ़ावें, आज उनको इनके नाम मात्र पर आक्षेप है!!

देखिये आपके सनातनी महीधर जी "आण्डाभ्यां वृषणभ्यां वृषणां देवं प्रीणामि"="वीर्य की वर्षा करने वाले अंडकोषो से 'वृषण' देवताओं को प्रसन्न करता हूं," कहते हैं। महीधर सनातन धर्म अंडकोषों को देवताओं को खिला रहा है। सनातनी खड़े हुए देखते हैं। चुपचाप रह कर सारे दृश्य का अनुभव कर रहे हैं!!!

प्रश्न—यजु०२६।२४ के भावार्थ में स्वामी जी ने लिख दिया है कि—"स्त्री पुरुष उत्कण्ठा पूर्वक संयोग करके जिन सन्तानों को उत्पन्न करें वे उत्तम गुणवाले होते हैं?

उत्तर—भले मानुषो ! क्या तुमको प्रत्येक सुन्दर शिक्षा से ही घृणा है ? क्या पैशाचिक आदि विवाह में रोती पीटती, मद्यपीए हुई, बेहोश और अबोध कन्या से सन्तान उत्पन्न करना ही सनातनी रीति है ? उत्कण्ठा के विरुद्ध, नैमनस्ययुक्त दम्पति, सन्तानोत्पत्ति करे तो सनातन धर्म पूरा होगा ?

हां, आप पौराणिको को वेद की इस सुशिक्षा से क्या सम्बन्ध ?

"समस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमाना पर्यत्याप:" । ऋ०

अर्थात—उस युवा पति को सुस्कारती हुई युवतियां शान्ति दायक जलके समान प्राप्त होकर सुशोभित करती हैं ।

आप को मनु की इस सुन्दर आज्ञा से भी क्या प्रयोजन ?—

१—ऋतुकालाभिगामीस्यात स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्ज्जं व्रजेच्चैना तद्व्रतो रतिकाम्यया ।। मनु० ३ । ४५ ।

अर्थ—अपनी स्त्री से पर्व वर्जित दिनों में ऋतुकाल में प्रीति पूर्वक संभोग करे ।

२—यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ।। मनु० ३ । ६१ ।

अर्थः—यदि स्त्री शोभित न हो तो पति को प्रसन्न न कर सके, और पुरुष के प्रसन्न न होने से सन्तान नहीं चलती ।

स्मरण रहे कि यह उत्कण्ठा स्त्री पुरुषों के चित्त में जभी उत्पन्न होती है जबकि दोनों युवती और युवा, और साथ २ ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मचारी भी हों । बालक बालिकाओं में उत्कण्ठा

उत्कंठा उत्पन्न नहीं हो सकती। उत्कंठा भी सन्तानोत्पत्ति की, नकि केवल भोग विलास की। परन्तु "अष्ट्वर्षा भवेद् गौरी" के दास उत्कंठा को क्या जानें ? ब्रह्मचर्य को क्या जानें? सन्तानोत्पति के लिये ऋतुकालाभिगामी होना क्या जानें ? इनके पुराण इस विषय में जो कुछ शिक्षा देते हैं वह 'पुराण परिचय' विषय में देख लीजिये।

ये नामधारी सनातनी पौराणिक शिक्षा में पले हुए हैं। ये वैदिक रीति को क्या जानें ? देश का पतन इन्ही पौराणिक शिक्षाओं ने किया है। इस दुर्गति के जिम्मेवार ये नामधारी सनातनी ही हैं।

इस यजु०२६।२४ पर महीधर जी भी वही बात कहते हैं— "देवेभिः देवैः जनभिः देवपत्नीभिश्च समुद्गणः सुष्टुमाद्यन्ति हृष्यन्ति समुदः मदे क्विप् समुदः सन्तुष्टा गणा देवाः स्त्री गणाश्च यस्य स समुद्गणः। जनयन्ति जनयो नार्यः।२४। इसमें भी देव और उनकी पत्नियों को सन्तुष्ट ही होना बताया है। आशय लगभग एक ही है।

प्रश्न—यजु० २७।३४ में जमाई के समान विद्वान् को बता दिया।

उत्तर—मंत्रः—तव वायवृतस्यते त्वष्टुर्जामात रद्भुत। अवां स्यावृणीमहे। ३४।

मंत्रार्थः—हे (ऋतस्यते) सत्य के रक्षक! (जामातः) जमाई के तुल्य वर्त्तमान (अद्भुत) आश्चर्यरूप कर्म करने

वाले (वायो) बहुत बल युक्त विद्वान् हम लोग जो (त्वष्टुः) विद्या से प्रकाशित (तव) आपके (अवांसि) रक्षा आदि कर्मों का (आ, वृणीमहे) स्वीकार करते हैं, उनका आप भी स्वीकार करो । ३४।

भावार्थः—जैसे जमाई उत्तम आश्चर्य गुणोंवाला सत्य ईश्वर का सेवक हुआ स्वीकार के योग्य होता है वैसे वायु भी स्वीकार करने योग्य है। ३४। (कन्या के लिये वर कैसा तलाश करे ? अर्थात्— उत्तम आश्चर्य गुण वाला, सत्य ईश्वर का सेवक)।

महीधरार्थः--हेवायो! हेऋतस्यते सत्यस्थ पालक ! हे त्वष्टुर्जा मातः! आदित्यादय आदाय वायुर्गर्भयति ततो वृष्टिर्भवतीति वायुरादित्यस्य जामाता। हे अद्भुत आश्चर्य रूप ! तवावांसि अन्नानि वयमावृणोमहे प्रार्थयामः।

इस टीका में वायु को आदित्य जमाई बताया है। हेतु यह दिया है कि सूर्य से जल लेकर वायु गर्भित करता है उससे वृष्टि होती है। स्वामी जी इस अलङ्कार को नहीं मानते वे वायु का अर्थ विद्वान् करते हैं, 'त्वष्टा' के अर्थ विद्या से 'प्रकाशित' करते हैं।

महीधर के वर्णन किये हुये अलङ्कार में इतनी न्यूनता है कि—सूर्य से लिया हुआ जलरूप वीर्य, उसकी स्थापना वायु, जामाता बनकर, गर्भ धारण करता है। किसमें धारण करता है ? पता नहीं। यदि कहो पृथिवी में ! तो मंत्र में 'पृथिवी' की चर्चा ही नहीं। अन्नरूप पुत्र की प्रार्थना कर दी गई !

प्रश्न--यजु०२८।३२ में गौओं के समान स्त्रियों को गर्भवती करना बता दिया है ?

उत्तर--जिस दिन तुम वेदों के रहस्य को समझने की योग्यता प्राप्त कर लोगे, उस दिन आर्यजाति का उद्धार हो जायगा। रोना तो यही है कि यह (नामधारी) सनातनी पुराणों के अन्धकार में फंस कर, वैदिक दिव्य ज्योतिः से अत्यन्त ही शून्य हो गये हैं। न ये स्वयं समझते हैं और न दूसरों को समझने देते हैं। स्वयं अन्धकारप्रिय बने हुए हैं; दूसरों को भी तमोमय जाल में कैसा फंसा रहने देना चाहते हैं। स्मरण रहे कि वेद भगवान सदैव ऐसे उदाहरण दिया करते हैं कि जो मनुष्यों के नित्य प्रति अनुभव में आते रहते हों। गवादि पशुओं का संबंध ब्रह्मचारी, गृहस्थी और वानप्रस्थी सबसे रहता है। उन सबको ही पशुओं से कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। गृहस्थियों को विशेष कर बैलों के आचरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि जिस प्रकार वृषभ गर्भिणी गौ से सम्बंध नहीं करता वैसे ही गृहस्थियों को अपनी गर्भिणी स्त्री से सम्बंध नहीं रखना चाहिये। गौ किस प्रकार अपने बच्चों से सच्चा प्रेम रखती है कि अपने मुख से बच्चे को चाटकर साफ़ करती है, वैसे ही परस्पर प्रेम करना चाहिये। "अन्योन्यत्रभ्यहंत जातं वत्स मिवा हन्या"। मंत्र पर ध्यान दीजिये।

प्रश्न—यजु०२९।४० मंत्र के भावार्थ में माता के तुल्य सुख देने वाली पत्नी लिख दिया है ?

उत्तर--दृष्टांत का सदैव एक देश लिया जाता है। सबसे अधिक प्रेम माता का पुत्र पर होता है। अतः पत्नी भी प्रेम का सम्बन्ध पति के साथ वैसा ही रक्खे। यही अत्यधिक प्रेम सुख का कारण होता हैं। भावार्थ में 'विजय' शब्द है। अर्थात्—"विजय सुख को प्राप्त हो", ऐसा लेख है। सनातनी दास जी 'विजय' के स्थान में "विषय" उद्धृत करके अपनी दासता का परिचय देते हैं। इस मन्त्र में धनुष की प्रत्यञ्चा की प्रशंसा है। इस प्रत्यञ्चा की उपमा योद्धा से दी है। यह प्रत्यञ्चा विजय सुख को प्राप्त कराने वाली है। धनुष की प्रत्यञ्चा शब्द करती हुई विजय दिलाती है। क्या निम्न लिखित श्लोक स्वामी दयानन्द जी का बनाया है?

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी। भोज्येषुमाता शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमयाधरित्री। षाड्गुण्यमेतद्धि पतिव्रताम्।
महाभारते।

अर्थात्—कार्य करने में सहायता देते समय मंत्री के समान, काम करते समय दासी के समान, भोजन कराते समय माता के समान, शयन के समय रम्भा के समान और क्षमा के समय धरती के समान। ये छः गुण पतिव्रता स्त्रियों के हैं। (परमात्मन् इन नामधारियों को शुद्ध बुद्धि दो)।

प्रश्न—यजु० २०।१६ के पदार्थ में जगदीश्वर से मच्छियों से जीवने वालों को...उत्पन्न कीजिये, लिख दिया है?

उत्तर—भावार्थ में स्वामी जी लिखते हैं कि—जो जिसके कर्म हैं उनसे उनकी रक्षा करनी चाहिये। आशय यह है कि कहारों की, मछली से जीने वाली जीविका, नियत है।

उसके अनुसार वे अपना जीवन व्यतीत करते हैं। मछली द्वारा जीविका करना मछलियों को मारना नहीं कहाता। यह कहारों का मछली मारना तो वैदिक प्रथा नहीं है। यह नवीन पौराणिक प्रथा है। सरोबरादि में मछलियों की अच्छी नसल बढ़ाना आदि जीविका के कारण हो सकते हैं। प्रायः बगीचों और अजायबघरों में रङ्ग विरङ्गी मछलियें हौज़ों में पड़ी देखी जातीं हैं। इन सबका संग्रह करना इन धीवरों का काम है। अथवा जो यह काम जीविकार्थ करैं, वह धीवर हैं। यही गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था है।

इस समय धीवर मछलियां मारकर जीविका उपार्जित करते हैं। इससे पौराणिकों ने यह परिणाम निकाल लिया है कि प्राचीन कालसे मछली खाई जाती हैं वा धीवर यही कृत्य करते रहे होंगे। हमफिर इन सनातनियों से पूछते हैं कि आप यह आक्षेप वेद पर करते हैं या श्री स्वामी जी महाराज पर? जबकि "शौष्कल" शब्द वेद में स्वयं ही पड़ा हुआ है, और उनके अर्थ भी महीधर और स्वामीजी दोनों ही-"मत्स्यजीविनम्" =मछलियों से जीने वाला अर्थ करते हैं। तो फिर यह आक्षेप किसपर है?

प्रश्न— यजुर्वेद ३०। २१ के पदार्थ में" सांप आदि उत्पन्न कीजिए, लिखदिया है।

उत्तर—सद्भावना तो इन सनातनियों को छू तक नहीं गई। सदैव कुटिलताका व्यापार इनके पल्ले पर पड़ा है!! भला यदि पूरा पाठ उद्धृत करदेते तो सनातनधर्म की शान में कौनसा

बट्टा लगजाता ? सुनिये पाठ इस प्रकार है—(पृथिव्यै) पृथिवी के लिये (पीठ सर्पिणम्) बिना पगों के कढ़िरिके चलने वाले सांप आदि को (उत्पन्न कीजिये)।

आशय यह है कि—सर्प इत्यादि पीठ से रेंगने वाले विषैले जीव, हे परमेश्वर ! पृथिवी में ही रहें। इनके लिये पृथिवी ही उपयुक्त स्थान है। जितने समय तक पृथिवी में रहेंगे उतने ही समय तक संसारमें इनका भय नहीं होगा। जितने समय ये अपने उपयुक्त स्थान-बिल को छोड़ेंगे तभी भय उत्पन्न होजायगा। अतः ये जीव पृथिवी में ही रहें तो अच्छा है। इस मन्त्रमें जिसके जो स्थान रहने को वा जीविकार्थ उपयुक्त हैं, उनका वर्णन किया है।

महीधर कहते हैं कि—"पृथिव्यै पीठ सर्पिणां पीठेना सनेन सर्पति गच्छति पीठ सर्पीतं पङ्गुम् (आलभते)। २१।

"पृथिवी देवता के लिये पहेंया पीढ़े के सहारे सरकने वाले लूलेका आलभन करे"। अब पाठकों को जो रुचे सो स्वीकार करें।

प्रश्न—यजु० अ० १४ म० ५ में स्त्री को अविनाशी सुख-देने वाला लिख दिया है ?

उत्तर—जिस अर्थ में अविनाशी शब्द मुक्ति के लिये है, उसी अर्थ में यहां भी है। अर्थात्—जब तक मुक्ति की अवधि है, तब तक वह निरन्तर आनन्द भोगता रहेगा। इसही प्रकार जब तक गृहस्थ रहे तब तक निरन्तर स्त्री सुख देनेवाली बनी

रहे। अविनाशी = उस समय तक नाश न हो जबतक गृहस्थकी स्थिति है।

प्रश्न—यजु० १४। ८ में स्वामीजी ने लिखदिया है कि—स्त्री पति से कहे और पति स्त्री से कहे कि 'हे स्वामी' तू मेरे नाभि के नीचे गुह्येंद्रिय मार्ग से निकलने वाले अपान वायु की रक्षा कर।"

उत्तर—स्वामी जी कहते हैं कि हे पते वा स्त्रि! तू रक्षा कर।

महीधरजी कहते हैं "हे इष्टके"! तू रक्षा कर।

अब विचारणीय विषय यह है कि क्या इष्टिकायें प्राण और अपान की रक्षा कर सकती हैं? इष्टिका = ईंटें कहाती हैं।

मन्त्र का आशय इस प्रकार है—

"प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या विभाहि०" यजु० १४। ८।

कृपया 'प्राणम्मे पाहि' 'आपानम्मे पाहि' "व्यानम्मे पाहि" के अर्थ कर दीजिये? यही तो अर्थ होंगे कि—मेरे प्राणों की रक्षा कर, मेरे अपान को रक्षाकर, मेरे व्यान को रक्षा कर। अब जरा प्राण, अपान, और व्यान, के क्या अर्थ हैं, यह भी विचारिये? प्राण वह वायु है जो मुख नासिका से आता है, अपान वह वायु है जो गुदेन्द्रिय द्वारा निकलता है और व्यान वह है जो शरीर के मध्य में विचरता है। फिर स्वामीजी ने

कौनसा अनर्थ कर दिया जो गृहस्थी में स्वस्थ रहने की विधि बतादी ? औषध और भोजन का गृहस्थ में ऐसा प्रबन्ध रहे कि जिससे शरीरस्थ प्राण अपान, व्यान, आदि वायु यथावत् विचर कर कार्य करते रहें। महीधर को बताई हुई इष्टिकायें यदि आपके प्राणादि को शुद्ध कर सकें तो आप जानें, करा लीजिये। संभव तो यही है कि पुरुष, *स्त्री अथवा वैद्यही औषध आदि से प्राणादि को स्वस्थ रख सकते हैं। जड़ इष्टिकायें किसी प्रकार भी इस कार्य को पूरा नहीं कर सकतीं। सनातनी पण्डितों को उचित है कि वे चेलों को कहदें कि ईंट पत्थरों से अपने अपान वायु को शुद्ध करा लिया करें। तरकीब गुरूजी बतादेंगे।

प्रश्न—यजु० १६। १७ में आम आदि वृक्षों को काटना लिख दिया है ?

उत्तर—हां लिख दिया है। फिर आपकी क्या हानि है ? शुद्धिसे काम न लेनेकी तो सनातनियों ने क़सम खा ली है। यह भी सोचा है कि कैसे वृक्षों को काटें ? (हरिकेशेभ्यः वृक्षेभ्यः) जिन वृक्षों में हरणशील किरणें सूर्य की प्राप्त होगई हों'— अर्थात् जो सूख गये हों'। सूखे वृक्षों के लिये 'नमः' वज्र होना चाहिये। महीधरजी कहते हैं 'हरे हरे पत्ते जिन वृक्षों के हैं उनके

*गृहस्थ में विशेषकर गृहणी ही भोजन बनाती है, अतः उन्हींको उचित है कि वे ऐसे भोजन बनावें कि जिससे प्राण, अपान और व्यानादि कुपित न होने पावें। ऐसा करने से सारा ही गृहस्थ परिवार सुखि रहेगा। यही वेद का आशय है।

रुद्ररूप वृक्षों को "नमस्कार"। सनातनी जड़ वृक्षों के आगे औंधे गिरवा रहे हैं। स्वामी जी कहते हैं—हरे वृक्षों को न काट कर उन वृक्षों को काटो जिन का हरण शील=रस हरण करने वाले सूर्य ने रस खेंच लिया हो अर्थात् सूखगये हों।

प्रश्न—यजु० २५। ४४। में स्वामी जी ने शिष्यों को एक एक गधा बांधना लिखा है।

उत्तर—क्यों पण्डित जी! गधे से आप इतने क्यों घबड़ाते हैं। गधा तो आपकी=सनातनियों की माताजी की सवारी है। शीतला स्तोत्र में तो गधे के १२ नाम जपने का बड़ा माहात्म्य लिखा है। हम आप से फिर पूछते हैं कि आप वेद पर आक्षेप कर रहे हैं या श्री स्वामीजी महाराज पर? वेदतो खर-गधे को पशुओं में प्रिय बताता है—"यथा खरो मघवश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव" अथर्व २। ३६। ४ अर्थात् जिस प्रकार यह गधा पशुओं में सबसे अधिक मनोहर और प्रेम पात्र है, उत्तम गतिशील और उत्तम सवारी देने हारा है। खर-गधा। अमर कोष-२। ७७॥

वेदमें "वाजीधुरि रासभस्य" ॥४४॥ ये शब्द आये हैं।

इनका अर्थ महीधर जी करते हैं कि—"किञ्च रासभस्याश्व वाहनस्य धुरि आश्ववाहन स्थाने वाजी कश्चिदश्वः उपास्यात् उपस्थास्यति"।

यह यज्ञ में मारा हुआ घोड़ा देवता बन जाता है। इस की सवारी के लिये इन्द्र आदि देवता अपनी २ सवारी भेजते

हैं। इन सवारियों में गधा भी है। जब देवता तो गधे पर सवार होकर नीच न हों, परन्तु मनुष्य अपमानित हो जाय; यह आश्चर्य है। सिन्ध में विशेष कर गधे की ही सवारी की जाती है—जिन मनुष्यों के घरपर गधे बंधे रहते हैं वे सब आपही के चेले हैं। स्वामी जी ने "अश्वजाति से सम्बन्ध रखने वाला खच्चर" ऐसा लिख दिया है। गधा नहीं लिखा है।

प्रश्न—यजु० २६। २ में ईश्वर की स्त्री लिख दिया है।

उत्तर—यदि आपके मस्तिष्क में बुद्धिका लेश नहीं रहा है तो महर्षि के भाष्य पर समालोचनार्थ लेखनी ही क्यों उठाते हो? आप लोगों की बुद्धि तो जड़ की पूजा करते २ जड़ हो गई है, इस लिये आप भाषा तक समझने में असमर्थ हो गये हैं!! "अपने स्त्री सेवक आदि" का तात्पर्य क्या है, यह हमसे पूछिये। "अपने" शब्द का सम्बन्ध ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से है न कि ईश्वर से। जिसको साधारण भाषा का भी ज्ञान न हो वह चले हैं आक्षेप करने स्वामी जी के वेद भाष्य पर? यदि वायसराय महोदय भारतियों को सम्राट् की यह आज्ञा सुनावें कि—"ऐ भारत के रहने वालो! हिन्दू, मुसलमान ईसाई, जैनी, सिक्ख, पारसी और बौद्ध मतावलम्बियो! मैं तुम को आज्ञा देता हूं कि तुम अपनी स्त्री, बालक, और नौकरों सहित राज भक्त बने रहो"। यहाँ पर "तुम्हारे" की जगह "अपना" शब्द व्यवहार में लाया गया है। "स्वाय" शब्द के अर्थ "अपने के लिये हैं"। 'स्वाय' शब्द परमेश्वर के लिये

नहीं हो सकता। 'स्वाय' के अर्थ सिवाय—"अपने के लिये" के और क्या हो सकते हैं ?

अब आप नामधारी सनातनी इसको ईश्वर की ओर लगाते हैं तो लगावें, क्यों कि आप तो ईश्वर की स्त्री लक्ष्मी जी को मानते ही हैं। ये ही संस्कार समय २ पर आपके मस्तिष्क में उपज उठते हैं। आश्चर्य तो यह है कि आपके संस्कार इतने भ्रष्ट हो चुके हैं कि वेदार्थ करना कराना आपके लिये नितान्त असम्भव हो गया है। आपको और आपके अनुयायियों को यह जान लेना चाहिये कि जब परमेश्वर, निराकार है तो उसकी स्त्री कैसे कही जा सकती है ? हां अलङ्कार की रीति पर श्री लक्ष्मी पत्नीवत् कही गई है। जिस प्रकार मनुष्य का अधिकार श्री और लक्ष्मी पर रहता है, वैसे ही ब्रह्म का अधिकार इन पर है।

प्रश्न—वेद में ब्रह्मा को ईश्वर का अवतार माना है—?

देखो—ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान। भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः। अथर्व १९। २३। ३०।

उत्तर—यदि आप वेद को नहीं समझ सकते तो वेदों में टांग अड़ाते ही क्यों है ? यह महापाप है। इस वाक्य पर ध्यान देना चाहिये—"भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे"=प्राणियों में ब्रह्मा सब से प्रथम हुआ। इससे सिद्ध है कि ब्रह्मा प्राणियों में से कोई एक था। वह ब्रह्मज्ञानी था। प्रथम के दो अर्थ हो सकते हैं—श्रेष्ठ और पहला। सृष्टि के आदि पुरुष ब्रह्मज्ञानी हुए, अथवा श्रेष्ट हुए ! या ब्रह्मा से प्रथम हुआ—उस समय

के भूतों में जो श्रेष्ठ होता है वह ब्रह्मा कहा जाता है। जो चारों वेदों को पढ़कर विद्वान् बनता है वह ब्रह्मा होता है। यदि ब्रह्मा का अवतार होता तो ब्रह्मा के ऐसे बुरे लक्षण होते जैसे पुराणों में लिखे हैं।

उदाहरण—"भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः"=भूतों में प्राणी श्रेष्ट हैं। यहां पर 'भूत' का अर्थ पञ्च प्राकृतिक भूत हैं।

"विद्यातपोभ्यां भूतात्मा०" यहां पर 'भूत' अर्थ जीवात्मा के हैं। अब कहिये-"भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे०" यहाँ पर 'भूत' के क्या अर्थ करोगे? यही ना कि पञ्च भूतों में अथवा जीवात्माओं में ब्रह्मा प्रथम हुआ? एक आशय यह भी हो सकता है कि सृष्टि के उत्पन्न करने से ब्रह्मा होता है--जिस समय आदि सृष्टि रचता है उस समय 'ब्रह्म' ब्रह्मा कहाता है। जैसे पालन करने से 'विष्णु' प्रलय करने से 'रुद्र'। इस सारे कथन से यह कैसे सिद्ध हो गया कि ब्रह्मा ईश्वर का अवतार था? यह पौराणिक ब्रह्मा कैसा है? यह "पुराण परिचय" विषय में देखना।

शतपथ के भाष्यकार की सम्मति—

१—अतएव इस वैध यज्ञ में भी ब्रह्मा वही बनाया जाता है जो कि तीनों वेदों का विद्वान् होता है। शतपथ भाषा भाष्य पृष्ठ ७३।

२—इस ही वेदमय ब्रह्मा से यज्ञ की रक्षा होती है। पृष्ठ ६१॥

३—अतएव इस वेधयज्ञ में भी त्रयी वेद के अधिष्ठाता

सन्तपनाग्निमय ब्राह्मण को यज्ञ की रक्षा के लिये सब से पहले यज्ञ मण्डप के दक्षिण भाग में प्रतिष्ठित करना आवश्यक होता है। पृ० ६१॥

४—अक्षर ब्रह्माक्षररूप इन्हीं चारों मुखों से निर्माण किया करते हैं। चार क्षरमुख—प्राण, आप, वाक् और अन्न। पृ० १०३॥

ऋग्वेदे न होता करोति। १६, सामवेदेनोद्गाता। २० यजुर्वेदेनाध्वर्यु:। २०, सर्वैर्ब्रह्मा। २२॥ आपस्तंबीय यज्ञपरिभाषागरम

वास्तव में यह सारा विष इन पुराणों का फैलाया हुआ है। इन पुराणों ने वैदिक विषय को इतना दूषित बना दिया है कि बहुत काल तक अनथक प्रयत्न करने पर भी यह चढ़ा हुआ विष कठिनता से उतरेगा। इसही विष का प्रभाव इतना नाम धारियों के रुधिर और मस्तिष्क में प्रवेश किये हुए हैं, जिस से इन की मत बौरा गई है, सत्यासत्य विवेक रहित हो गई है। ईश्वर कृपा करो।

जैनियों के प्रश्न और उनके उत्तर—

वेदों में जैन तीर्थों के नाम—

१—सनेमि राजा परियाति विद्वान्। यजु० ६। २५।

अर्थः—(सनेमि) नियम धर्मसहित वर्तमान (राजा) विद्वान् सब ओर से प्राप्त होता है।

यहाँ पर नेमिके अर्थ नियम में रखने वाले के हैं। यह राजा का विशेषण है। नेमिनाथ तीर्थङ्कर का नाम नहीं है।

निघटु ३—२७ में "सनेमि" पुराने का नाम है

महीधर—"चिरन्तनो राजा"=पुराना राजा अर्थ करते हैं।

स्मरण रहे कि 'सनेमि' एक शब्द है। 'स+नेमि' इस प्रकार जैनियों के लेखानुसार "वह नेमिनाथ तीर्थङ्कर भगवान्" ऐसा अर्थ नहीं है। ऐसा लिखना सरासर धोखा देना है। जैनियों को अपना पक्ष ईमान्दारी से रखना चाहिये।

महावीर—आतिथ्य रूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
यजु० १९। १४।

उत्तर—

भाषार्थ—हे मनुष्यो! (मासरम्) जिससे अतिथिजन महीनों में रमण करते हैं ऐसे (आतिथ्यरूपम्) अतिथियों का होना वा उनका सत्कार रूप (महावीरस्य) बड़े महावीर पुरुष का (नग्नहुः) जो नग्न अकिञ्चनों का धारण करता है।

इस मन्त्र में महावीर उस पुरुष का नाम है जो दीन अकिञ्चन पुरुषों का भरण पोषण करता है। महावीर स्वामी का कोई प्रसंग नहीं। "नग्नहुः" का अर्थ "नग्न स्वरूप" कैसे हो गया?

"नग्नहुः" में दो शब्द हैं—नग्न+हुः। 'नग्न'=नंगा और 'हुः' देने हारा। 'हू' दानादनयोः के अनुसार "हु"=धातु देने और लेने के अर्थ में है। और खाने के अर्थ में भी है। 'नग्न' के तो नंगा अर्थ हो गये, और "हुः" को कहां खपाओगे? महीधर तो "महावीरस्य=धर्मस्य" करते हैं। महावीर एक यज्ञ का पात्र है।

*अरिष्ट नेमिः—"स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः"। यजु० २५ । १९

इस स्थल पर "अरिष्ट नेमि"। के अर्थ हैं—सुखों की प्राप्ति कराने वाला। ऐतरेय ब्राह्मण में 'अरिष्ट नेमि' के अर्थ इस प्रकार किये हैं—"अरिष्ट नेमिं पृतना जमाशुमित्येष वा अरिष्ट नेमिः पृतनाजिदाशुः। ऐ० ब्रा० ३। १८। ६।

भाष्य—अरिष्ट नेमिं रिष्टं हिंसा तद्राहित्य मरिष्टं तस्यच नेमि स्थानीयम्। यथा रथ चक्रस्य नेमिः परितो रक्षिता भवति तद्वत्।

अर्थात्—रिष्ट हिंसा को कहते हैं। उससे जो रहित वह—अरिष्ट। रथ के चक्र की नेमि जिस प्रकार चारों ओर से रक्षा करती है उसके समान रक्षक। अहिंसक को अरिष्ट-नेमि कहते हैं। वेदों में इस शब्द को अहिंसापरक जानकर जैनियों ने अपने तीर्थङ्कर जी का नाम 'अरिष्ट नेमि' रख लिया। देखो वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाच निर्ममो।

महीधर जी भी ऐसा ही अर्थ करते हैं—"अरिष्ट नेमिः अरिष्टा अनुपहिंसिता नेमिश्चक्रधारा पक्षोवा पस्य सः"।

अर्थात्—जिसके चक्र की धारा हिंसा रहित वह अरिष्टनेमिः हैं। वृषभ, वृषभ, नेमि, वीर, सुवीर, महावीर और नग्नहु शब्द वेद में आ जाने से यह सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न

---

*अरिष्ट नेमिः पुत्रोऽभद् गरुडोनाम् पक्षिराट्। गरुडस्या भवत् पुत्रः सम्पाति रिति विश्रतः॥ मार्कण्डेय पुराण अ० २ श्लो० १ पृ० १२

अर्थात्—अरिष्ट नेमि गरुड़ पक्षिराट् को कहते हैं।

करना कि ये नाम हमारे तीर्थङ्करों के हैं, जैनियों का दुस्साहस है।

अमरकोष में 'ऋषभ' के इस प्रकार अर्थ हैं—

१—शृङ्गीतु ऋषभोवृष: । काण्ड २ वनौषधवर्ग ४ श्लोक ११६।

२—उक्षा भद्रो बलीवर्द ऋषभो वृषभो नृप: ॥ २ । वैश्यवर्ग ६ श्लोक ५६।

३—स्युत्तर पदे व्याघ्रा युङ्गवर्षभ कुञ्जरा: ।३। विशेष्य निघ्नवर्ग १ श्लोक ५६।

इस ऋषभ शब्द के अर्थ क्रमश:—काकड़ा सिंगी, बैल और श्रेष्ठ के हैं।

वृषभ=अर्थ भी बैल के हैं—अमरकोष-२। ५६।

वृष के अर्थ=राशि, धर्म, बाँसा , ऋषभओषधि, बैलवीर्य वाला

नेमि:—कुए का चाक। अमरकोष १ काण्ड वारिवर्ग १० श्लोक २७।

नेमि:—रथ के पहिये की नेमि। अमरकोष २ काण्ड क्षत्रियवर्ग ८ श्लोक ५६।

वीर—नाटक का रस, वीर रस और शूरवीर के हैं।

नग्नहु—चावल से बने मदिरा के बीज के हैं। देखो अ० को० का० २ शूद्रवर्ग १० श्लोक ४२।

नग्न—नंगे के हैं। देखो अमरकोष कां० ३ विशेष्य निघ्नवर्ग १श्लोक ३६।

दिगम्बर-भी नंगे को कहते हैं।

ये उपर्युक्त प्रमाण हमने जैनधर्मावलम्बी अमरसिंह रचित अमरकोष के दिये हैं। अमरसिंह ने महावीर, अरिष्टनेमि, सुवीर और नेमिनाथ तीर्थङ्करों के नाम होने पर भी अपने अमरकोष में नहीं दिये। अन्य नाम भी जिनको, आप, वेदों से तीर्थङ्करों के नाम सिद्ध कर रहे हैं, वे अमरकोष में अन्य २ वस्तुओं के नाम हैं न कि तीर्थङ्करों के।

कृत्या क्या है?

१—अमा कत्वा पाप्मानं यस्तेन अन्यं जिघांसति। अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुला फट् करिक्रति। अथर्व ५। १८। ३

अर्थात्—पापमान को कच्चे पात्र में बन्द करके आग लगादे तो भीतर के पत्थर फट फट कर बिखर जाते हैं।

२—यश्चकार न शशाक कर्त्तुं शफे पादभङ्गुरम्। चकार भद्र मस्मभ्यमात्मानं तपनं तु सः॥ अथर्व ४। १८। ६॥

अर्थात—यदि कृत्या ठीक न हो तो अपनी हाथ अंगुली तोड़ लेता है, हमको तो अच्छा होता है।

आशय यह है कि, वेदार्थ को न जान कर, बहुत से आक्षेपकर्त्ता यह कहते हैं कि अथर्व वेद में "कृत्या" जादू टोना है। परन्तु कृत्या के अर्थ हैं—ऐसे प्रकार से घात करना कि शत्रुको पता न चले कि क्या किया जा रहा है। जैसे पृथिवी में भभक उठने वाले पदार्थों में गाढ़ देना आदि। यदि इनको संभाल कर न किया जाय तो स्वयं अपने को हानि पहुंचा लेता है।

यजुर्वेद अध्याय २५ में अश्वविद्या का वर्णन—

बहुत से सनातनी और जैनी जो वेदों के परम शत्रु सिद्ध हुए हैं, वेदों में अश्व को मार कर हवन करने का, वृथा कलङ्क लगाते हैं। सनातनी और जैन हमारे लिये तो दोनों ही वेदों के परम शत्रु सिद्ध होते हैं। इन दोनों की ही बुद्धियें जड़ पूजा करते २ जड़वत् हो चुकी हैं। इन दोनों के ही असंभव गाथा-युक्त पुराण, इनको अविद्या के गढ़े में गिराये हुए हैं। इन की बुद्धि पर पुराणों का ऐसा आवरण पड़ा हुआ है कि सत्यार्थ इनको सूझ ही नहीं पड़ता। इन सनातनी और जैनी दोनों ने ही वेदों को कलङ्कित करने की होड़ लगा रक्खी है। अन्य यवनादि इन्ही का अनुकरण करते हैं—जड़ ये ही दोनों व्यक्ति हैं। जिन वेदों के मन्त्रों में अपूर्व विज्ञान भरा है, उनमें इन दोनों को हिंसा, अश्लीलता, असंभवता, हास्य और अंडबंड बातें दीख पड़ती हैं। यजुर्वेद के २५ वें अध्याय में अश्वविद्या का वर्णन है, जिसको ये दोनों ही जड़वादी नहीं समझे। एक ने इन मन्त्रों का सहारा लेकर अवाक् पशुओं का रुधिर बहाना आरम्भ कर दिया, दूसरे ने इस को हिंसा समझ कर वेदों को ही त्याग दिया। महर्षि दयानन्द जी ने वेदों के सत्यार्थ संसार के सामने रक्खे तो इन अविद्यान्धकार प्रिय संप्रदायियों ने कोलाहल मचाना आरम्भ कर दिया कि स्वामी जी ने वेदार्थ अशुद्ध कर डाला !!!

इन दोनों में विशेष दोष इन नामधारी सनातनियों का है,

जो वेदों में आये हुए यौगिक शब्दों को रूढ़ि शब्द सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न रात दिन किया करते हैं। जब ये सनातनी ही वेदों में रामकृष्णादि शब्दों को रूढ़ि मान कर अवतार सिद्ध करने का दुःसाहस करते हैं तो ये जैनी भी, वेदों में यौगिक शब्द—अरिष्टनेमि और महावीर आदि आजाने से, अपने तीर्थङ्कर सिद्ध करने का यत्न करते हैं।

जब ये ही वेदों में—अश्वमेध, गोमेध, नरमेध और अजामेध सिद्ध करने में अपना परम गौरव समझते हैं तो जैनी भी वेदों को कलङ्कित करने में क्यों कसर बाक़ी रखते ?

जैनियों का इतना दोष है कि ये पढ़ लिख कर भी ज्ञान दुर्विदग्ध बने हुए हैं। अपनी बुद्धि से काम न लेकर सनातनियों के पीछे लाठी पकड़े चल रहे हैं। अतः दोनों ही अविद्यागर्त में जा रहे हैं।

यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र २६ से चलिये—

मन्त्रः—एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत् पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेन ꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥ २६ ॥

मन्त्रार्थः—(एष) ये (पुरः) प्रथम (विश्वदेव्यः) सब विद्वानों में उत्तम (पूष्णः) पुष्टि करने वाला (भागः) सेवने योग्य (छागः) पदार्थों को छिन्न भिन्न करता हुआ प्राणी (वाजिना) वेगवान् (अश्वेन) घोड़े के साथ (नीयते) प्राप्त किया जाता और (यत्) जिस (अभिप्रियम्) सब ओर से

मनोहर (पुरोडाशम्) पुरोडाश नामक यज्ञ भाग को (अर्वता) पहुंचाते हुए घोड़े के साथ (त्वष्टा) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला (एनम्) उक्त भाग को (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्तिमान होने के लिये (इत्) ही (जिन्वति) पाकर प्रसन्न होता है वह सदैव पालने योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थः—यदि अश्वादिकों के साथ अन्य बकरी आदि पशुओं को बढ़ावें तो वे मनुष्य सुख की उन्नति करें।

पाठक गण ! प्रत्येक मन्त्र के साथ शालिहोत्र=सलौतरी विद्या को जोड़ कर अर्थ समझना होगा।

घोड़ों के पालने वाले जानते हैं कि घोड़ों के बछेड़ों के लिये, माता के दूध से अधिक, गुणदायक और पुष्टिकारक दूध बकरी का होता है। हमने स्वयं देखा है कि घोड़ों के शौक़ीन बहुतसी बकरियां भी साथ २ पालते हैं। यह विद्या सलौतरी लोग जानते हैं। वेद ने इस ही लिये कहा है कि प्रथम छाग अर्थात बकरी को पालो। यह घोड़े का पुष्ट भाग अपने भीतर रखता है।

मन्त्रः—यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञन्देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ २७ ॥

मन्त्रार्थः—(यत्) जो (मानुषाः) मनुष्य (ऋतुशः) ऋतु २ के योग्य (हविष्यम्) होम में चढ़ाने के पदार्थों के लिये हितकारी (देवयानम्) दिव्यगुण वाले विद्वानों की प्राप्ति कराने हारे (अश्वम्) शीघ्र गामी प्राणी को (त्रिः) तीन वार (परि,

नयन्ति) सब ओर पहुंचाते हैं वा जो (अत्र) इस संसार में (पूष्णः) पुष्टि सम्बन्धी (प्रथमः) प्रथम (भागः) सेवने योग्य (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (यज्ञम्) सत्कार को (प्रतिवेदयन्) जानता हुआ (अजः) विशेष पशु बकरा (एति) प्राप्त होता है वह सदा रक्षा करने योग्य है। २७।

भावार्थः—जो मनुष्य ऋतु २ के प्रति उनके गुणोंके अनुकूल आहार विहारों को करते तथा घोड़ा और बकरा आदि पशुओं से संगत हुए कामों को करते हैं वे अत्यन्त सुख को पाते हैं।२७।

प्रत्येक ऋतु में अश्व के क्या २ भोजन और मसाले हैं यह जानना और देना उचित है। इससे घोड़ा स्वस्थ रह कर अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

इस मंत्र में बताया है कि जिस प्रकार ऋतु अनुकूल हवन किया जाता है उस ही प्रकार घोड़े के ऋतु २ के पदार्थ मसाला आदि देना चाहिये। ये मसाला आदि में ३ बार देना चाहिये। यही व्यवहार बकरे के साथ होना उचित है।

मन्त्रः—होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्तासुविप्रः। तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणहवम्॥ २८॥

मंत्रार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (होता) ग्रहण करनेहारा या (आवयाः) जिससे अच्छे प्रकार यज्ञ संग और दान करते वह वा (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रदीप्त करनेहारा वा (ग्रावग्राभः) मेघ को ग्रहण करनेहारा वा (शांस्ता) प्रशंसा करने

हारा (उत) और (सुविप्नः) जिसके समीप अच्छे २ विद्वान् हैं वह (अध्वर्युः) अहिंसा यज्ञ का चाहने वाला उत्तम जन जिस (स्वरङ्कृतेन) सुन्दर सुशोभित किये (स्विष्टेन) सुन्दर भाव से चाहें और (यज्ञेन) मिले हुए यज्ञ आदि उत्तम काम से (वक्षणाः) नदियों को पूर्ण करता अर्थात् यज्ञ करने से पानी वर्षा, उस वर्षे हुए जल से नदियों को भरता वैसे (तेन) उस काम से तुम लोग भी (आपृणध्वम्) अच्छे प्रकार सुख भोगो।

भावार्थः—जो मनुष्य सुगंधि आदि से उत्तम बनाये होम करने योग्य पदार्थों के अग्नि में छोड़ने से पवन और वर्षा जल आदि पदार्थों को शोधकर नदी नाव आदि के जलों की शुद्धि करते हैं वे सदैव सुख भोगते हैं।

आशय यह है कि—इन अश्व आदि के स्नान और पानी पीने के लिये अच्छे नदी नद और सरोवरों की आवश्यकता है उसके लिये यज्ञों की क्रिया होनी चाहिये जिससे नीरोग और सुन्दर जल से वे भरें। ये काम चतुर होता और अध्वर्यु आदि का है जो हिंसा रहित यज्ञ करें करायें।

अगले मंत्र में यह बताया है कि—जो कारीगर बढ़ई, घोड़ों को बांधने के लिये खूंटे आदि बनाते हैं, और वह जो घोड़ों के लिये ऐसी चीजें पकाते हैं जो घोड़ों के लिये लाभदायक हों, उनको इस कार्य के लिये भले प्रकार नियुक्त करना चाहिये। यथा—

मन्त्रः— यूपव्रस्का उतये यूपवाहाश्चषालं ये

अश्वयूपाय तक्षति। ये चार्वते पचनꣳसम्भरन्त्युतो तेषा मभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ २९ ॥

भावार्थः— (ये) जो (यूपव्रस्काः) यज्ञ खम्भा के छेदने वाले (उत) और (ये) जो (यूपवाहाः) यज्ञस्तम्भ को पहुंचाने वाले (अश्वयूपाय) घोड़े के बांधने के लिये (चषालम्) खम्भा के खण्ड को (तक्षति) काटते छांटते (ये, च) और जो (अर्वते) घोड़े के लिये (पचनम्) जिसमें पाक किया जाय उस काम को (सम्भरन्ति) अच्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते (उतो) और जो उत्तम यत्न करते हैं (तेषाम्) उनका (अभिगूर्तिः) सब प्रकार से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) व्याप्त और प्राप्त होवे। २९।

भावार्थः—जो का एक शिल्पीजन घोड़ा के बांधने आदि काम के काठों से विशेष काम बनाते हैं और जो वैद्य घोड़े आदि पशुओं की औषधि और उनकी सजावट की सामग्रियों को इकट्ठा करते हैं वे सदा उद्यम करते हुए हम लोगों को प्राप्त होवें। २९।

इससे अगले मंत्र में बताया है कि घोड़े को पालने का यथार्थ फल कब मिलता है जब घोड़े पर सवारी अच्छे प्रकार कर सके। घोड़े की पीठ रोग रहित हो —झगी न हो। पुट्ठे सुदृढ़ हों।

मन्त्रः—उप प्रागात्सुमन्मे धायि मन्म देवाना मोशा उप वीतपृष्ठः। अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ३० ॥

मन्त्रार्थः—जिसने (सुमतः) आपही (देवानां) विद्वानों का (वीतपृष्ठः) जिसका पिछला भाग व्याप्त वह उत्तम व्यवहार (अधायि) धारण किया वा जिससे इनके और (मे) मेरे (मन्म) विज्ञान को तथा (आशाः) दिशा दिशान्तरों को (उप-प्र, अगात्) प्राप्त हो वा जिस (एनम्) इस प्रत्यक्ष व्यवहार के (अनु) अनुकूल (देवानाम्) विद्वानों के बीच (पुष्टे) पुष्ट बलवान उनके निमित्त (ऋषयः) मन्त्रोंका अर्थ जानने वाले (विप्राः) धीर बुद्धि पुरुष (उप, मदान्ति) समीप होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं उस (सुबन्धुम्) सुन्दर २ भाईयों वाले जन को हम लोग (चक्रम) उत्पन्न करें। ३०।

भावार्थ—जो विद्वानों के समीप से उत्तम ज्ञानको पाके ऋषि होते हैं वे सबको विज्ञान देने से पुष्ट करते हैं। जो परस्पर एक दूसरे की उन्नति कर परिपूर्ण काम वाले होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं।

इस अगले मन्त्र में घोड़े के लिये काठी, तंग और घास आदि की किस प्रकार व्यवस्था हो, ऐसा बताया गया है।

मन्त्रः—यद् वाजिनो दाम सन्दान मर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य। यद्वाघास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु। यजु० २५। ३१।

मन्त्रार्थ—हे विद्वन! (वाजिनः) प्रशस्त वेग वाले (अस्य) इस (अर्वतः) बलवान् घोड़े का (यत्) जो (दाम) उदरबन्धन अर्थात् तंगी और (सन्दानम्) अगाड़ी पिछाड़ी पैर

आदि बांधने की रस्सी वा (या) जो (शीर्षण्या) शिर में होने वाली (रशना) मुंह में व्याप्त (रज्जुः) रस्सी मुहेरा आदि (यत्, वा) अथवा जो (अस्य) इस घोड़े के (आस्ये) मुख में (तृणम्) घास दूब आदि विशेष तृण (प्रभृतम्) उत्तमता से धरी हों (ता) वे (सर्वा) सब पदार्थ (ते) तेरे हों और उक्त समस्त वस्तु (घ) ही (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो पुरुष घोड़ों को अच्छी कर उनके सब अङ्गों के बन्धन सुन्दर २ तथा खाने पीने के श्रेष्ठ पदार्थ और उत्तम औषध करते हैं वे शत्रुओं को जीतना आदि काम सिद्ध कर सकते हैं ।। ३१ ।

घोड़े के लिये लगाम आदि वस्तुओं के बतलाने के उपरान्त अब अगले मन्त्र में यह बतलाया है कि घोड़ों के मक्खी कितनी हानिकारक होती है, और खरैरा कर करके धूल आदि किस प्रकार छुटानी चाहिये ?

मन्त्र—यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति । यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ यजु० ३२ ॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (मक्षिका) मक्खी (क्रविषः) चलते हुये (अश्वस्य) शीघ्र जाने वाले घोड़े का (आश) भोजन करती हैं अर्थात् कुछ मल रुधिर आदि खाती (वा) अथवा (यत्) जो (स्वरौ) स्वर (स्वधितौ) वज्र के समान

वर्तमान है (वा) (शमितुः) यज्ञ करने हारे के (हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो वसु (रिप्रम्) प्राप्त और (यत्) जो (नखेषु) नखों में प्राप्त (अस्ति) है (ता) वे (सर्वा) सब पदार्थ (ते) तुम्हारे हों तथा यह समस्त व्यवहार (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) होवे।

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसी घुड़शाल में घोड़े बांधने चाहियें जहां इनका रुधिर आदि माँछि आदि न पीवें। जैसे यज्ञ करने हारे के हाथ में लिपटे हुए हवि को धोने आदि से छुड़ाते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओ के शरीर में लिपटी धूली आदि को नित्य छुड़ावें।

जिस शक्ति को मक्खी हरण करलेती हैं वह शक्ति घोंड़ों से काम लेने वाले विद्वानों के काम में आनि चाहिये। यह मक्खी घोड़े के लिये वज्र के समान दुख दायी होती हैं। घोड़े के नख भी नालों से सुसज्जित हों, जिस प्रकार यज्ञ कर्ता के हाथों में लगी हुई सामग्री सब अग्नि देव के लिये ही है वैसे ही घोड़े की सारी शक्तियां घुड़ सवार के लिये हो।

अब इसके आगे सलौतरी के कर्तव्य बताये हैं कि— घोड़े को अपच न होने पावे। अपच घास आदि की लीद में विशेष दुर्गन्ध होती है, इसको सलौतरी जाने, फिर उस घोड़े को ऐसी दवादें जिससे घास आदि पचने लगे। घोड़े के पेट का आफ़रना और पेट में दर्द होना मारक सिद्ध हुआ है। अतः पेट का इलाज बराबर मसाले आदि से करते रहना चाहिये। इस विषय का अगला मंत्र है—

मन्त्रः—यदूवध्यमुदरस्या पवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति । सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेध थं श्रृतपाकं पचन्तु ॥ ३३ । यजु०

मन्त्रार्थ— हे मनुष्यो ! (उदरस्य) पेट के कोष्ठ से (यत्) जो (ऊवध्यम्) मलिन मल । अपवाति) निकलता और (यः) जो (आमस्य) न पचे कच्चे (क्रविषः) खाये हुए पदार्थ का (गन्धः) गन्ध (अस्ति) है (तत) उसको (शमितारः) शान्ति करने अर्थात् आराम देने वाले (सुकृता) अच्छा सिद्ध (कृण्वन्तु) करें (उत) और (मेधम्) पवित्र (श्रृतपाकम्) जिसका सुन्दर पाक बने उसको (पचन्तु) पकावें ।

भावार्थः—जो लोग यज्ञ करना चाहें वे दुर्गन्ध युक्त पदार्थ को छोड़कर सुगन्धि आदि युक्त सुन्दरता से बनाया पाक कर अग्नि में होम करें वे जगत्का हित चाहने वाले होते हैं ।

साथ २ यज्ञ विषय भी चल रहा है । पाठक विचारें ।

घोड़े को नित्य टहलाना उचित है । उस टहलने से पेट की अग्नि दीप्त होती है । अग्नि तीव्र होने से पशु पुष्ट होता है । घोड़े की हिनहिनाहट से उसका, बल सलौतरी, पहचान लेते हैं, घोड़े में बल केवल भूमि पर खड़े रहने से नहीं आता है न केवल घास खाते रहने से आता है । किन्तु, घोड़ा टहले, ठीक तौर से हिनहिनावे, पृथ्वी पर लोटे और खूब घास खावे इस विषय का अगला मन्त्र बताता है—

मन्त्रः—यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्याव-

धावति। मा तद्भूम्या माश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदु शद्भ्यो रातमस्तु ॥ ३४ ॥

मन्त्रार्थः—हे मनुष्य ! (निहितस्य) निश्चय से श्रम किये हुए (ते) तेरे (अग्नि) अन्तः करण रूप तेज से (पच्यमानात्) पकाये जाते (गात्रात्) अङ्ग से (यत्) जो शूलम् शीघ्रबोध का हेतु वचन (अभि, अवधावति) चारों ओर से निकलता है। (तत्) वह (भूम्याम) भूमि पर (मा, आ, श्रिषत्) नहीं आता है तथा (तत्) वह (तृणेषु) तृणों पर (मा) नहीं आता किंतु वह तो (उषद्भ्यः) सत्पुरुष (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (रातम्) दिया (अस्तु) होवे। ३४।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो ज्वर आदि से पीड़ित अङ्ग हों, उनको वैद्यजनों से नीरोग कराना चाहिये क्योंकि उन वैद्यजनों से जो औषध दिया जाता है वह रोगीजन के लिये हितकारी होता है। ३४।

घोड़े के लिए सुन्दर शब्द—"बाहवेरा" आदि और पुचकारना और 'जियो बेटा' शब्द फुफकारने पर कहना घोड़े की हिम्मत को बढ़ाते हैं। इससे घोड़ा तन्दुरुस्त और प्रसन्न रहता है।

शीघ्रबोध का हेतु वचन वह कहाते हैं जो पशुओं के लिए सांकेतिक शब्द हैं। जैसे हाथी के लिए—'बिरी, धत्त, मैल और चेः आदि। इसी प्रकार घोड़ों के लिए भी हैं। घोड़ों को फिराना ट्रेंड कराना भी आवश्यक है। अतः "विद्वानों को दिया हुआ" कहा।

सवारी और युद्धादि के लिए मोल लिये हुए घोड़े के क्या २ गुण होने चाहियें सो अगले मंत्र में वर्णन करते हैं—

मन्त्रः—ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं ये ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति । ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत् उतो तेषा मभिगूर्तिर्न इन्वतु ३५ ॥

भाषार्थः—(ये) जो (अर्वतः) घोड़े के (मांसभिक्षाम्) मांस के मांगने की (उपासते) उपासना करते (च) और (ये) जो घोड़ा को (ईम्) पाया हुआ मारनेयोग्य (आहुः) कहते हैं उनको (नि, हर) निरन्तर हरो, दूर पहुंचाओ (ये) जो वाजिनम् वेगवान् घोड़ों को (पक्वम्) पक्का सिखा कर (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (उतो) और (तेषाम्) उनका (सुरभिः) अच्छा सुगन्ध और (अभिमूर्तिः) सब ओर से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त हो—उनके अच्छे काम हमको प्राप्त हों (इति) इस प्रकार दूर पहुंचाओ ॥ ३५ ॥

भावार्थः—जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषों को रोकने चाहिएं जिससे मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो ॥ ३५ ॥

"पक्व" शब्द के अर्थ पाल का पक्का अथवा आयु में परिपक्व जवान हैं। जवान घोड़े के शरीर में विशेष प्रकार की गन्ध आने लगती है। इस ही लिये उस परिपक्व घोड़े के समान गन्ध वाली औषध को "अश्व गन्ध"—अश्व गन्ध कहते हैं। सब ओर से चुस्त—आठों गाँठ कुम्मैत देखते हैं। ऐसा घोड़ा हम

को प्राप्त हो। अर्थात् घोड़े को मोल ले। जो मांस भिक्षा=अर्थात् मांस के खाने वाले, रुधिर के पीने वाले काकादि पक्षी व मांसाहारी और मच्छर आदि हैं, उन सब को राजा या साईस दूर करते रहें।

मन्त्रः—यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि। ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥ यजु० २५। ३६ ॥

भाषार्थः—(या) जो (ऊष्मण्या) गरमियों में उत्तम (अपिधाना) ढाँपने और (आसेचनानि) सिचाने हारे (पात्राणि) पात्र वा (यत्) जो (मांसेपचन्याः) मांस जिस में पकाया जाय उस (उखायाः) बटलोई का (नीक्षणम्) निकृष्ट देखना वा (चरूणाम्) पात्रों के (अङ्काः) लक्षण किये हुये (सूनाः) प्रसिद्ध पदार्थ वा (यूष्णः) बढ़ाने वाले के (अश्वम्) घोड़े को (परिभूषयन्ति) सब ओर से सुशोभित करते हैं वे सब स्वीकार करने योग्य हैं।

भावार्थः—यदि कोई घोड़े आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियों का मांस खावे तो उनको यथापराध अवश्य दण्ड देना चाहिये।

उखा को मांस पचनी कसते हैं। उखा उदर को कहते हैं-- "उदरं वा *उखा—" शतपथ-७। ५। १। ३८ पृ० ४०५ ॥ इस

---

* उखाके अनेक अर्थ हैं—आलावा उखा—श० प० योनिर्वा प्रजापत्यं एतत् कर्म। श० प० ६। ५। २।

उखा—श० प० ८। ५ २२। इमे वै लोका उखा—श० प० ६। ५। २। १७।

ही में मांस पचता हैं—जिस समय घोड़े को गरमियों में पानी नहीं मिलता या अधिक गरमी सताती है तो दोनों अगली टांगों के बीच में जो भाग उठता है वह पिलपिला वा ढीला पड़ जाता है—बुरा भद्दा मालूम पड़ता है। इससे चतुर मनुष्य जान लेता है कि घोड़े को कष्ट है। जब घोड़े को यथेच्छ भोजन नहीं मिलता है तो भी यह उखा—उदर—मांस पचनी कुरूप होजाती है।

घोड़े को वस्त्र से ढका रखना चाहिये। जलसे सुम आदि धोते रहनो चाहिये। सुमोंमें नाल लगते रहें। ये सारी क्रियायें घाड़े को बढ़ाने वाली—पुष्ट करने वाला हैं।

जितने पशु हैं वे सब खाने के उपरान्त जुगाली करते वा शान्ति से बैठते हैं। परन्तु एक घोड़ा ही ऐसा पशु है जो प्रति क्षण खाता ही रहता है—इसके आगे घास पड़ी ही रहनी चाहिये। इसकी जठराग्नि बहुत ही तीव्र होती है। इस विषय को अगला मन्त्र बतलाता है।

मन्त्र—मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्य-भिविक्त जघ्रिः। इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥

भाषार्थ— हे मनुष्यो! जैसे (देवासः) विद्वान जन जिस (इष्टम्) चाहे हुये (वीतम्) प्राप्त (अभिगूर्त्तम्) चारों ओर से जिस में उद्यम किया गया (वषट् कृतम्) ऐसे क्रिया से सिद्ध हुए (अश्वम्) वेगवान् घोड़े को (प्रति गृभ्णन्ति) प्रतीति

से ग्रहण करते उसको तुम (अभि) सब ओर से (विक्त) जानो (त्वा) उसको (धूमगन्धिः) धुएं में गन्ध जिसका वह (अग्निः) अग्नि (मा) मत (ध्वनयीत) शब्द करे वा (तम्) उसको (जघ्रिः) जिससे कि वस्तुको सूंघते हैं वह (भ्राजन्ती) चमकती हुई (उखा) वटलोई (मा) मत हिंसवावे ॥ ३७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् मांसाहारियों को निवृत्तकर घोड़ा आदि पशुओं की वृद्धि और रक्षा करते हैं वैसे तुम भी करो और अग्नि आदि के विघ्नों से अलग रक्खो।

घोड़ा—चलाया फिराया—सधाया हुआ होना चाहिये। साधारण चाल भी जानता हो, और युद्ध के समय की विशेष गतियों को भी जाने हुए हो। ऐसा घोड़ा बहुत काम का होता है। घोड़े के समीप धुएं वाली अग्नि धुआं देती रहे—लपट और शब्द के साथ न जले किन्तु धुआं गन्ध देता रहे जिससे घोड़े के अग्रभाग—उखा को मच्छर न काटें। उखा—उदर चमकता हुआ—चिकचिकाता हुआ तैयार रहना चाहिये।

मन्त्रः—निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः। यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—हे विद्वान ! जो (ते) तेरे (अर्वतः) घोड़े का (निक्रमणम्) निकलना (निषदनम्) बैठना (विवर्त्तनम्) विशेष कर वर्त्ताव (च) और (यत्) जो (पड्वीशम्) पिछाड़ी (यत् च) और जो यह (पपौ) पीता (यत् च) और

जो (घासिम्) घास (जघास) खाता (ता) वे (सर्वा) सब काम युक्ति के साथ हों और सब (देवेषु) दिव्य उत्तम गुण वालों में (अपि) भी (अस्तु) होवें ॥ ३८ ॥

इस ३८ वें मन्त्र में घोड़े के विषय में इतनी बातें जाने—निकलना बैठना—घोड़ा हठी तो नहीं है, जो निकलते बैठते हठ करता है वह घोड़ा अत्यन्त निकम्मा होता है। और भी बर्त्ताव—काटना आदि तो नहीं है, यह जाने। पिछाड़ी पुरतंग तो नहीं फेंकता है, यह भी जाने। पानी पीना और घास दाना खाने में तो इसके दोष नहीं हैं, यह जाने।

मन्त्रः—यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै। संदानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो! आप (अस्मै) इस (अश्वाय) घोड़े के लिये (यत्) जो (वासः) वस्त्र (अधीवासम्) चार जामा (सन्दानम्) मुहेरा आदि और (या) जिन (हिरण्यानि) सुवर्ण के बनाये हुए आभूषणों को (उपस्तृणन्ति) ढपाते जिस (पड्वीशम्) पैरों से प्रवेश करते और (अर्वन्तम् जाते हुए घोड़े को (आयामयन्ति) अच्छे प्रकार नियम में र हैं वे सब पदार्थ और काम (देवेषु) विद्वानों में (प्रिया) देने वाले हों।

भावार्थः—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं की यथावत् करके उपकार लेवें तो बहुत कार्यों की सिद्धिसे उपकार युक्त इस उपर्युक्त मन्त्रमें घोड़े की मूल, मुहेरापिछाड़ी और आ

की चर्चा की है। चाल पर भी ध्यान दिलाया है।

मन्त्रः—यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्यां वा कशया वा तुतोद। स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ ४० ॥

मन्त्रार्थः—हे विद्वान् ! (ते) तेरे (सादे) बैठने के स्थान में (महसा) बड़प्पन से (वा) अथवा (शूकृतस्य) जल्दी सिखाये हुए घोड़े के (कशया) कोड़े से (यत्) जिस कारण (पार्ष्ण्यां) पसली आदि स्थान (वा) वा कक्षाओं में जो उत्तम ताड़ना आदि काम वा (तुतोद) साधारण ताड़ना देना (ता) उन सब को (अध्वरेषु) यज्ञों में (हविषः) होम ने योग्य पदार्थ सम्बन्धी (स्रुचेव) जैसे स्रुचा प्रेरणा देती वैसे करते हो (ता) वे (सर्वा) सब काम (ते) तेरे लिये (ब्रह्मणा) धन से (सूदयामि) प्राप्त करता हूं। ४०।

भावार्थः—जैसे यज्ञ के साधनों से होमने योग्य पदार्थों को प्रेरणा देते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं को अच्छी सिखावट की रीति से प्रेरणा देवें।

उपर्युक्त मन्त्रमें घोड़े की चुस्ती पर ध्यान दिलाया है। घोड़ा सब से बढ़िया वह है जो पीठ पर बैठते ही "शि" करते ही तेजी पकड़ जाय। दूसरे नम्बर का वह है जिसकी पसलियाँ जांघों से लगाई जायें तब वह आगे को बढ़े, तीसरे नम्बर का वह है जो कोड़े से चले। जिस प्रकार यज्ञ में होता आदि स्रुच् से काम लेते हैं वैसे ही घोड़े से लें।

पिछा

मन्त्रः—चतुस्त्रिंश द्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिस्समेति। अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोतु परुष्परुरनु घुष्या विशस्त ॥ ४१ ॥

मन्त्रार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे घुड़चढ़ा चाबुकी जन (देव बन्धोः) जिसके विद्वान् बन्धुके समान उस (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (चतुस्त्रिंशत्) चौंतीस (वङ्क्रीः) टेढ़ी बेढ़ी चालों को (सम्, एति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (अच्छिद्रा) छेदभेद रहित (गात्रा) अङ्ग और (वयुना) उत्तम् ज्ञानों को (कृणोतु) करै वैसे उसके (परुष्परुः) प्रत्येक मर्मस्थान को (अनुघुष्य) अनुकूलता से बजाकर (स्वधितिः) वज्रके समान वर्तमान तुमलोग रोगों का (वि, शस्त) विशेषता से छिन्न भिन्न करो ॥ ४१ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे घोड़े को सिखाने वाला चतुर जन चौंतीस चित्र विचित्र गतियों को घोड़े को पहुंचाता और वैद्य जन प्राणियों को नीरोग करता है वैसे ही और पशुओं की रक्षा से उन्नति करना चाहिये।

उपर्युक्त मन्त्रमें चौंतीस चालें घोड़े की बताई हैं। चाबुक सवार को चाहिये कि इन सब चालों को सिखावें। वे चालें ऐसी हों जिनमें कोई कसर शेष न रहें—समय पर धोखा न दो। घोड़े के मर्म स्थान की रक्षा करता रहे। उदाहरणार्थ बतलाया कि उसके रोगों को जड़ से खोते रहो जैसे वज्रसे कोई चीज छिन्न भिन्न कर दी जाती है।

मन्त्रः—एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथऽऋतुः । या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ ४२ ॥

मन्त्रार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (एकः) अकेला (ऋतुः) बसन्त आदि ऋतु (त्वष्टुः) शोभायमान (अश्वस्य) घोड़ेका (विशस्ता) विशेष करके रूपादि का भेद करने वाला होता है वा जो (द्वा) दो (यन्तारा) नियम करने वाले (भवतः) होते हैं तथा वैसे (या) जिन (ते) तुम्हारे (गात्राणाम्) अङ्गो का (पिण्डानाम्) पिण्डोंके (ऋतुथा) ऋतु सम्बन्धी पदार्थों को मैं (कृणोमि) करता हूं । (ताता) उन २ को (अग्नौ) आगमें (प्र, जुहोमि) होमता हूं । ४२ ॥

भावार्थ—जैसे घोड़ों के सिखाने वाले ऋतु २ के प्रति घोड़े को अच्छा सिखलाते हैं वैसे गुरु जन विद्यार्थियों को क्रिया करना सिखलाते हैं या जैसे अग्नि में पिण्डों का होम कर पवन की शुद्धि करते हैं वैसे विद्या रूपी अग्नि में अविद्या रूप भ्रमों को होमके आत्माओं की शुद्धि करते रहें ।

४५ । ४४ की व्याख्या पृष्ठ १३७ पर आचुकी है ।

मन्त्रः—सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंस्स्व सः पुत्रां २ ॥ उत विश्वापुषꣳ रयिम् । अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनताꣳ हविष्मान् ॥ ४५ ॥

मन्त्रार्थ—जो (नः) हमारा (वाजी) घोड़ा (सुगव्यम्) सुन्दर गौओं के लिये सुखस्वरूप (स्वश्व्यम्) अच्छे घोड़ा में

प्रसिद्ध हुये काम को करता है वा जो विद्वान (पुंस) पुरुषपन से युक्त पुरुषार्थ (पुत्रान्) पुत्रों (उत्) और (विश्वापुषम्) समग्रपुष्टि करने वाले (रयिम्) धनको प्राप्त होता वा जैसे (अदितिः) कारण रूप से अविनाशी भूमि (नः) हमारे लिये (अनागास्त्वम्) अपराध रहित होने को करती है वैसे आप (कृणोतु) करें वा जैसे (पविष्मान्) प्रशंसित सुखदेने जिसमें हैं वह (अश्वः) व्याप्तिशील प्राणी (नः) हमलोगों के (क्षत्रम्) राज्यको (वनताम्) सेवे वैसे आप सेवा किया करो ॥ ४५ ॥

भावार्थ—जो जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् घोड़े के समान अमोघ वीर्य पुरुषार्थ से धन पाये हुये न्याय से राज्य उन्नति देवें वे सुखी होवें ॥ ४५ ॥

इतना सीधा होकि गोसमूह की शोभा हो—लड़ै नहीं। घोड़े को ब्रह्मचारी कर रखे। आपस में भी लतयाओ न करे। सीधा हो, पुष्टहो, ऐसा ही घोड़ा रखना वा बनाना चाहिये।

प्रश्न—

यजुर्वेद अध्याय १३ मन्त्र ५१वें में लिखा है कि—हे राजन्! तू जो बकरा उत्पन्न होत्ता है" इस का क्या आशय है!

'तू' से सम्बन्ध रखने वाली क्रिया मन्त्रार्थ में 'वृद्धि को प्राप्त हो' है। वेद में "अजोह्यग्नेरजनिष्ट०" ऐसा पाठ है। यहां पर 'अज' जीवात्मा के अर्थ में भी है। संस्कृत शब्द 'अज' के अथ बकरे के भी हैं। भाषा के करने वाले ने बकरे के अर्थ कर दिये हैं।

आशय यह है कि जीवात्मा जन्म लेकर अपने उत्पादक

परमेश्वर को देखता है उसकी महिमा को जानता है।

प्रश्न—"यजु० अ० १८ मन्त्र २६ में "मेरा तीन प्रकार का भेड़ों वाला" ईश्वर को लिख दिया है।

उत्तर—वेदार्थ जानने के लिये शुद्ध बुद्धि और वैदिक शैली को जान लेने की आवश्यकता है। 'मे', 'मम', 'अहम्' ये शब्द वेद में सदैव ईश्वर ही के लिये नहीं आते हैं किन्तु प्रकरणानुकूल अन्यों के लिये भी आते हैं। "गृभ्णामिते सौभगत्वाय०" मैं तेरे हाथ को सौभाग्य के लिये पकड़ता हूं। यहां पर 'मैं' वर के लिये हैं न कि ईश्वर के लिये। इस ही प्रकार कहीं 'मैं' आदि राजा के लिये कहीं, गुरु, कहीं स्त्री, कहीं शिष्य, कहीं प्रजा और कहीं ईश्वर से भिन्न अन्यों के लिये आता है। इस ही नियम से यहाँ पर 'मैं' सर्वनाम पशुपालक के लिये हैं न कि ईश्वर के लिये आक्षेप कर्त्ता वेदार्थ की शैली से नितान्त अनभिज्ञ हैं।

इस मन्त्र में ३ प्रकार की और ५ प्रकार की भेड़ें बताई गई हैं। तीन प्रकार की भेड़ें ३ अवस्था भेद से कही गई हैं। पांच प्रकार की भेड़ें पांच रंगतों वा नसल के भेद से बताई गई हैं। अवस्था ३ हैं—बाल, युवा और वृद्ध। तीन बछड़ों वाली गाय अच्छी दुधार होती है—तीसरे ब्याँत में गाय का अधिक और अच्छा दूध देना प्रसिद्ध है। इन सब के दूध और घृत की रक्षा होनी चाहिये।

चौथे वर्ष का बैल प्रसिद्ध है—उस समय के उपरान्त वह बछड़े से बैल संज्ञा को प्राप्त करता है। यज्ञ में ३, ५ प्रकार की

भेड़ों का दूध घी और तीसरे वर्ष की गौ का दुग्ध और घी और चौथे वर्ष बैल दान के योग्य होता है यहां पर यज्ञ का विषय है।

यजु० १८। २७ वें मन्त्र में भी 'मे' और आगे भी यह सर्वनाम यजमान के लिये आया है। स्मरण रहे कि, इस समय, ये सारी बातें निरर्थक सी प्रतीत होती हैं। किन्तु सृष्टि के आदि में, जबकि मनुष्य न पशु पालन करना जानता था, न अन्न, उत्पन्न करना जानता था, न अन्नों के नाम ही जानता था, न किस २ पशु में क्या २ गुण हैं यही जानता था और न अन्न बोना काटना जानता था। उस समय के लिये यह शिक्षा कितनी आवश्यकीय थी ? इस समय जिन बड़े २ नगरों में प्राकृतिक उन्नति हो रही हैं वहां पर घड़ी, साइकिल, मोटर सीने की मशीन रेल और तार की चर्चा कोई आश्चर्य जनक नहीं। परन्तु जिन ग्रामों में वा ऐसे स्थानों पर जहां अभी तक कुछ उन्नति नहीं हुई है वहां के लिये इन की चर्चा और प्रचार आवश्यकीय हैं। सृष्टि की आदि में तो मनुष्य समाज नितान्त ही अज्ञानी था। यदि ये सारे सांसारिक व्यवहार वेद भगवान् न बताते तो वे कैसे सीखते ?

जिस समय यहाँ पर रेल प्रथमवार ही चली थी, उस समय कितने कौतूहल का कारण था ? यदि इस समय उसकी चर्चा की जाय तो वह नीरस सी ही होगी। यही अवस्था सृष्टि को आदि की है। उस समय मनुष्य नितान्त अज्ञानी था। वेदों के ज्ञाता थोड़े ही थे, जैसे इस समय भी राजनियम=कानून के जान

ने वाले विरले ही हैं, बस ऐसे समय प्रत्येक छोटी सी छोटी बात के प्रचार और सिखाने की आवश्यकता थी। जिस प्रकार एक अक्षारम्भ करने वाले विद्यार्थी के लिये प्रत्येक छोटे से छोटा विषय दुरूह और कठिन प्रतीत होता है, परन्तु वे ही विषय एक 'एम०ए०' के विद्यार्थी के लिये कितने तुच्छ होते हैं ? यही अवस्था सृष्टि के आदि के मनुष्यो की थी—वे अक्षर आरम्भ करने वाले विद्यार्थी के समान थे—उनको प्रत्येक वस्तु को, गुणों के अनुसार, वेद भगवान् रूप शिक्षक को सिखाने की आवश्यकता थी। इस समुन्नत समय में नास्तिक लोग पूंछते हैं कि इससे क्या शिक्षा, वेद नहीं ? हमारा वही उत्तर है जो एक अक्षारम्भ करने वाले विद्यार्थी के विषय में दिया जा सकता है। बस इस थोड़े से कथन से वेदों की आवश्यकता का अनुभव कर लेना चाहिये।

प्रश्न—

यजुः २८। ३३ में "वन्ध्या तथा गर्भ गिराने हारी गौ और अभीष्ट वस्तु को धारण करता हुआ यज्ञ करे" ऐसा लिख दिया है ?

उत्तर—वन्ध्या तथा गर्भ गिराने हारी गौ की रक्षा करना ही तो लिखा है। "धारण करता हुआ" ये शब्द क्या मारने के अर्थ में है ? हां वेद में कहीं ऐसा लिखा हो कि "इन वन्ध्या और गर्भ गिराने वाली गायों को मारे या यज्ञ में डाले" तो आक्षेप की बात थी।

प्रश्न—

यजु० २८। २३ में "होम के लिये पाक विशेष को पकाता

और रोगों को नष्ट करने हारी बकरी को बांधता हुआ यज्ञ करने में कुशल, तेजस्वी विद्वान् को स्वीकार करें" लिखा है ?

उत्तर—हां ठीक लिखा है। बकरी का दूध रोगनाशक है, यह पहले बता दिया गया है। यज्ञार्थ पाकादि पकाये जाते हैं।

प्रश्न—यजु० अ० २४ मन्त्र ३० में "सिंह के लिये हिरण और बालकों को खाने के लिए शिशुमार को नियुक्त कर" लिखा है ?

उत्तर—दयालु परमेश्वर ने पशुओं का ज्ञान कराया है कि कौने २ सा पशु किस २ का शत्रु है। किस २ पशु का कौन २ भोजन है ?

*शिशुमार=सूसमार एक समुद्री जन्तु है जो मछलियों के बालकों को खाता है ऐसे हिंसक जन्तुओं से सदैव मनुष्य अपनी रक्षा करता रहे। आक्षेप कर्त्ता जी "शिशुमार" जन्तु का नाम नहीं आते ही आपे से बाहर हो गये और लगे वेद में हिंसा समझने ये सब भोग योनियां हैं। इनको पाप पुण्य कुछ नहीं लगता।

"न्याया धीश के लिये काला हिरण" कहिये इससे आप यही समझे कि न्याया धीश के लिये खाने के लिये काला हिरण ? धन्य है। खूब समझे !! समझने वाला हो आप जैसा !!! क्यों न हो ? जड़ पूजा का प्रभाव तो भी तो कुछ होना

*यह जन्तु अपने शिशु=बच्चों को भी मार कर खा लेते हैं।

चाहिये ? सुनिये—यह काला हिरण न्यायाधीश की शिक्षा दे रहा है कि—जिस प्रकार मैं अपने साथ रहने वाले हिरन, हिरनी और उनके बच्चों की चौकसी करता हूं वैसे ही तुम भी करो। जंगल में जब हिरनों का झुंड आराम करने को बैठता है वहाँ वह झुंड चरता है तो उस झुंड में एक काला हिरन, जो सब का सरदार होता है' खड़े होकर अपने झुंड की चौकसी करता रहता है—प्रत्येक आपत्ति का सङ्केत करता है। अपने बड़प्पन का न्यायानुकूल परिचय देता है।

ऐसा ही न्यायाधीश को उचित है कि वह भी अपने बड़प्पन का परिचय देता हुआ प्रजा की रक्षा करे। काला मृग जहां जहां पर चरता है वह यज्ञीय देश होता है। काला मृग बहुत आयु वाला होता है। जहां पर हिंसक रहते होंगे, वहां पर हिरन काले नहीं पड़ने पायेंगे, क्यों कि वे हिंसक उनको मार कर खा लेंगे। काला हिरन यज्ञ के योग्य सुन्दर नीरोग औषधियां खाता है। अतः यह सिद्ध करता है कि जहां पर मैं चरता हूं वहाँ पर यज्ञीय पदार्थ विद्यमान हैं। निष्कर्ष यह निकला कि न्यायाधीश को काले हिरन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—सात्विक भोजन और प्रजा की रक्षा करे, यज्ञ में सहायक हो और उत्कोच=रिश्वत से बचा रहे। यही वेद मन्त्र ने शिक्षा दी है।

इस मन्त्र में मनुष्यों के राजा के लिये मर्कट—बन्दर लिखा है। तो क्या बन्दर भी खाये जाते हैं ? नहीं। किन्तु यह बताता है कि—बन्दर सदैव अपने पुरुषार्थ से अपना भोजन

खाता है—दीनता नहीं स्वीकार करता। ऐसे ही राजा भी पुरुषार्थी बने—दीन न रहे। इस मन्त्र में जो जिसका भोजन है वह भी बताया गया है। लाल मृग इतना शीघ्र गामी नहीं जितना काला मृग है। अतः उसको हरीसिंह सरलता से पकड़ लेता है। शिशुमार समुद्र के लिये है, हाथी पर्वतों के लिये हैं—वहीं पर रहें *। नीचे रहकर प्रजा को सतायेंगे। प्रजापति=राजा ऐसा प्रयत्न करे जिससे यथा स्थान यह जीव रहें, जिससे प्रजा सुखी रहे। वेद के गूढ़ाशय को समझना पक्षपातियों का काम नहीं है।

प्रश्न—यजुर्वेद १३। ८ में वज् से सांपों को मारना लिखा है?

उत्तर—हां लिखा है और ठीक लिखा है। हिंसक पशु तो क्या मनुष्य तक को राजा प्राण दण्ड दे, यही वैदिक धर्म है। हम सर्प पूजक नहीं हैं।

प्रश्न—यजु० ३०। १० में 'अग्नि के लिये मोटे पदार्थ को पृथिवी के लिए बिना पगों के कढ़रिये चलने वाले सांप आदि को उत्पन्न कीजिये" लिखा है?

उत्तर—ठीक तो कहा है। अग्नि मोटे-स्थूल पदार्थ को सूक्ष्म कर देती है। बिना पांव वाले सूर्य पृथिवी में रहते हैं। जाड़ों में सर्प पृथिवी के भीतर रहते हैं—सर्पों का भय नहीं रहता। गर्मी वा बरसात में बाहर आ जाते हैं, कितना भय

* पहाड़ पर ठंडक रहती है। चारा भी खूब मिलता है। पानी की कमी नहीं रहती।

रहता है ? यही बताया गया है। स्मरण रहे कि "नियुक्त कर" से यह आशय है कि ये जीव इस ही स्थान पर रहने के योग्य हैं। इनसे बाहर आयेंगे तो उपद्रव करेंगे।

"उत्पन्न कीजिये" का स्पष्ट यह आशय है कि—सर्प पृथिवी में ही रहें। बाहर निकलेंगे तो मनुष्यों को पीड़ा देंगे। परन्तु सर्प पूजकों ने दूध पिला २ कर घर में बुलाया जिसका दुःख भुगत रहे हैं। वेद में "प्रार्थना" शब्द नहीं हैं। यह आक्षेप कर्त्ता जी की अपनी कल्पना है। यजुर्वेद १३।७ में जो सांपों और डाकुओं को मारना लिखा है, उससे और ३०।१० में कोई विरोध नहीं है। एक में सर्प के गुण बताये दूसरे में, हिंसक होने से, इनको मारना बताया।

स्मरण रहे कि बिना पैरों के जीव, जो कद्दिर कर चलते हैं, सब पृथिवी में ही रहते हैं। जल, वायु और आकाश में नहीं रहते। इस विद्या को वेद ने बतलाया है। इनका पृथिवी के भीतर रहना ही संसार के लिये शान्ति का कारण है। बाहर आने पर दुःखदायी होते हैं।

प्रश्न—यजु० ३२। ६ में "पृथिवी च दृढा"=पृथिवी स्थिर है ऐसा लिखा है। अतः वेद में भी पृथिवी का घूमना नहीं लिखा है।

उत्तर—परमात्मा इन आक्षेप कर्त्ताओं को बुद्धि कभी देगा या नहीं ? इनको साधारण संस्कृत के शब्द के भी समझने की कभी योग्यता आवेगी या नहीं ? ये कभी पक्षपात की ऐनक अपनी आंखों से उतारेंगे भी या नहीं ? यह सारा दोष इनकी

जड़ पूजा का है "दृढ़ा" के अर्थ कहां लिखे हैं कि—जो चले नहीं उसको दृढ़ कहते हैं किन्तु दृढ़ के अर्थ ठोस के हैं पृथिवी ही एक दृढ़=ठोस Solid पदार्थ हैं। शेष ४ तत्वोंमें से एक जल तरल, अग्नि उष्ण, और गति करने और देनेवाला, वायु गैसियस और आकाश परम सूक्ष्म है। इन में केवल यह पृथिवी ही दृढ़ा=ठोस Solid है। स्वभाव से तो ये उपरोक्त तत्व वैसे ही हैं जैसे हम ने उपर बताये हैं, परन्तु कोई २ तत्व दूसरे तत्व के सम्मिश्रण से परिवर्त्तित भी हो सकता है।

प्रश्न—ऋ० अष्टक २ अध्याय १ वर्ग ५ में "सूर्यो हि-प्रतिदिनं एको न षष्ट्यधि पञ्च सहस्त्रयो जनामि मेरुं प्रादक्षि-ण्येन परि भ्राम्यतीत्यादि"=अर्थात् प्रतिदिन ५०५६ योजन मेरुकी प्रदक्षिणा करके भ्रमण करता है ऐसा लिखा है?

उत्तर—इस पतेपर वेद में कहीं ऐसा मन्त्र नहीं है। न यह ऋग्वेद की भाषा ही है। यह वेदों पर झूटा कलङ्क लगाया है।

प्रश्न—ऋ० अष्टक २ अध्याय ५ वर्ग २ में स्पष्ट है कि—"अचरंती अविचले द्वे एवैते द्यावा पृथिव्यौ।" इत्यादि।

उत्तर—ऋग्वेद भर में उपर्युक्त पाठ नहीं है। हिम्मत हो तो दिखाओ।

प्रश्न—युजुर्वेद३२। ७ में "यन्क्रन्दसी अवसास्त भाने०" में सूर्य को चलने वाला बताया है?

उत्तर—सूर्य अपनी ही कीली पर घूमता है—किसी की परिक्रमा नहीं करता, ऐसा वेदानकूल ज्योतिष का सिद्धान्त है।

सूर्यको वेदों में जहां कहीं चलने वाला बताया है वहां पर अपनी ही धुरी पर घूमना समझना चाहिये। जैनियों अथवा पौराणिकों जैसा नहीं।

प्रश्न—यजु० ७। २५ में पृथिवीको 'ध्रुव' लिखा है?

उत्तर—दृढ़ और ध्रुव के एक ही अर्थ हैं। पृथिवी, तत्वोंमें, दृढ़ है—तरल नहीं, विरल नहीं। परमात्माऔर आकाश इस लिये ध्रुव हैं कि वे नित्य पदार्थ हैं। वे न ठोस, न तरल, न विरल।

प्रश्न—यजु० १४। १ में "ध्रुवक्षितिः" दृढ़=ध्रुव पृथिवी लिखा है।

उत्तर—'ध्रुवक्षितिः' के अर्थ 'निश्चलवास करने वाली' स्वामीजी ने किये हैं। यही अर्थ महीधर करते हैं—"ध्रुवक्षितिः ध्रुवास्थिरा क्षिति र्निवासो यस्याः सा"=ध्रुव है निवास जिसका वह। अर्थात् वायु जल और अग्नि के समान बहने वाली नहीं।

प्रश्न—यजु० २६। ५५, ५६ में पृथिवी को असंख्य योजन वाली बतलाया है।

उत्तर—जिसको भाषा समझने की भी योग्यता नहीं वही ऐसा अर्थ कर सकता है। मन्त्रमें आये हुये—"महति अन्तरिक्ष में" होते हैं। भाषामें भी (अस्मिन्) इस (महती) व्यापकता आदि बड़े बड़े गुणों से युक्त (अर्णवे) बहुत जलों वाले समुद्र के समान अगाध (अन्तरिक्षे) सबके बीच अविनाशी आकाश में (भवाः) वर्त्तमान जीव और वायु हैं (तेषाम्) उनको उपयोग में लाके (सहस्रयोजने) असंख्यात चारकोश के योजनों

वाले देशमें (धन्वानि) धनुष वा अन्नादि धान्यों को (तन्मसि) अधिकता के साथ विस्तार करें वैसे तुम भी करो। ५५।

महान् अन्तरिक्ष को पृथिवी बताकर आक्षेप करना कहां तक न्याय संगत है ? धनुष से बाण अन्तरिक्ष में फेंका जाता है। धान भी ऊपर को अन्तरिक्ष की ओर को उठते हैं। योजन चार कोस का होता है। अतः यहां पर योजन का परिमाण बताया है। "ततः समुद्रोअर्णवः" से सिद्ध है कि अन्तरिक्ष में जल के समुद्र भररहे हैं। पृथिवी पर भी अगाध समुद्र भरे हैं। ये उदारहणार्थ है जिसको भाषा तक समझने की योग्यता नहीं वेभी वेद भाष्य पर आक्षेप करते हैं ! किमाश्चर्यमतः परम् ?

प्रश्न—यजु० ३। ६ में आयेहुये "गौः" शब्द के अर्थ पृथिवी किये हैं। यह स्वामीजी की भूल है ?

उत्तर—जब आपको वेदार्थ जानने का ज्ञान=शऊर नहीं तो वेदों पर आक्षेप करने के लिये क्यों मुंह खोलते हो ? सुनिये-निघंटु में 'गौः' शब्द सबसे पहले पृथिवी का नाम आया है। पृथिवी के २१ नाम हैं, उनमें सबसे पहला 'गौः' है। महीधर कहते हैं कि—"आयंगौरित्यादिनां तृचानामृचां सार्प राज्ञीति नाम धेयम्"—आयं गौः० आदि तीन ऋचाओं का नाम सर्प राज्ञि ऋचा है। अर्थात् ये सर्व राज्ञी को बताती है वा उससे सम्बन्ध रखती हैं। अब देखना यह है कि सर्पराज्ञी किसको कहते हैं ? सुनिये—

सर्पराज्ञी=पृथिवी। ऐतरेय ब्राह्मण २४। ४

"आयंगो:" सापिराज्ञात्म देवतं सौर्यं वेति। इस मंत्रके दो देवता हैं—पृथिवी और सूर्य। सर्व राज्ञा पृथिवी को कहते हैं।*

वेदों में ईश्वर के अन्य पुरुष और सम्बोधन से ग्रहण किये जाने का सद्भाव—

यजुर्वेद १।६ कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति। तस्मै त्वा युनक्ति कर्मणे वां वेषाय वाम्। १।६।

इस मन्त्र के भाष्य में स्वामी जी लिखते हैं कि "(सः) सो जगदीश्वर (त्वा) तुमको विद्या आदिक शुभगुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान वा विद्यार्थी होनेके लिये (युनक्ति) आज्ञा देता है।

उत्तर—इस मन्त्र का भावार्थ में तात्पर्य श्री स्वामी जी ने भले प्रकार खोल दिया है—"इस मन्त्रमें प्रश्न और उत्तर से ईश्वर जीवों के लिये, उपदेश करता है कि जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्मों में कौन प्रवृत्त करता है? उसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वर"।

वेदों में सारी विद्यायें विद्यमान हैं। प्रश्नोत्तर करना भी एक विद्या है। सो परमात्मा ने बताया कि इस प्रकार प्रश्नोत्तर किया करो; साथ २ आस्तिकता के भावभी भर दिये।। "सः" अर्थ स्वामी जी ने स्वयंही—"सो जगदीश्वर" किया है।

---

* इयं वै पृथिवी सापराज्ञी। शतपथ २।१।४।२६।३० पृ० ८१ गौर्हि सर्वतो राज्ञायं पृश्निरिति॥ कौषीतिकी ब्राह्मण २७।४

इसही प्रकार सब स्थलों पर जहां प्रश्नोत्तर हैं वहां, और "हे जगदीश्वर" ऐसा आया है वहां सर्वत्र ऐसा जान लेना चाहिये कि जैसे गुरु शिष्य को सिखाता है कि—"वद गुरुवे नमः" कहो गुरुजी को नमस्कार ! इस प्रकार गुरुजी अपने शिष्य को प्रणाम करना सिखाते हैं। गुरुका अभिप्राय यह होता है कि मैंने जो उपर्युक्त एवं शुद्ध वाक्य जो अभिवादन के लिये बनाया है, उसका ही अनुकरण शिष्य करे। शिष्य अपनी बुद्धि से न जाने कैसे अण्डबण्ड वाक्य अभिवादन के लिये गढ़ले ? जैसे इस समय नास्तिक मण्डल और वेद विरोधी अथवा वेद धर्म से अनभिज्ञ लोग जय जिनेन्द्र को, जय रामजी की, जय गोपाल जी की, राम राम, जुहार, सलागन, सलाम, आदाबर्ज़, नमोनारायण कह कर अभिवादन करते हैं। गुरुजी के स्वमुखसे 'गुरुवेनमः' कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि गुरुजी किसी दूसरे गुरुको नमस्कार कर रहा है प्रत्युत शिष्य को सिखा रहा है कि ऐसा बोल। ठीक इसही प्रकार परमात्मा भी जो जगत् का परम गुरु है—"स पूर्वेषामपि गुरुः का ले नानवच्छेदात्" वह परम गुरु परमेश्वर अपने शिष्य रूप मनुष्यों को प्रार्थना करना भी सिखाता है। क्योंकि अज्ञानी मनुष्य न जाने किस २ प्रकार की अण्डबण्ड प्रार्थना करने लगे—स्वार्थवश ऐसी अनहोनी और असम्भव वस्तुओं को मांगने लगे जो त्रिकाल में भी प्राप्त नहीं हो सकतीं। जैसे कहने लगे कि—परमेश्वर आप मेरे पुत्र बन जायें, आप मेरे नौकर बन जायें, थोड़े काल के लिये इस जगत् के कर्तृत्व, पालन और संहार से पृथक हो जाओ और मुझको ये सारे काम करने दो,

अथवा तुम सदैव के लिये मरजाओ और इसको इसका चार्ज दे जाओ, संपूर्ण संसार की स्त्रियां मेरी स्त्री बनजायें। मैं इस शरीर से ही अमर रहूं, मैं अपने शरीर में पर लगालूं और सारे ब्रह्माण्ड के तारा गणों में उड़कर सैर करता फिरूं। अथवा मैं एक ऐसा सुरमा तैयार करलूं जिसको आंखों में लगाने पर मैं सब को देखलूं और मुझे कोई न देख सके, इत्यादि। ईश्वर अपनी सर्वज्ञता से मनुष्यों के मनोभाव और मनोमोदकों को जानता है। इस लिये उस परम कारुणिक ब्रह्म ने वेद भगवान में प्रार्थनायें रखदीं कि जिससे प्राणी का समय और शक्ति व्यर्थ न जाये। यदि कोई मनुष्य करोड़ों जन्म भी यह यत्न करे कि मैं स्वयंही ईश्वर बन जाऊं तो व्यर्थ प्रयत्न होगा। क्योंकि ऐसा होना असम्भव है। परमात्मा ने ऐसी शिक्षा देदी कि—'यत्र देवा अमृत माना स्तितीये धामनन्नध्येरयन्त'

अर्थात्—मुक्त होकर एक विद्वान पुरुष सुख दुख से रहित होकर आनन्द युक्त स्वतन्त्रता से सब स्थानों पर विचर सकता है।

परमात्मा ने जो बात जिसको कहनी है उसकी अनुहारिता—नक़ल स्वयं तैयार की है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति न्यायालय के नियमों को नहीं जानता। न्यायाधीश से किस प्रकार सम्बोधन करना चाहिये आदि आदि बातोंकी जानकारी उसको नहीं होती। इस लिये न्यायालय के नियमों को जानने वाला प्राड्विवाक—वकील—न्यायालय के उपयुक्त शब्दों द्वारा निवेदन पत्रादि तैयार करता है। वह होता है वादि प्रतिवादि

की ओर से, परन्तु तैयार किया हुआ है एक उस विषय के ज्ञानी वकील अथवा आरायज़नवीस का। मनकि फलां, वल्दफ़लां इत्यादि लिख रहा है वकील वा आराज़नवीस, परन्तु इसका लाभ वादि प्रतिवादि को पहुंच रहा है। वकील और आरायज़नवीस निर्लेप हैं। इसही प्रकार परमेश्वर ने भी हम सब के लिये मसव्विदे तैयार करदिये हैं —हम उनकी नक़ल करते हैं। हानि लाभ उसका हमको है न कि ईश्वर को।

वेदों में पुनरुक्ति दोष—

इस प्रकार के आक्षेपों का उत्तर छहों शास्त्रों, निरुक्त और अन्यान्य ग्रन्थों ने भले प्रकार देदिया है। जिज्ञासुगण वहां पर देखलें। हां हम इतना यहां पर बतलाये देते हैं कि वेदों के प्राकट्य काल में वेद अथवा कोई अन्य ग्रन्थ लेख बद्ध नहीं था। और न कोई किसी प्रकार की कथा कहानी वा इतिहास ही मौखिक मनुष्यों की जिह्वा पर था।

इस समय जबकि ग्रन्थ लेख बद्ध विद्यमान हैं तो यदि कोई बात, जो पहले कही जाचुकी है, यदि उसको पुनः कहने की आवश्यकता हुई तो इस प्रकार कहा जासकता है 'देखो इस विषय को अमुक जिल्द और अमुक अध्याय और पन्ने में'। परन्तु जब कोई लेख बद्ध ग्रन्थही न हो तो जो बात कहनी है उसको मुखसे ही कहना पड़ेगा न कि हवाला देकर बतलाना। इसलिये वेदोंमें जो कुछ भी आवश्यकतानुसार कहना पड़ा वह उस मन्त्र वा सूक्तको, उनका उच्चारण करके ही कहा गया

न कि हवाला देकर । व्याख्याता व्याख्यान देता है । न जाने कितनी वार पुराने शब्दों, वाक्यों और प्रमाणों को आवश्यकतानुसार दुहराता है। हम और आप परस्पर वार्तालाप करते समय कितने शब्दों और वाक्यों को बार २ दुहराते हैं। इसही प्रकार वेदों का ज्ञान भी परमात्मा की ओर से एक प्रकार का धर्माधर्म विषय पर व्याख्यान है। इसमें यदि आवश्यकता नुसार मन्त्र वा सूक्त तक बार बार आवें तो कौनसा दोष अथवा आश्चर्य है ?

यजु० १२। ४ में जो, वामदेव को, जैनी, सनातनी और और अन्य मतवादी भी ले बैठते हैं हम उनका उत्तर पूर्वही विस्तार पूर्वक दे चुके हैं। वामदेव और ऋषि ये दोनों विशेषण हैं न किसी व्यक्ति विशेष के नाम । जैसे कोई कहे कि 'यह ज्ञानी गुरु का चेला है।' तो ज्ञानी गुरु किसी विशेष पुरुष का नाम नहीं होगा ये दोनों शब्द विशेषण मात्र होंगे। इस ही प्रकार वामदेव ऋषि=प्रजापति ऋषि, पिता जिसका ऋषि हो ऐसा पुत्र आदि होंगे।

देखो—पिता वै वामदेव्यं पुत्राः पृष्ठानि। तारा० ७। ६। १
देखो—प्रजापतिर्वै वामदेव्यम् । ता० ४। ८। १५।
श० प० १३। ३। ३।

आशय यह है कि यजुर्वेद वामदेव ऋषि से पढ़ो अर्थात् परमात्मा के दिये हुए यजुर्वेद से ज्ञान प्राप्त करो ।

वामदेवादि ऋषि और वेद आदि शास्त्र—

प्रायः वेदार्थ करने की शैली से नितान्त अन

भिज्ञ पुरुष, वामदेव और वशिष्ठ आदि शब्दों को वेदोंमें देख कर, यह सन्देह करने लगते हैं कि ये नाम वास्तव में किन्ही विशेष ऋषियों के 'नाम हैं, और जबसे ये ऋषि हुए तब से ही वेद बने। यह उनकी नितान्त अनभिज्ञता है। ये सारे ही नाम शेष ऋषियों के नहीं हैं किन्तु गुणवाचक या इन्द्रियों के अथवा प्राणों के नाम हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों की व्याख्या करते हैं। अब देखना चाहिये कि ये नाम ब्राह्मण ग्रन्थों में किन्ही व्यक्ति विशेषों के ही हैं अथवा किसी अन्य वस्तु के वाचक भी हैं वा नहीं ?

वसिष्ठः—प्राणोवै वसिष्ठ ऋषिः। शतपथ ८। १। ६॥
भरद्वाजः—मनोवै भरद्वाजः ऋषिः। ,, ८। १। ८॥
जमदग्निः—चक्षुर्वै जमदग्नि ऋषिः। ,, ८। २। ३॥
विश्वामित्रः—श्रोत्रंवै विश्वामित्र ऋषिः। ,, ८। २। ६॥
विश्वकर्मा—वाग्वै विश्वा कर्मा ऋषिः। ,, ८। २। ६॥

इसके अतिरिक्त बृहदारण्यक उपनिषद् भी देखिये—"इमावेव गोतम भरद्वाजा वयमेव गोतमोऽयं भरद्वाज इमावेव विश्वामित्र जमदग्नि अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरिमावेव वसिष्ठ कश्यपावयमेव वसिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवा त्रिर्वाचा (ह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै नामै तद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवं वेद" बृहदारण्यकोपनिषद्। २। २। ४॥

अर्थात्—दोनों कान गोतम और भारद्वाज हैं।

दोनों नेत्र विश्वामित्र और जमदग्नि हैं।

वशिष्ठ और कश्यप नासिका के दोनों छिद्र हैं। और वाणीको अत्रि कहते हैं।

इससे सिद्ध है कि ये उपर्युक्त नाम किन्ही व्यक्ति विशेषों के न होकर प्रकरणानुसार इन्द्रिय आदिक वेदों में आते हैं। अब इस वामदेव शब्द को अथर्व वेदमें देखिये—

८१-०१ (२) ५-८

तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभूमूधः। ५

अर्थात् उस विराटरूप अन्नमयी गौ का इन्द्र बछड़ा है, गायत्री बाँधने की रस्सी है और मेघ दूधभरे ऊधस्=ऐन-बाघ के समान है॥ ५॥

बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥ ६ ॥

अर्थात् उस विराट् रूप गौ के बृहत और रथन्तर, यज्ञा यज्ञिय और वामदेव्य दो और दो स्तन है॥ ६॥

अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥ ८ ॥

अर्थात्--और वामदेव्य नामक स्तन से जलों को दुहा और यज्ञा यज्ञिय नामक स्तन से यज्ञको दुहा—प्राप्त किया।

" (स्मरण रहे कि कोई २ भाष्यकार 'गौ' के अर्थ : वाणी करते हैं; सो भी उपयुक्त है।)

पुन-:यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ।अथर्व१५।३।५

अथर्व—यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य उसके अनुष्ठान करने वाले हैं ॥ ५ ॥

पुनश्च—बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये आस्ताम् ।
यज्ञायज्ञियञ्च वामदेव्यंञ्च तिरश्चये ॥ अथर्व १५।३।५

अर्थात्—बृहत् और रथन्तर इसके उत्तर जानु—जांघ और यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य समदक्षिण जानु हैं।

अन्यच्च—ऋचः प्राञ्च स्तन्तवो यंजूषि तिर्यञ्चः ॥६॥

अर्थात्—पद्यरूपा वेद वाणी पश्चिम तनु है, और यजुः तिरछा तनु है ॥ ६ ॥

अब विचारिये कि क्या, बृहत, रथन्तर, यज्ञायज्ञिय, वामदेव्य, वैरूप, और वैराज्य आदि, किसी व्यक्ति विशेष के नाम हैं ? कदापि नहीं। इन्ही के साथ वामदेव्य शब्द भी आया हुआ है; फिर यह कैसे किसी व्यक्ति वाचक होसकता है ? इससे सिद्ध है कि वामदेव्य सामवेद के गान का एक भेद विशेषण है। न कि किसी ऋषिका नाम।

वामदेव शब्द के अर्थ—

वामदेव और निरुक्त—

वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा। वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥ ऋ० ४। ३०। २४ ॥

इस मन्त्र में आये हुए 'वामं' शब्द के अर्थ निरुक्तकार करते हैं "वामं ननीयं भवति" = सेवने योग्य होता है।

निरुक्त ६। २१ ॥

अब विचारिए कि—वामं=सेवन योग्यः, देवः दिव्य गुण युक्त=वामदेवः=सेवने योग्यदेव=ब्रह्म, विद्वान् और ऋषि मुनि आदि।

पाणिनि ऋषि कहते हैं कि—

वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ । पा० सू० ४। २। ६॥

वामदेवेन ऋषिणा दृष्टं साम वामदेव्यम् ॥

अर्थात्—वामदेव ऋषि से देखा गया साम वामदेव्य कहाता है। आशय यह है कि जो सेवन करने योग्य ऋषि हो वह वामदेव, और ऐसे ऋषि अथवा देवता से गाया हुआ वा देखा हुआ साम 'वामदेव्य' कहाता है। वामदेव किसी व्यक्ति विशेष का वाचक नहीं किन्तु गुण वाचक है।

यज्ञायज्ञिय, बृहत, रथन्तर, वैराज और वामदेव्य ये सब ही सामगान के भेद हैं। प्राचीन काल में इन सबके गाने वाले भारत वर्ष में विद्यमान थे। इनमें से वामदेव्य गान सर्वोत्तम है। अतः इस गान के गाने वाले का नाम "वामदेव ऋषि" पड़ गया। जिस प्रकार अन्य २ मन्त्रों के दृष्टाओं का नाम भी मन्त्र गत देवता के नाम पर पड़ गया। उसही प्रकार वामदेव्य गान गाने वाले का नाम भी वामदेव पड़ गया। जिस प्रकार 'शिव सङ्कल्प' वाले मन्त्रों के दृष्टा ऋषि का नाम भी शिव-सङ्कल्प पड़ गया। जिस सूक्त वा मन्त्र में जिस २ विद्या का वर्णन होता है, और उस २ विद्या का प्रचार, सृष्टि के आदि में जिस २ ऋषि ने किया, वही २ नाम ऋषियों का पड़ गया। यह बात अनेक प्रमाणों से सिद्ध है। अतः वामदेव ऋषि से

देखा हुआ मन्त्र या गाया हुआ साम किसी व्यक्ति विशेष का देखा वा गाया हुआ, वेदों से सिद्ध नहीं होता।

हां वामदेव ऋषि विशेष भी हुए हैं।

वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक संस्थाश्च निगमे० मनु के अनुसार वेदों से लेकर किसी ने अपने पुत्र का, वा अच्छा साम गाने से अन्य उस ऋषि का नाम 'वामदेव' रख दिया।

यजु० १५। १६ में न्यायाधीश दुष्टों को दण्ड दें, श्रेष्ठों की रक्षा करें, द्वेष को दूर करें आदि सुशिक्षा हैं। वादी का आक्षेप व्यर्थ है। किसी निरपराधी को मारने के लिये यदि वेद आज्ञा देते तो अवश्य ही दोष होता। "तंदेवा अब्रुवन् वैनः सर्वेषाँ वाम इति। तयंदेवा अब्रुवन् नयं वैनः सर्वेषां वाम इति तस्माद् वामदेव इति ऐतरेयारण्यक २

यजु० १५। १७ में भी जो दुष्ट हम से द्वेष करे उस को दण्ड देना लिखा है। क्या दुष्ट दण्डनीय नहीं हैं न जाने आप का क्या मत है ?

यजु० १५। १५ में भी व्याघ्र आदि हानिकारक पशुओं को मारना लिखा है, सो ठीक ही है। वेद मूर्खता की अहिंसा नहीं सिखाते। मुख से पट्टी इस लिये बांधे रहना कि वायु में रहने वाले कीड़े मर जायेंगे, यह मूर्खता की अहिंसा भास है। वायु तो बिना निकले रहेगा नहीं चाहे मुख में को निकले चाहे नाक में को।

यजुर्वेद का २४ वां अध्याय—

सज्जनों ! यजुर्वेद का २४ वां अध्याय अभी तक अन्धकार

में हैं। इसके तात्पर्य तक अभी तक कोई नहीं पहुंचा है। श्री स्वामी जी महाराज ने तो केवल शब्दार्थ लिख दिये हैं, और भावार्थ में दिया है कि—अमुक ३ पशु पक्षी के अमुक २ गुण हैं। और यह भी दर्शाया है कि यह पशु पक्षी इस २ देवता से सम्बन्ध रखता है विवेचना इस बात की होनी शेष है कि इस २ देवता के क्या २ गुण हैं और इस पशु के किस २ गुण से इस देवता की समानता है ?

देवता, इस प्रकरण में, क्या हैं ? यह भी जानना शेष है।

महीधर जी तो इन २ पशुओं और पक्षियों को अमुक २ देवतार्थ बलि करने का आदेश दे रहे हैं इस अध्याय में ४०मन्त्र हैं। १० मन्त्रों तक कोई क्रिया नहीं दर्शाई गई। ११ वें मन्त्र में, "आलभते" क्रिया आई है। फिर १६ वें मन्त्र में भी "आलभते"क्रिया आई है। २० वें मन्त्र तक 'आलभते' क्रियो को दुहराया है। इस ही प्रकार २९ वें मन्त्र तक 'आलभते' क्रिया प्रत्येक मन्त्र में आई है।

फिर आगे ४० वें मन्त्र तक कोई क्रिया नहीं आई है।

इस अध्याय के आरम्भ में महीधर जी लिखते हैं कि—"श्रुतिरुपमन्त्रा आश्वमेधिकानां पशूनां देवता सम्बन्धविधायिनो ऽध्याये नोच्यते"। *अर्थात्—श्रुतिरूप मन्त्र अश्वमेध सम्बन्धी* पशुओं को विधान करने वाला यह अध्याय है। अर्थात् इस *अध्याय में उन पशुओं और देवताओं का विधान है* जो अश्व मेध यज्ञ में काम आते हैं। "तत्राश्वमेधेएक विंशतियूपाः सन्ति।"=अश्वमेध में २१ यूप=खंभे होते हैं। "तत्रमध्यमौ

यूपो ऽग्निष्ठ संज्ञः"=बीच का खंभा "अग्निष्ठ" नाम वाला है। "तत्र सप्तदशपशवो नियोजनीयाः"=इस खंभे में १७ पशु बांधने चाहियें। "तान् देवता सम्बन्ध कथन पूर्वक माह"=उन पशुओं को देवता सम्बन्ध कथन पूर्वक कहा है। "प्रजापति देवता के लिये इस पशु को नियुक्त करता हूं" इत्यादि वाक्य कहता जाता है और पशु को देवता के निमित्त नियुक्त करता जाता है। महीधर जी का यही तात्पर्य है।

११ वें मन्त्र में आई हुई क्रिया—'आलभते' के अर्थ—'नियुनक्ति' करते हैं आशय यह है कि यूपों में प्रत्येक देवता के निमित्त प्रत्येक पशु आदि को बांधना बताया गया है।

श्री स्वामी जी महाराज महीधर जी के इस सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं। स्वामी जी का आशय यह है कि सूर्यादि देवताओं के जो गुण हैं उनके अनुकूल वा मिलते जुलते इन २ पशु पक्षी आदि के गुण हैं। इस ही अध्याय में यह भी बतलाया है कि किस २ ऋतु में क्या रंग २ मनुष्यों के लिये सुखदायी हैं यथा—

मन्त्रः—धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥

अर्थात्—वसन्त ऋतु में धुमैले रंग के, गरमियों में श्वेत

[illegible] ऋतु में काले रंग के, शरद ऋतु में लाल रंग के, हेमन्त ऋतु में मोटे २ और शिशिर ऋतु में कुछ लाली रंग को लिये हुए वस्त्रों को पहने।

आशय यह है कि—वसन्त में खाकी कपड़ा सुखद है, गरमियों में सफेद रंग का कपड़ा सुख देने वाला है। कारण यह कि सफेदों में गरमी कम वा नहीं के बराबर रहती है। वर्षा में काले पहने। कारण यह है कि वर्षा में काले कपड़े कीचड़ पानी के कारण, खराब होते रहेंगे तो बुरे नहीं जचेंगे। शरद् में लाल रंग सुहावना होता है। हेमन्त में मोटे कपड़े पहने। हिम से बचने के लिये मोटा पहरना लाभदायक है। शिशिर ऋतु में पिशंग=लालामी लिये हुए पीले रंग के पहने।

किसी २ मन्त्र में यह बताया है कि कौन २ से जीवको कौन स्थान वा ऋतु अनुकूल है?

जैसे—समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान ॥ २१ ॥

अर्थात्—शिशुमार जन्तु जो अपने बच्चों को भी खा लेता है, उसके लिये समुद्र अनुकूल है, मेघ मण्डूकों को, जल मछलियों को, कुलीपय पशु के लिये सूर्य, नाके के लिये जल अनुकूल है। इन्हीं २ स्थानों पर इन २ जन्तुओं का बल बढ़ता है। कहीं २ मन्त्र में पक्षियों के गुण बतलाये हैं —यथा—

सोमाय हंसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥

हंस में सोमतत्व विशेष है। हंस ऐसे स्थानों पर रहता है जहाँ पर सोमतत्व विशेषतया रहता है। हिमालय आदि ऊंचे स्थान इस के लिये उपयुक्त है। हिमालय पर सोम का होना विख्यात है। वहाँ पर सोम का आधिक्य होने से इसके शरीर में भी उपादान कारण रूप से सोम अधिक है। बगले में वायुतत्व विशेष है। इस को हड्डियों को जांचने से पता चला है कि वे खोखली होती हैं—उनमें वायु भरा रहता है। पर की अस्थियों में भी वायु विशेष है। ऐसे पक्षी विद्या जानने वाले बताते हैं। सारस का मांस बहुत उष्ण होता है। विद्युतशक्ति भी इस में अधिक है। जिस प्रकार बिजली और अग्नि का विशेष सम्बन्ध है अन्योन्याश्रित हैं वैसे ही सारस अपने जोड़े के लिये विख्यात है। मिथुना=परस्पर एक स्थान पर मिल कर रहने के लिये जल कौए विख्यात हैं—जलकौआ कभी अकेला नहीं रहता। चकवी चकवे—वरुण अर्थात नदी तालाब आदि के तट पर रहते हैं। रात्रि को एक इस पार और दूसरा उस पार चला जाता है। इस लिये इस को वरुण सम्बन्धी कहा।

२३ वें मन्त्र में बताया है कि—अग्नि=सूर्य के लिये मुर्गा। मुर्गा सूर्य उदय होने की सूचना देता है। ठूंठ के लिये उल्लू। यह विख्यात है कि—ऐसा बैठा है जैसे ठूंठ पर उल्लू। नीलकंठ में अग्नि और सोम दोनों के गुण हैं। मयूर में सूर्य और चन्द्रमा के गुण हैं। कबूतर में मित्र और वरुण के गुण हैं। कबूतर का हिला रहकर दूर देश से भी घर पर मित्रवत् आ जाना विख्यात है।

इस बात के मान लेने में हमारी कोई हानि नहीं है कि यदि हम यह कहदें कि—प्राचीन, पक्षी और पशु आदि जीवों की, विद्यायें अब लुप्त प्राय हो चुकी हैं। अतः हम प्रतिज्ञा नहीं कर सकते कि "वेदों में बताये हुए, पशु पक्षी आदि के विज्ञान को, हम भले प्रकार जानते हैं"। जैसे २ आगे को वेद विद्याओं का प्रचार होता जायगा, वैसे २ ही हम इन के सम्पूर्ण गुणों को जानते जायेंगे। हां हम को इतना दृढ़ विश्वास अवश्य है कि इस अध्याय में इन २ देवताओं के निमित्त इन २ पशु, पक्षी, जलचर और नभचरों को यज्ञ में मार कर डालने का वा यूप से बांधने का विधान नहीं है।

क्यों कि—मन्त्र २६ वें में इस प्रकार बताया है—

प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आ लभते वा चे प्लुषींश्चक्षुषे मशकान्छोत्राय भृङ्गः ॥ २६ ॥

अर्थात्—राजा के लिये प्रजा वा सेना, वा हस्ति, वाणी के लिये प्लुष नाम का जीव, नेत्रों के लिये मशक=मच्छर, और श्रोत्र के लिये भृङ्ग=भौंरा।

तो क्या मच्छर और भौंरे भी यज्ञ में मार कर डाले जायेंगे। वा यूप से बांध जायेंगे?

इतना बड़ा जीव हाथी भी? गिरगट भी? नाका भी?

संसार में अत्यन्त छोटा जन्तु मशक=मच्छर है, जो रात्रि के अन्धकार में भी मनुष्यादि को देखकर उनका रुधिर पीने को शब्द करता हुआ पहुंच जाता है। भौंरे की गुंजार विख्यात है।

पशु, पक्षी, कीट और क्रिमियों की विद्या से लाभ—

एक राजा का मन्त्री था। वह इन क्रिमि आदि की विद्याओं में अत्यन्त निपुण था। किसी अपराधवश राजा ने उसको एक ऊंचे बुरुज में बन्दी बना कर रख दिया। एक दिन इसकी स्त्री ने बुरुज के नीचे आकर रोना आरम्भ किया। स्त्री का रोना सुन कर, उसने खिड़की के मार्ग से नीचे को झाँका। उसने अपनी स्त्री से कहा कि—जा, रो मत कल को इतनी चीजें अपने साथ लेकर आना—एक गुबरीला' थोड़ा सा सड़ा हुआ मक्खन, एक बारीक रेशम की लम्बी लच्छी, एक सूत की पेचक, एक सुतली की लच्छी और एक मोटा रस्सा। यह सुन कर उसकी स्त्री दूसरे दिन, पति की बताई हुई, सब चीजें लेकर बुरुज के नीचे पहुंची। उस को देख कर मन्त्री ने कहा कि—इस गुबरीले के मत्थे पर थोड़ा सा मक्खन लगा दे और रेशम के डोरे का सिरा इसके पैर से बांध दे और इस बुरुज की खिड़की की ओर इसका मुख करके बुरुज की दिवाल पर छोड़ दे। उस स्त्री ने ऐसा ही किया। गुबरीला यह समझ कर कि कहीं ऊपर से मक्खन की गन्ध आ रही है, सीधा खिड़की की ओर रेंगता चला गया। जब खिड़की तक पहुंच गया तो उस मन्त्री ने उस गुबरीले को पकड़ लिया और उसकी टांग में से रेशम के डोरे का सिरा खोल लिया। फिर स्त्री से कहा—इस रेशम के डोरे के सिरे में सूत का डोरा बांध दे। स्त्री ने ऐसा ही किया। उसने उस डोरे को रेशम के डोरे के सहारे से ऊपर को खेंच लिया।

फिर कहा कि इस डोरे के सिरे में सुतली को बांध दे। उसने वैसा ही किया। जब उसने सुतली को भी ऊपर खेंच लिया तो बोला कि अब इस सुतली के सिरे में इस मोटे रस्से को बांध दे। जब रस्सा भी बंध गया तो उसने उस रस्से को भी खेंच लिया। उस खेंचे हुए रस्से को उसने खिड़की के लोहे के सींखचे से कस कर बांध दिया और उसके सहारे नीचे उतर आया और उस राज्य को त्याग कर कहीं अन्यत्र चला गया। उसको रक्षा का कारण इस क्रिमि विद्या का परिज्ञान ही हुआ वह जानता था कि गुबरीला सड़े हुए मक्खन को अधिक चाहता है। इसकी गन्ध जहाँ भी पायेगा उधर ही को बढ़ा चला जायगा। इस विद्या द्वारा उसने अपनी जान बचाई। यह है विद्या का चमत्कार।

एक पक्षी "पतोरी" कहाता है। यह रात्रि के समय वृक्षों पर वास करता है। इसका स्वभाव है कि जब कभी मनुष्य उधर को निकलेगा तो यह अवश्य ही बोलेगा। रात्रि को वृक्षों के नीचे किसान लोग अन्न डालते हैं। अर्थात् जब फसल काटते हैं तो वृक्षों के नीचे वा समीप खलियान बनाते हैं। ऐसे समय जब कभी रात्रि को चोर आदि आता है तो यह पतोरी पक्षी तत्काल शब्द करने लगता है। इसके शब्द से किसान जान जाता है कि कोई चोर आदि अन्न के समीप आ रहा है। विशेष देखना हो तो देखो "पक्षिविज्ञान पुस्तक"।

प्रश्न—स्वामी जी ने बलिवैश्व और वाक् २ आदि के मन्त्र कैसे लिख दिये। ये तो किसी वेद के मन्त्र नहीं हैं ?

उत्तर—'मन्त्र' शब्द केवल वेद की श्रुतियों के ही लिये नहीं आता है किन्तु वेदानुकूल अन्य ब्राह्मण ग्रन्थादि के वाक्यों के लिये भी आता है। बलि वैश्व के मन्त्र वेद के नहीं हैं।

परन्तु मनुमहाराज फिर भी इनको मन्त्र ही कहते हैं। यथा—

"सायं स्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिंहरेत्"। अर्थात् सायं काल को बनाये हुए भोजन में से स्त्री बिना मन्त्र के बलिवैश्व करे।*

यास्कीय निरुक्त और इतिहास—

कुछ वेद विरोधी जन यह सिद्ध करनेका दुस्साहस करते हैं कि—निरुक्त कार यास्कमुनि वेदों में इतिहास मानते हैं। ऐसे व्यक्तियों को हम समझा देना चाहते हैं, कि वे इस हठको छोड़दें। यास्क मुनि स्वयं ही निरुक्त में ठौर ठौर पर "इत्यैतिहासिकाः" "इतितिनैरुक्ताः" आदि कह कर यह सिद्ध करते हैं कि हम "नैरुक्त' हैं 'ऐतिहासिक'=इतिहास के मानने वाले नहीं हैं, इतनी पुकार मचाने पर भी हठी जन बार २ यही परिमाण निकालने का निष्फल प्रयत्न करते हैं कि निरुक्तकार वेदोंमें इतिहास मानते हैं। यह हम नहीं मानते कि निरुक्तकार यास्क मुनि के समय में वा उससे पूर्व भी वेदों में इतिहास मानने वाले नहीं थे नास्तिक वेद विरोधी सृष्टि के आदि से चले आये हैं। मांस

---

*"सोमाय पितृमते स्वाहा' मन्त्र से दूसरी आहुति दे। यमायप्रेत पतयेस्वाहा" मन्त्र से तीसरी आहुतिदे। अ० ३१। ४७ पृ० २८३। मार्कण्डेय पुराण टीका पं० रामस्वरूप सनातनी

मदिरा के सेवी और व्यभिचारी भी नये नहीं हैं। वेद मंत्रों को निरर्थक मानने वाले परम नास्तिक भी विद्यमान थे। परन्तु इनसे सदैव वैदिक ऋषियों का विरोध रहा है। ये वैदिक ऋषि सदैव ऐसे वेद विरोधी सिद्धान्तों का खण्डन करते रहे हैं और करते रहेंगे। इन वेद विरोधियों के पक्ष को वैदिक पक्ष समझना और अन्योंको भी ऐसी कुमति देना, यह हठी, दुराग्रही, दुष्पक्षीऔर घोर नास्तिकों का काम है। अब क्रमशः सबके उत्तर सुनिये—

यह स्मरण रहे कि इतिहास दो प्रकार के होते हैं—१-नित्य २- अनित्य। वेदों में नित्य इतिहास विद्यमान हैं—यथा—

"नासदासीत् नोसदासीत्तदानीम्" "किं स्विदासीदधिष्ठान मारम्भणम्" इत्यादि। परन्तु राम, कृष्ण, दशरथ, विश्वमित्र और वसिष्टादि व्यक्ति विशेषों का जीवन चरित्र वेदों में नहीं है ये सारे ही नाम गुणवाचक हैं। संज्ञा नहीं।

प्रश्न—निरुक्त अध्याय २ खंड २४ में आया है कि—"तत्रेतिय स माचक्षते—विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव"। इत्यादि।

उत्तर—यदि निरुक्त कार स्वयं इतिहास मानते होते तो यह कहतेकि-"तत्रेतिहास माचाष्टे"=यहां पर मैं इतिहास कहता हूं। निरुक्तकार ऐतिहासिकों का मत बतलाते हैं, जो उसका अपना मत नहीं। निरुक्तकार अपना यह मत बतलाते हैं—"विश्वा मित्रः" सर्वमित्रः=विश्वामित्र से आशय-सर्वमित्र से है।

अर्थात् जो सबका मित्र है वह विश्वामित्र ऋषि। "सुदास" के अर्थ बतलाते हैं—सुदाः कल्याणदानः ॥

अर्थात—शुभ कर्मके लिये दान देने वाला।

"पैजवनः" के अर्थ हैं—'पिजवन' का पुत्र। 'पिजवन' जसके कर्मस्पर्धा के योग्य =अनुकरणीय हों।

इस प्रकार की सद् बुद्धि से प्रेरित हुआ नदी पर जाकर विचार करता है कि राज्यमें नदी को पार करने का साधन होना चाहिये। प्रकृति यह बताती है कि नदी रुक नहीं सकती। यह वह नदी हैं जो परवतों से निकली हैं। परवतों पर वर्षा द्वारा जल हिम के रुप में एकत्रित हैं। उस वर्षा को सूर्यने प्रेरित किया है। ये नदियां उस समय पयाव हो सकती हैं जब गरमी के मौसम में जल न्यून हो जाय। वा सेतु बंधे या नाव हो। यही विद्या इस मंत्र में बतलाई गई है।

आगे निरुक्तकार कहते हैं कि 'कुशिको' "राजा बभूव"= कुशिक राजा हुआ हैं। यह कोषकारों के कहने की शैली है योगिक अर्थ कह कर रुढ़ि अर्थ भी कह देते हैं। यथा—

दशरथ—दशास दिक्षु गतो रथो यस्य। जिसका रथ दशों दिशाओं में गया। सूयवंशी राजा। श्री रामजी के पिता॥ देखो पद्म चन्द्र कोष।

दशसु दिक्षु गतो रथो यस्य। सूर्यवंश नृपभेदे।

शब्द स्तोममहानिधि।

राम—मनोहरे शुभेच त्रि० वास्तुके कुष्ठे तमालपत्रेच (न०)

सुरथ—सुष्टरथोयस्य। सुन्दर रथवाला। चन्द्रवंशी एक

राजा ॥ पद्मचन्द्र कोष ।

सुष्ठुरथो वर्त्तते यस्य । चन्द्रवंशे सुरथो राजा भूत इति चण्डिस्तोत्रे ॥ शब्द स्तोम महानिधिकोष ।

इसही प्रकार सर्वत्र जानिये । कोषकारों का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि दशरथ शब्द केवल सूर्यवंशी राजा के लिये ही प्रयुक्त होसकता है । किन्तु उनका तो आशय यह है कि—पहले वे शब्दार्थ बतलावें, फिर जानकारी के लिये ऐतिहासिक नाम भी बतायें । इसही प्रकार वेदों में आये हुए दशरथ, कुशिक, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि शब्दों के यौगिक अर्थ बतावें, जो उनका निजी सिद्धान्त है, तदुपरान्त ऐतिहासिक अर्थ भी बतादें । इससे यह कदापि नहीं समझना चाहिये कि—वे नैरुक्त लोग वेदों में इतिहास भी मानते हैं ।

दशरथ, राम, कृष्ण, शन्तनु, अर्जुन, कुशिक, विश्वामित्र, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, और हिमवान् आदि ये शब्द अनादि हैं—इन सबकी उत्पत्ति से पूर्व इन सबही शब्दों की सत्ताविद्यमान थी । दशरथ नाम रखने से पूर्व 'दशरथा शब्द विद्यमान था । गङ्गा के आने से पूर्व गङ्गा शब्द विद्यमान था । हम इन सटीले व्यक्तियों से पूछते हैं कि दशरथादि के उत्पन्न होने से पूर्व इन शब्दों के क्या अर्थ थे ? क्योंकि ये व्यक्ति तो सृष्टि उत्पत्ति के उपरान्त उत्पन्न हुए हैं ?

शब्द नित्य है, ये व्यक्ति और पदार्थ अनित्य हैं । फिर इनका नित्त संबन्ध कैसा ? हां शब्दार्थ का नित्य संबन्ध हो सकता है । पहले बतलाया जाचुका है कि वेदार्थ को नये

प्रकार दर्शाने के लिये ऋषियों को प्रति उनको आख्यान के रूप में वर्णन करने की रही है—"ऋषेर्ईष्टार्थस्य प्रति भवति आख्यान युक्ता" निरुक्त १०।१०।१०॥ के अनुसार बड़े २ गूढ़ तत्वों को ऋषियों ने कथा कहानी आदि के रूपोंमें समझा दिया है। शुनः शेप, हरिश्चन्द्र, शन्तनु, आदिकी गाथायें, वास्तविक कथायें नहीं हैं। ये किसी प्रकृति के विशेष रहस्यों को बताने के लिये इतिहास की रीतिपर वर्णन किये गये हैं। उदाहरणार्थ पुरुरवा और उर्वशीका वृतान्त पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। कालीदास ने "विक्रमोर्वशी" काव्य लिखकर, इस प्राकृतिक दृश्यको, कथानक का रूप दे दिया है। ये ही आगे चलकर अच्छी खासी पौराणिक कथा बन गई है। प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में कोई पुरुरवा और उर्वशी व्यक्ति विशेष हुए हैं? क्या इनकी कथा वास्तविक ऐतिहासिक कथा है? कदापि नहीं। ये दोनों आकाशीय प्राकृतिक पदार्थ विशेष हैं, जैसा आगे चल कर विदित हो जायगा।

वेद और पुरुरवा--उर्वशी—

१—अग्नेर्जनित्र मसि वृषणौस्थ उर्वयायुरसि पुरुरवा असि गायत्रेणत्वा छन्दसा मन्थामित्रैष्टु भेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि॥ यजुर्वेद अध्याय ५ मन्त्र २॥

इस मंत्र में पुरूरवा और उर्वशी दोनों नाम आये हैं।

श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज कहते हैं—(उर्वशी) बहुत सुखको प्राप्त करने वाली क्रिया। और पुरूरवाके अर्थ हैं (पुरूरवा) बहुत शास्त्रों के उपदेश करने का निमित्त। महीधर जी कहते

हैं—"उर्वश्यसीत्यधरारणितयो रिति।

अर्थात्—नीचे ऊपर की अरणियोंमें नीचे की लकड़ी उर्वशी है। "हे अधरारणे! त्वमुर्वशी असि"=हेनीचेकी लकड़ी तू उर्वशी है। " हेउत्तरारणे ! त्वं पुरूरवा असि "= हे उत्तरारणि ! तू पुरूरवा है यहां पर पार्थिव राजा और अप्सरा का वृतान्त समझना समझाना नितान्तभूल है। ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ६५ ऋच ५ में इस प्रकार है—

त्रिःस्म मान्हः शनथयो *वैतसेनोत स्म मेऽव्यस्यै पृणासि। पुरूरवोऽनुते केतमायं राजा मे वीर तन्वस्तदासीः॥ ५॥

इसमें लिखा है कि—"हे पुरूरवा! तुम मुझसे प्रतिदिना ३ वार रमण करते थे। इससे यज्ञकी ३ तीन अग्नियां सिद्ध हैं।" देखो कृष्ण चरित्र पृष्ठ १०७ बंकिम बाबू लिखित।

शतपथ—उर्वशी ह्याप्सरा। पुरूरवा समैऽचक्रमेत ँ स विन्दमानो वाच त्रिः स्यहान्हो वैतसेन दंडेन हृतादकामा ँ स्म॥ शतपथ ११। ४। ५।१

अर्थात्—निश्चय उर्वशी अप्सरा है पुरूरवा को प्राप्त करके कहा कि तूने मुझको दिनमें ३ वार वैंतके दण्डेसे ताड़ना की है। (दिनमें ३ तीन वार अग्नि उत्पन्न की है)

वेतस्' शब्द वेदों में कई स्थलों पर आया है यथा—

ऋ० ४। ५८। ५॥ यजु० १३। ३८॥ १७। ६॥ अथर्व १०। ७। ४१॥ १८। ३। ५॥

---

* कण्वशाखा मे "वैतसेन दण्डेन" ऐसा पाठ है।

अथर्व—१०। ७। ४१ का आशय यह है कि जिस प्रकार जलमें वेत स्थित वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही हिरण्यगर्भ भी आकाश में परमात्मा की शक्ति से वृद्धिङ्गत होता है।

यजु० १३। ३८, में "वेतपः" के अर्थ वेग वाला हैं।

यजु० १७। ६३, में और ऋ० ४। ५८। ५ में समान ही मंत्र हैं उनके अर्थ भी समान हैं यथा—

ऋ० ४। ५८। ५ यजु० १७। ६३—"वेतसोऽभि चाक शामि"=सब ओर से मैं सुन्दर शिक्षा करता हूं। (वेतस्। सुन्दर)

महीधर जी—वेतसोऽग्निः—वेतस् अग्नि है। ऐसा अर्थ करते हैं। यजु० १७। ६ "वेतसे—पदार्थों के विस्तार में। दया नन्द स्वामी॥

"..... वेतसे"—वञ्जल शाख्यायाम्। मही धरः॥

निरुक्ते—उर्वशी—

श्यप्सरा, उर्वमश्नुते, उरुभ्यामश्नुते, उरुवी वशोऽस्याः अप्सरा अप्सारिणी, अपि वाऽप्स इति रूपनामाप्सातेर प्सानीय भवत्यादर्शनीयं, व्यापनीयं वा, स्पष्टं दर्शनायेति शाक पूणिः।

'यदप्सः'इत्य भक्तस्य 'अप्सोनाम' इति व्यापिनः। तदा भवती रूपवती, तदनयाक्त मिति वा, तदस्यै दत्तमिति तस्या दर्श नान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कन्द, ५। १३। वा॥

तदभि व दिन्येपर्भवति—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः।

द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मण दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ।
ऋ०. ७ । ३३ । ११ ॥

अप्यसि मैत्रावरुणो वसिष्ठ उर्वश्या ब्रह्मन ! मनसोऽधिजातः द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन । द्रप्सः संभृतः प्सानीयो भवति । सर्वे देवाः पुष्करेत्वाधारयन्त । पुष्करं अन्तरिक्षं, पोषति भूतानि । उदकं पुष्करं, पूजाकरं पूजयितव्यंवा । इदमपीतरत पुष्करमेतस्मादेव, पुष्करं वपुष्करंवा पुष्यं पुष्यतेः ।

अर्थात्—*'उर्वशी अप्सरावाची है । (उरुअन्यश्नुते) बहुत व्यापक होती है । (उरुभ्यामश्नुते)=विस्तृत दो पदार्थों से व्यापक होती है । (उरुः वशः अस्याः)-इसका वश बहुत है । (अप्सरा=अप्सारिणी)=यह अप्सरा जलों में रहती है । वा चलती है । (अप्स इति रूपनाम) 'अप्स' का अर्थ रूप है (अप्सातेः अप्सानीयं भवति अदर्शनीयम)=रूप भक्षणीय नहीं होता किन्तु भली प्रकार दर्शनीय होता है । (व्यापनीयंवा)= अथवा रूप व्यापनीय होता है (स्पष्टंदर्शनायेति शाकपूणिः)= रूप देखनेके लिये स्पष्ट होता है ऐसा शाकपूणि ऋषि मानता है ।

मन्त्रार्थः—(वसिष्ठ ! उत मैत्रावरुणः असि) हे वास कतम जल ! और तू मित्र वरुण वायुओं से उत्पन्न हुआ है । (ब्रह्मन उर्वश्याः मनसः अधिजातः) अन्नदातः तू विद्युत के

---

* उर्वशी=विशाल राज्य को वश में करने वाली ।
पुरूखा=बहुत से पुरुषों तक अपना उपदेश पहुंचाने वाला (दयानन्द)

सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है (द्रप्सं स्कन्तांत्वा, जल के रूप में परिणत तुझको (देव्येन ब्रह्मणा) देवताओं के अन्न के निमित्त से, अर्थात् उत्तम अन्न उत्पन्न करने के लिये (विश्वेदेवाः) सूर्य की किरणें (पुष्करे अददन्त) अन्तरिक्ष में धारण करती हैं।

पुष्कर अन्तरिक्ष को कहते हैं। यह प्राणियों का पोषण करता है जल को भी पुष्कर कहते हैं। यह पूजा का साधन वा पूजनीय है। कमल पुष्प भी पूजा का साधन वा आदरणीय होता है पुष्पकर अर्थात् खिला हुआ होता है।

वसिष्ट जल है और विद्युत से उत्पन्न होता है अतः जन्म नाम भी जल का है—विद्युतो ज्योतिः परि सञ्जिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतांत्वा। तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठा गस्त्यो यत्वा विश आजभार ॥ ऋ० ७। ३३। १० ॥

मन्त्रार्थः—(वसिष्ठ ! विद्युतः ज्योतिः परि सञ्जिहानंयत् त्वा) हे वासकतम जल ! विद्युत् की ज्योतिः से अपने पूर्व रूप को छोड़ते हुए जिस तुझ को (मित्रावरुणौ अपश्यताम्) मित्र-वरुण वायुएं देखती हैं (ततते एकं जन्म) इस लिये तेरा एक नाम "जन्म" है। (उतयत्त्वा अगस्त्यः) और जिस तुझ को सूर्य ने (विशः आजभार) मनुष्यों को प्रदान किया है ॥ (वह तू 'जन्म' वाला है)

इस से सिद्ध है कि उर्वशी एक अप्सरा है और अप्सरा वा उर्वशी विद्युत्=बिजली को कहते हैं। इस विषय के अधिक से अधिक प्रमाण आगे उद्धृत किये जाते हैं।

उर्वश्यप्सरा अप्सरा अप्सारिणी। निरुक्त ५। १३ पर सामश्रमीजो

" तथा चोदक जात विद्युदेवोविष्यप्सराः" ॥ सारश्रमो ॥

अर्थात्—तथा जलसे उत्पन्न हुई विद्युत को अप्सरा कहते हैं।

उर्वशी—

Urvashi apparently Fervour or Enthusiasm personified as a divine being. Grifith. P. 505 का नोट।

यह स्पष्ट है कि उर्वशी अलङ्कार की रीति पर एक ताप वा की प्रतिकृति है।

पुरूरवा—

The son of Biwha. He is said to have instituted the three sacrificial fires. Agni to reward him, sent thunder the fire runner of rain. Rig. 1-31-8.

पुरूरवा बुध का पुत्र—यह पुरूरवा रूप ३ पवित्र अग्नियों का प्रतिनिधि है।

यह पुरूरवा रूप अग्नि ही घनगर्जन और मेघ का प्रेरक है।

Max muller considers the story to be one of the myths of the Vedas which express the corelation of the dawn and the sun. According ot Pr. of Goldstucar, Urvashi is the morning mist which vanishes away as soon as Pururava, the

Sun, displays himself. Selected Essays, Vol.1 P. 408.

अर्थात—मैक्स मूलर के विचार में यह एक प्रकार की वैदिक गाथा है। डा० गल्डस्टकर के मतानुसार, उर्वशी प्रातः कालकी उषा है और जोकि पुरूरवा अर्थात सूर्यके उदय होते ही छुप जाती है। अथवा नष्ट होजाती है।

मि० आर० सी० दत्त—ऋग्वेद—१०। ११५ सूक्त पर लिखते हैं—

"अमरा पूर्व द्वे बलियाछि उषापुरूरवा आदि अर्थ 'सूर्य उदय हयिले उषा भार थाकेना। (देखो बगला भाष्य)

कण्वशाख—हे उत्तरारणे त्वं! पुरूरवा असि। कात्र्यशाखा पृ० ५१।१।५।२

कात्यायन—दर्भावुर्वशीत्यधरारणि मादत्ते पुरू वा इत्युत्तरारणि मिति॥ कण्वशाखा १।५।२ पृ० ५३

उर्वशीत्यधरारणी तयोरिति हे अधरा रणेत्वं उर्वश्यस्ति॥

कण्वशाखा—दशक १ अध्याय ५। पृ० ५३

इन सारे ही प्रमाणों से सिद्ध है कि उत्तरारणि। अग्नि उत्पन्न करने की दो लकडियों में से ऊपर की लकड़ी, है और उर्वशी अधरारणि=नीचे की लकड़ा है। परन्तु इन दोनों के संयोग को पुराणादिमें कैसी विचित्र कथा घड़ रक्खी है?

स्मरण रहे कि 'अप्सरा' किसी इन्द्र की वेश्या का नाम नहीं है किन्तु किरण का नाम है। इन्द्र सूर्य है, उसके मण्डल में रहने वाली किरणों में विविध प्रकार के गुण हैं। उन में

से एक विशेष गुण वाली किरणका नाम उर्वशी है। वेद भगवान् स्वयं कहते हैं कि 'अप्सरा' किरणें हैं यथा—

"सूर्योगन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस"।

यजु० १८। ३६।

अर्थात्—सूर्यगन्धर्वि=पृथिवी का धारण करने वाला है और उसकी किरणें अप्सरा हैं।

"तस्यसूर्यस्य मरीचयो नामाप्सरसः" ॥ महीधरः ॥

यजु० १५। १६ में भी उर्वशी किरणों का वर्णन है।

पुरूरवा का वर्णन ऋ० १०। ६५। में विस्तार पूर्वक है।

इस सूक्त का १७ वां मन्त्र इस प्रकार है—

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ॥

ऋ० १०। ६५। १७ ॥

अर्थात्—वसिष्ठ अन्तरिक्ष में घूमने वाली उर्वशी को अपने वश में रक्खूं।

लिखित स्मृति—पुरूरवादिवाश्वेव विश्वेदेवाः प्रकीर्त्तिताः लिखित स्मृति ४७ ॥

अर्थात्—पुरूरवा और आद्रिवा ये वैश्वदेव=आकाशीय पदा हैं। विश्वेदेवाः किरणों को भी कहते हैं="तस्य सूर्यस्य ये रश्मयस्ते विश्वेदेवाः। शत० पथ १। १६। ४। १५।

व्याकरण से सिद्धिः—

उर्वशी—ययोरूणि बहूनि सुखान्यश्नुवते सा यज्ञ क्रिया।

अर्थात्—जिस यज्ञ क्रिया से बहुत से सुख प्राप्त हों वह उर्वशी। उरुः पृथु कामो वशो यस्याः सोर्वशी॥ महीधरः

अर्थात्—जिस को बहुत सा काम हो वह उर्वशी।

उर्वशीति पदनामसु पठितम्॥ निघंटु-५।५।

अर्थात्—उर्वशी शब्द "पद"के नाम में आया है।

उर्विति बहुनामसु पठितम् निघंटु-३।१। तस्मिन्नुपपदे। अशूङ्धातोः संपदादिभ्यो किप् ततः शङ्गिरबाद्यन्तर्गत त्वात् ङीन्॥

अर्थात्—"उरू" अर्थ बहुत के हैं। इस के उपपद होने पर अशूङ् धातु से किप् प्रत्यय होकर शाङ्गरवादि के अन्तर्गत होने से ङीन् प्रत्यय होता है।

पुरूरठा—पुरूणि बहूनि शास्त्राण्युप दिशति येनाध्य यनाध्यापनेन यज्ञेन सः। पुरूरवाः इति पदनामसु पठितम्। निघंटु ५।४।

अर्थात्—जो बहुत से शास्त्रों का उपदेश करता है, जिस यज्ञ से पढ़ना पढ़ाना हो वह। पुरूरवाः पद नाम में पड़ा है।

पुरूरवाः उणादि ४।२३६ अयमनेन पुरु रुपपदाद् 'रू' धातोरसि प्रत्ययान्तेन निपातितः॥ यजु० भाष्य पृष्ठ ३६८-३८६॥

अर्थात्—ये शब्द पुरु उपपद होने से 'रू' धातु को 'असि' प्रत्यय परै होने पर यह पुरूरवाः शब्द निपातन किया है।

पुरूरवाः—"बहुधा रोरूयते। तस्यैषा भवति"—पुरूरव

जो बहुत प्रकार से × शब्द करता है। उसकी यह ऋचा है—"समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उत्तेमवर्धन्नद्यः स्वगूर्त्ताः। महे यत्वा पुरूरवो रणाया वधयन्द स्युहत्याय देवाः" ऋ० १०। ६५। ७॥ समासतास्मिञ्जायमानेग्ना गमना दायो देव पत्न्यो वाऽपि चैन म वर्धयन्नद्यः स्वगूर्त्ताः स्वयं गाभिन्यो महते च यत् त्वा पुरूरवोरणाय रमणीयाय संग्रामाया वर्धयन्दस्यु हत्याय च देवाः ॥ ४७ ॥ निरुक्त अध्याय १० खंड। ४७।

अर्थात्—इस (पुरुरवा) के उत्पन्न होने पर स्त्रियें (जल, उसको घेर कर) स्थित हुए, स्वयं चलने वाले शोर करने वाले जलों ने इस को बढ़ाया। हे पुरूरवः! जब देवताओं ने तुझे बड़े संग्राम के लिये, दस्यु (अकाल) के नाश के लिये बढ़ाया। १०। ६५। ७। स्थित हुए इस के होने पर। ग्नाः=जल, गमन से (गतिशील होते हैं) अथवा (ग्ना) देव पत्नियें। किञ्च इस को बढ़ाते हुए जल। स्वगूताः=स्वयं चलने वाले। पुरूरवः हे! जो तुझे बड़े रणीय=रमणीय संग्राम के लिये बढ़ाते हुए दस्यु के मारने के लिये देवता॥ १०। ४७॥

× अथयत्तद जायत सोऽसावा दित्यस्तं जायमानं घोषाय उलूलवोऽनूदतिष्ठन् सर्वाणि भूतानि सर्वेच कामास्तस्मात्तस्योदये प्रति प्रत्या यनं प्रतिघोषा उलूलवोऽनू तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः। छ। उ० ३। १६। ३। अर्थात् तदनन्तर उन दोनों के मध्य में आदित्य उत्पन्न हुआ। आदित्य को उत्पन्न हुआ देख जगत में विस्तीर्ण नाद हुआ।

मैक्समूलर की स्पष्ट सम्मति—

'That Pururavas is an appropriate name of a solar hero requires hardly any proof.

Pururavas meant.....endued with much light; for though 'rava' is generally used of sound yet the root 'Ru' which meant originally 'to cry' is also applied to colour in the sense of a loud or crying colour i. e.,red... ....(Sanskrit-Ravi, sun) Besides Pururavas calls himself Vasishtha (19ऋक) which, as we know is a name of the sun; and if he is called Aida (11 ऋक्) the sôn of Ida, the same name is elsewhere (Rigveda 111 29, 3.) gives to Agni, the fire." Max Muller's Selected Essays (1881) Vol I. P. P.. 407. 496.

पुनः लिखते हैं—The name which approaches nearest to Urvashi in greek myth seems to be Europe.....Europe, carried away by the (white bull Vrishon"mon" "bull" "stallion" in the veda frequent appala tion of the sun and 'sweta' 'white' applied to the some deity all this would well agree with the goddess of the dawn,—Selected Essays 1881 Vol. P. I. 400 note.